तन्त्र-विज्ञान और साधना



आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

तन्त्र-विज्ञान और साधना



आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

तन्त्र-शास्त्र

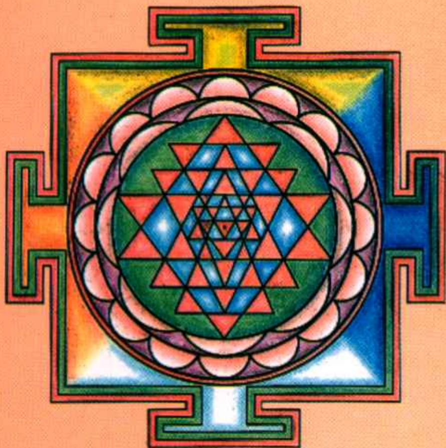
और तन्त्रकी

साधना पर

पूर्ण और

प्रामाणिक

ग्रन्थ



।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

98

—*—

तन्त्र-विज्ञान और साधना

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391, 41530902

सर्वाधिकार सुरक्षित

पुनर्मुद्रित संस्करण 2006

मूल्य 320.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263, 2333371



चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाषः 2420404

मुद्रक

ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

विषय-सूची



परमहंस श्री १००८ नारायण स्वामी
की स्मृति में

प्रकाशककी ओर से.......

पिछले कुछ वर्षोंसे हमारे देशमें तन्त्रकी बहुत चर्चा होती रही है। अनेक पत्रों और पत्रिकाओंने तन्त्र-विशेषांक भी प्रकाशित किए और स्थान स्थान पर अनेक नये नये तान्त्रिक भी उभर खड़े हुए जिन्होंने बड़े बड़े नगरोंमें अपने केन्द्र भी स्थापित कर लिए हैं किन्तु तन्त्र क्या है उसके कितने भेद, आचार, आम्नाय क्षेत्र और पीठ हैं तथा तन्त्रकी दीक्षा-पद्धति, अभिषेक और महाविद्या-साधना कैसे होती है इसका ज्ञान किसीको नहीं है। वे यह भी नहीं बता सकते कि किस सिद्ध गुरुके पास कितने दिन रहकर किस महाविद्याकी साधना की, इसलिये यह आवश्यक हो गया कि ऐसा प्रमाणिक ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय जिसमें तन्त्र और उसकी साधना-पद्धतियोंके सम्बन्धमें सब जिज्ञासाओंका समाधान हो सके, उसी मंगल कामनासे यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। हमें विश्वास है कि तन्त्र-विज्ञान और उसकी साधनामें रुचि लेनेवाले महानुभावोंको इसमें सभी सम्बद्ध सामग्री सरलतासे प्राप्त हो जायगी।

इस ग्रन्थमें स्थान स्थान पर कुछ अलभ्य अंकयन्त्र भी दे दिए गए हैं। इस प्रकारके सैंकड़ों अंकयन्त्र श्रीनारायण स्वामीके विरचित वेदपाठी-भवनमें उपलब्ध हैं जिन सबका विशेष तात्पर्य और महत्त्व है और जो प्रकाशनीय हैं।

-प्रकाशक

पहले इसे पढ़िए ....

सम्बोधन

मानव मात्र सुख, शान्ति और समृद्धि चाहता है। इस प्रकारका सुख इस प्रकारकी शान्ति और समृद्धि चाहनेवाले लोग दो प्रकारके होते हैं - एक तो वे जो भौतिक सुख और समृद्धि पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं और उसीसे उन्हें इष्ट शान्ति भी मिलती है। दूसरे प्रकारके सन्त पुरुष वे हैं जो भौतिक पुख और समृद्धिके बदले आध्यात्मिक सुख अर्थात् शाश्वत आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे लोग जो भौतिक सुख और समृद्धि प्राप्त भी करते हैं उसे भी वे दूसरोंके कल्याणमें ही लगाना चाहते हैं। इच्छित शान्ति, सुख और समृद्धि प्राप्त करनेके लिये कुछ लोग जप-तप, पूजा-पाठ, हवन-अनुष्ठान आदि करते हैं या कराते हैं अथवा अन्य शक्तियोंका आश्रय लेकर उनसे अपनी मनः-कामना तृप्त और तुष्ट करते हैं।

सम्पूर्ण संसारमें एक ऐसी अत्यन्त महाशक्ति व्याप्त है जो चराचरका सर्जन, पालन और संहार करती रहती है। उसीकी अनेक शक्तियाँ किसी साधकको कोई विशेष भौतिक सुख या समृद्धि प्रदान करती हैं और ऐसी ही कुछ शक्तियोंसे बहुत से लोक-संग्रही गहापुरुष शक्ति पाकर आत्मकल्याण और लोककल्याण करते रहते हैं। तन्त्रशास्त्रमें ऐसी ही अनेक शक्तियोंकी उपासना और साधनाका रहस्य और महत्त्व बताया गया है। यह शक्ति-पूजा कबसे चली है इसका कोई विशेष विवरण या इतिहास प्राप्त नहीं होता, किन्तु ऋग्वेदसे लेकर उपनिषद्, देवीभागवत, देवी-पुराण, कालिकापुराण, मार्कण्डेयपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण और स्कन्दपुराण आदिमें देवी या शक्तिका माहात्म्य प्रचुर मात्रामें मिलता है। भारतके पश्चिममें गान्धार (क़न्दहार), शाकद्वीप, क़ाबुल, ईरान, लघु एशिया, मलयद्वीप, यवद्वीप (जावा), बालिद्वीप आदि देशोंमें तथा तिब्बत, चीन, जापान आदि देशोंमें भी शक्तिकी उपासना बहुत प्राचीन कालसे होती चली आ रही है। सिन्ध प्रान्तमें (जो अब पाकिस्तानका भूभाग है) सिन्धु नदके पश्चिमी तटपर अवस्थित मुअनजोदड़ो (मरे हुओंका टीला) नामक स्थानमें तथा सतलजके तटपर पंजाबके हड़प्पा स्थानमें जो खुदाई हुई है उसमें भी स्त्रियोंके आकारकी बहुतसी मूर्त्तियाँ मिली हैं जिनसे स्पष्ट है कि छह-सात सहस्र वर्ष पूर्व भी सिन्धु नदीके कधारमें (जिसे भूलसे ग़िन्धु घाटी कहते हैं) शक्तिकी उपासना हुआ करती थी। प्रो. दीक्षितारने अपने ग्रन्थ 'सम आस्पैक्टस ओफ़ वायुपुराण, में लिखा है कि देवीका जो रूप वर्णित किया गया है वह मुअनजोदड़ोकी स्त्री मुद्राओंसे मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय भी शक्तिरूपकी उपासना व्यापक रूपसे प्रचलित थी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि शैव और शाक्त मत साथ साथ प्रचलित थे और दोनों निगम-द्वारा अनुमोदित भी थे। कुछ लोग दक्षिणचारी शाक्त मतको दक्षिणमार्ग या वैदिक शाक्तमत भी कहने लगे।

कनिष्कके समयमें बौद्ध-धर्मके महायान और वज्रयानका प्रचार हुआ। वज्रयानी सिद्धों और वाममार्गियोंमें पंचमकारकी उपासना प्रचलित हो चली अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मैथुन और मुद्रा (भुने चिउड़े, चावल, गेहूँ, चने) का प्रयोग हो चला। कनिष्कका साम्राज्य उत्तरमें मंगोलिया (चीन)-तक, दक्षिणमें विन्ध्याचलतक, पूर्वमें बंगालकी खाड़ीतक और पश्चिममें ईरान-तक फैला हुआ था। अतः लगभग सारे एशियामें महायान मत जा फैला था जिसके द्वारा सभी देशोंमें शक्ति-पूजाका प्रचार हो चला। साधन-माला-तन्त्रसे यह भी ज्ञात होता है कि महायान मतके प्रतिष्ठाता आर्य नागार्जुन तिब्बतसे एकजटा नामवाली तारादेवीकी जो बहुत-सी मूर्त्तियाँ लेते आए थे उन्हीं तारादेवीकी उपासना वज्रयानी लोग करते थे, जिसमें खुलकर पञ्चवेद, पाँच योगी और पाँच पीठोंका वर्णन मिलता है- उत्तर, दक्षिण, पूर्वपश्चिम और ऊर्ध्व (ऊपर) तो पाँच वेद या आम्नाय हैं, पाँच

महेश्वर (शिवयोगी या ध्यानी) बुद्ध हैं। उत्कलमें उड्डियान, जालन्धरमें जाल, महाराष्ट्रमें पूर्ण, श्रीशैलपर मतंग और असममें कामाख्या ही शाक्तोंके पाँच आदि पीठ हैं। पीछेसे यद्यपि इक्यावन (५१) पीठ बन गए तथापि मुख्य पीठ ये पाँच ही थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वैदिक संस्कारोंमें भी सप्त और षोडश मातृकाओंकी पूजा होने लगी।

नेपालमें जो एक लाख श्लोकोंवाला शक्ति-संगम-तन्त्र मिला है उसमें शाक्त सम्प्रदायका बड़ा विस्तृत विवेचन है। उससे ज्ञात होता है कि प्रारम्भमें शाक्त, सौर, शैव, गाणपत्य, वैष्णव और बौद्ध आदि सम्प्रदायोंके साथ साथ वैदिक शाक्त सम्प्रदाय भी चलता रहा जिसमें पीछे तान्त्रिक शाक्त-धर्म या वामाचार भी आकर जुड़ गया।

महाविद्याएँ

दक्षिण और वाम दोनों मार्गोंवाले इन दस महाविद्याओंकी उपासना करते हैं - महाकाली, उग्रतारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, वगलामुखी, मातंगी और कमला। इन शक्तियोंके पति क्रमशः महाकाल, अक्षोभ्य पुरुष, पञ्चवक्त्र रुद्र, त्र्यम्बक, दक्षिणामूर्त्ति, एकवक्त्ररुद्र, मतंग, सदाशिव और विष्णु हैं। धूमावती विधवा कहलाती हैं। षोडशीका दूसरा नाम त्रिपुरसुन्दरी भी है।

शाक्तोंके अनुसार अनन्त और अव्यक्त आद्या शक्ति ही सारी सृष्टि करती हैं। उस अज्ञेय और अव्यक्तके विकासमें एक ही परम तत्त्वका आगम होता रहता है, इसलिये उसे आगम कहते हैं। उस परम तत्त्वका ही नाम ईश्वर या शिव है। अपने तपोबलसे ब्रह्म-सृष्टि तो करते जा रहे थे पर उसमें वृद्धि नहीं हो पा रही थी। उनकी प्रार्थनापर शक्तिने विमर्श (स्फूर्त्ति, ओज)-का रूप धारण किया जिसमें तैजस रूपसे शिव प्रविष्ट हो गए, फिर बिन्दुका प्रादुर्भाव हुआ। जब शिवमें शक्तिने प्रवेश किया तब बिन्दुका विस्तार हुआ। इस संयोगसे नादरूपी स्त्री-तत्त्वकी उत्पत्ति हुई। ये बिन्दु और नाद दोनों परस्पर मिलकर ऐसे एकरूप हुए जिससे उनका नाम अर्द्धनारीश्वर पड़ गया जिसे संयुक्त बिन्दु भी कहते हैं। यही तत्त्व स्त्रीत्व और पुरुषत्वके बीच आसक्ति उत्पन्न करता है, इसलिये इसे काम कहते हैं।

बिन्दु दो हैं- श्वेत तो पुंसत्व है, रक्त स्त्रीत्व है। दोनोंके मेलसे कला उत्पन्न होती है। इस प्रकार संयुक्त बिन्दु (काम) और श्वेत रक्त मिलनेपर ही शब्दमयी वास्तविक सृष्टि उत्पन्न हुई। किसी किसी आगममें जहाँ देवी-कामकलाके स्वरूपका वर्णन है वहाँ संयुक्त बिन्दु सूर्यको उनका मुख बताया गया है, अग्नि (लाल) और अर्धकलाको उनकी जननेन्द्रिय बताया गया है। इस सृष्टि करनेवाली देवीको पूरा, ललिता, भट्टारिका, त्रिपुरसुन्दरी और षोडशी भी कहते हैं। सब वस्तुओं और शब्दोंकी उत्पत्ति त्रिपुर-सुन्दरीके द्वारा ही होती है इसलिये उस देवीका नाम परा है। चारों प्रकारकी वाणी (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी)-में पराको प्रथम बताया गया है। इन शाक्तोंके वेदान्त-मतको शक्ति-विशिष्टाद्वैत कहते हैं।

जितने बौद्ध आचार्य भारतसे नेपाल गए थे उनके ही पार्षद वहाँ वज्रयानके प्रवर्त्तक हुए। इस सम्प्रदायके मध्य वज्राचार्यने सर्वप्रधान गुरुका आसन ग्रहण किया था। आज भी नेपालमें वज्रयानकी ही प्रबलता है। यह सम्प्रदाय घोरतर तान्त्रिक और पञ्चमकारका उपासक है। नेपालकी तरह तिब्बतमें भी वज्रयान या कालचक्र-यानकी प्रधानता देखी जाती है।

हमारे यहाँ न तो कोई व्यक्ति तान्त्रिक है और न यहाँ तन्त्रके द्वारा किसी प्रकारका कोई कार्य किया जाता है। हमारे यहाँ तन्त्र-साहित्यका जितना विशाल भांडार है उतना कहीं भी और नहीं होगा। प्रायः बड़े बड़े नगरोंमें

लोगोंने तान्त्रिक बनकर दुकानें खोल ली हैं और तन्त्रके नामपर धन एकत्र कर रहे हैं। तन्त्रशास्त्रके अनुसार दो प्रकारके साधक होते हैं एक तो वे जो किसी सिद्ध गुरुके पास सकाम साधना करके इष्ट फल प्राप्त करके विरत हो जाते हैं। दूसरे निष्काम साधक वे हैं जो साधनाके द्वारा शक्ति प्राप्त करके जन-कल्याण करते रहते हैं किन्तु उसके लिये न तो किसी प्रकारका कोई शुल्क लेते और न कोई पदार्थ ही उसके बदलेमें लेते। ये निष्काम साधक या सिद्ध सुदूर ऐसे प्रदेशोंमें रहते हैं जहाँ किसी प्रकारका कोलाहल न हो और नागरिक आवागमन तथा अन्य लोगोंसे किसी प्रकारका कोई व्यवहार न हो। उनकी अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूर्ण होती रहती हैं, उन्हें कोई आयास नहीं करना पड़ता।

तान्त्रिकी साधना भारत, भूटान और तिब्बतमें पिछले लगभग बारह सौ वर्षोंसे प्रारम्भ होकर चौदहवीं शताब्दीतक चलती रही किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी विक्रमीयमें कुछ तो राजनीतिक उथलपुथलके कारण, कुछ एकेश्वरवादी सन्तों और सूफियोंके बढ़ते हुए प्रभावके कारण और फिर, भक्ति-मार्गके प्रवर्त्तकोंके व्यापक प्रचारके कारण तन्त्र-साधनाका ऐसा ह्रास हुआ कि बंगाल और असमको छोड़कर शेष भारतके प्रदेशोंमें उसका नितान्त लोप हो गया। बंगाल और असममें भी तन्त्र-साधनाके बदले शक्तिपूजाको अधिक महत्त्व दिया जाने लगा और कौलाचार समाप्त हो गया।

आजकल भारतके बड़े-बड़े नगरोंमें और विदेशोंमें भी तन्त्र-शास्त्रके प्रति लोगोंकी रुचि बढ़ चली है जिसके कारण बहुतसे चतुर लोगोंने बड़े नगरोंमें अपनेको तान्त्रिक घोषित करके अपनी तन्त्रकी दूकानें खोल ली हैं और धर्मभीरु जनता तन्त्रशास्त्रके वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ होनेके कारण उनके चंगुलमें सरलतासे फँस जाती है। यदि इन किसी भी तन्त्र-व्यवसायियोंसे पूछे कि भारतमें कितने तान्त्रिक सिद्ध पीठ कहाँ कहाँ हैं, उन पीठोंमें कौन कौन सिद्ध तान्त्रिक हैं जिन्हें दीक्षा देनेका अधिकार और सामर्थ्य है, उनमेंसे किसके पास कितने समयतक रहकर किस तन्त्र-पद्धतिकी किस महाविद्या या शक्तिकी सिद्धिके लिये किस प्रकार दीक्षा लेकर कितने दिनोंतक साधना करके कौनसी सिद्धि प्राप्त की तो वे कोई उत्तर नहीं दे सकेंगे।

जो साधक किसी तान्त्रिक सिद्ध पीठपर सिद्ध तान्त्रिक गुरुके पास कमसे कम ५ वर्षोंतक रहकर निष्ठापूर्वक अपनी अर्हता अर्थात् साधना करनेकी योग्यता प्रदर्शित कर लेता है तथा साधनाकालमें सब प्रकारकी असुविधाओं, भयानक अनुभव, तीव्र शारीरिक उत्तेजन और युक्ताहारके आधारपर जीवन वहन करनेकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है, वही वास्तवमें तन्त्रकी साधना करनेका अधिकारी हो पाता है। साधनाके समय साधकके शरीरमें अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होनेकी सम्भावना होती है, जिनका निराकरण केवल सिद्ध गुरु ही कर सकता है, किसी औषधिसे वे विकार दूर नहीं हो सकते। साधना-कालमें अत्यन्त भयानक दृश्य दिखाई देने लगते हैं, उच्चाटन भी होता है और अनेक प्रकारकी शारीरिक और मानसिक व्यथाएँ भी होने लगती हैं, जिनसे घबराकर साधक भागनेकी तैयारी करने लगता है, किन्तु जो साधक इन सब अकरुण परिस्थितियोंमें धैर्य धारण करके अपने गुरुमें पूर्ण विश्वास करके सब प्रकारके भयानक अनुभवोंका दृढता-पूर्वक सामना कर लेता है, वही सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

कामाख्यामें जो आजकल प्रसिद्ध सिद्ध तान्त्रिक विराजमान हैं उनका कथन है कि मेरे पास पिछले साठ वर्षोंमें एक भी व्यक्ति तन्त्र-साधनाके निमित्त नहीं आया है। यही अनुभव दक्षिण भारतके सह्याद्रि सिद्ध पीठके सिद्ध तान्त्रिक महोदयका भी है। फिर अपनेको तान्त्रिक घोषित करनेवाले और बड़े बड़े नगरोंमें बड़े बड़े नामपट्ट लगवाकर अपनेको तान्त्रिक घोषित करनेवाले अगणित तान्त्रिक कहाँसे उत्पन्न हो गए। तन्त्रशास्त्रके अनुसार ३३ महाविद्याओंमेंसे या दस महाविद्याओंमेंसे जो एकमें भी सिद्ध हो जाता है, उसे इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है

कि वह जो कुछ कह देता है वही हो जाता है और जो चाहता है वही कर दिखाता है। आठों सिद्धियाँ उसके चरणोंमें लोटती हैं और उसे किसी बातकी कमी नहीं रहती। ऐसा सिद्ध तान्त्रिक न तो किसीसे कुछ लेता, न माँगता, न संग्रह करता न मठ बनाता और न जनसंकुल स्थानमें रहता है तन्त्रार्णवमें स्पष्ट लिखा है

तान्त्रिको न वसेद् ग्रामे पत्तने वा जनाकुले।
स वसेद् घोरकान्तारे दुर्गमे गुह्यपर्वते।।

(तान्त्रिकको किसी गाँवँ या जनसंकुल नगरमें न रहकर घोर जंगल या दुर्गम गूढ पर्वतपर रहना चाहिए) क्योंकि उसे न तो किसीका कोई भय रह जाता, न किसी प्रकारकी कोई असुविधा रह जाती और साधना करनेमें उसे पूरी सुविधा मिल जाती है।

कभी कभी कुछ ऐसे योग-भ्रष्ट पुरुष भी जन्म ले लेते हैं, जो अपने पूर्व जन्मके संस्कारके कारण स्वत: शक्तियुक्त हुए रहते है। उनमें स्वत: अनायास वाक्-सिद्धता प्रकट हो जाती है, किन्तु वे भी एकान्त स्थलमें जनसंकुलसे दूर रहते हैं। जो साधक साधना करके सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें आठों सिद्धियाँ अणिमा (सूक्ष्म हो जाना), महिमा (बहुत विशाल हो जाना), लघिमा (बहुत हल्का हो जाना), ईशित्व (सबपर शासन करनेकी शक्ति प्राप्त करना), वशित्व (जिसे चाहे उसे वशमें कर लेनेकी शक्ति प्राप्त कर लेना), प्राप्ति (कुछ भी प्राप्त कर सकनेकी शक्ति पा लेना), प्राकाम्य (सब प्रकारके वैभवसे युक्त होना) तथा कामावसायिता (सब प्रकारकी कामनाओंको दमन करनेकी शक्ति प्राप्त कर लेना) सिद्ध हो जाती हैं और वह अपने स्थानपर बैठे-बैठेही प्रत्येक पीडित और व्यथित पुरुष-का कल्याण कर सकता है।

तान्त्रिक कहलानेवाले बहुतसे लोग, मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटनकी अभिचार-क्रियाएँ करनेकी डींग भी हाँकते हैं, किन्तु अभिचार-क्रियाओंका तन्त्रसे कोई सम्बन्ध नहीं है और वह तन्त्रसे अलग दूषित क्रिया मानी जाती है। तान्त्रिकके लिये इस प्रकारकी क्रिया करनेका निषेध भी है। जो लोग इस प्रकारकी क्रियाएँ करते हैं, उनका अन्त बडा भयानक और बीभत्स होता है और बड़ी घोर कठोर यातनाके साथ उनकी मृत्यु होती है। ऐसे जो दूषित लोग इन गर्हित क्रियाओंके लिये द्रव्य लेते और धन संग्रह करते हैं, उनके परिवारमें कोई नाम-लेवा पानी-देवा भी नहीं बच पाता। किन्तु तान्त्रिक तो पूर्णत: अपरिग्रही होता है। वह न तो धन संग्रह करता और देनेपर भी धन नहीं लेता, क्योंकि उसे तो सब कुछ यों ही प्राप्त हुआ रहता है। यदि वह लोभ करे तो लोभ उत्पन्न होते ही उसकी सम्पूर्ण शक्ति समाप्त हो जाती है। कहा भी गया है-

दृशा स्पर्शेण फूत्कारैः पादांगुष्ठेन बोधितैः।
उदकेनाभिमन्त्रेणालुब्धश्च तनुते श्रियम्।।

जो व्यक्ति कोई भी तन्त्र (महाविद्या) सिद्ध कर लेता है, वह निर्लोभि होकर किसी व्यथितको आँखसे देखकर, हाथसे छूकर, फूँक मारकर, पैरके अँगूठेसे कुरेदकर या अभिमन्त्रित जल देकर प्रत्येक शरणागतका कल्याण कर सकता है।

तन्त्रके प्रयोगमें निर्लोभी होना नितान्त आवश्यक और अनिवार्य है। लोभकी व्यख्या करते हुए कहा गया है -''धन कमानेकी इच्छासे किसीके कल्याणके लिये धन कमानेकी इच्छा करना, दूसरेका कल्याण करनेके लिये धन माँगना या ठेका लेना, इस आशासे किसीका हित करना कि यह मुझे द्रव्य देगा, दिया हुआ द्रव्य धोखेसे क़हीं और रखवाना या किसी मूर्त्तिपर चढ़वाना और फिर उसका प्रयोग अपने या अपने परिवारके लिये करना अथवा किसी औरको प्रेरणा देकर अपने लिये द्रव्य प्राप्त करना अथवा यह कहना कि मैं तो कुछ

लेता-देता नहीं, अमुकको दे देना या यह कहना कि जो श्रद्धा हो चढ़ा जाओ, यह सब व्यवहार लोभके अन्तर्गत आता है।'' इसी प्रसंगमें यह भी कहा गया है कि यदि कोई व्यथित व्यक्ति किसी तान्त्रिकके पास आ पहुँचा हो और वह तान्त्रिक सो रहा हो, विश्राम कर रहा हो, भोजन कर रहा हो अथवा अन्य किसी कार्यमें संलग्न हो तो उसका यह धर्म है कि अपना सब काम छोडकर आनेवालेकी व्यथा पहले दूर करे।

तन्त्र-क्रिया कोई एक क्रिया नहीं है। तन्त्रकी तीन पद्धतियोंमेंसे सबके अलग अलग लगभग १५० तन्त्र हैं, जिनमेंसे एक पद्धतिके केवल एक तन्त्रको सिद्ध करनेमें आठ आठ, दस दस वर्ष लग जाते हैं, और उसमें भी उसे सिद्धि तभी प्राप्त होती है जब उसकी साधन-प्रक्रियाका निर्देशन उसका गुरु सिद्ध पुरुष निरन्तर करता रहे।

कोई भी सिद्ध तान्त्रिक न तो सबको शिष्य बनाते, न सबको साधन-प्रक्रिया सिखाते और न सिखानेके लिये किसीको स्वयं बुलाते। जो साधक शिष्य स्वयं उनके पास जाता है, उसे वे प्रथम दृष्टिमें ही परख लेते हैं कि यह योग्य शिष्य हो सकता है अथवा नहीं अर्थात् उसमें प्रत्यक्ष रूपसे साधनाकी रुचि और लगन भी है या नहीं। इसके पश्चात् ही वे उसे अपने आश्रममें तबतक रखते हैं, जबतक उन्हें पूर्ण विश्वास नहीं हो जाता कि यह साधना कर भी सकता है या नहीं। इस अवधिमें वे यह भी देखते हैं कि इस व्यक्तिने पहले कभी तन्त्रके विषयमें ज्ञानार्जन किया है या नहीं, यह बहुत बातूनी, प्रमत्त और असंयत तो नहीं है बिना किसी प्रकारका ननुनच किए जो कहा जाय उसे चुपचाप निष्ठापूर्वक करता रह सकेगा या नहीं तथा ऐसा मेधावी हो कि जो बताया जाय उसे तत्काल समझ सकेगा और ब्रह्मचर्यपूर्वक नियमित आचरण करेगा या नहीं। इतना विश्वास होनेपर भी तभी तान्त्रिक क्रिया सिखाई जाती है जब उसे भली प्रकार पर्याप्त समयतक ठोक बजाकर देख लिया जाता है कि वह साधक बननेके योग्य हो गया है या नहीं।

तन्त्र साधनाका निर्देश भी कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो उठाकर हाथपर रख दी जा सके। पहले साधकको जपमन्त्र दिया जाता है, और उसके साथ-साथ उसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, सिद्ध कराकर प्रत्याहारका परीक्षण कराया जाता है कि इसके मनमें किसी लौकिक पदार्थ या व्यक्तिके प्रति मोह तो नहीं रह गया है। जप और साधनाकी अवस्थामें साधकको अलौकिक, असाधारण, भयावने, लोमहर्षक और उच्चाटन करनेवाले अनेक अनुभव होते रहते हैं, जिनका परिहार उनका गुरु निरन्तर करता रहता है। जब वह साधक पूर्ण रूपसे प्रत्याहारमें सिद्ध हो जाता है और उसकी जप क्रिया भी परिपक्त्व हो जाती है, तब गुरु उसे तीनों पद्धतियोंके तन्त्रोंमेंसे किसी एक तन्त्रकी या किसी महाविद्या या महाशक्तिका गुह्य मन्त्र देता है। गुह्य मन्त्रके जप-कालमें सिद्ध गुरु निरन्तर साधकके पास ही रहता है क्योंकि गुह्य साधनाके समय किसी भी प्रकारका मानसिक उद्वेग, भय, भ्रान्ति, आवेग, आवेश अथवा उन्माद उत्पन्न हो सकता है, जिसका निराकरण और उपचार गुरु तत्काल करता है, अन्यथा बड़ा भयानक दुष्परिणाम हो सकता है, जिसका उपचार किसी औषधिसे नहीं हो सकता। इस अवस्थामें साधकको ऐसा तीव्र उच्चाटन भी होने लगता है कि उठकर भाग चला जाय, किन्तु इन सब अवस्थाओं में उसके गुरु सिद्ध तान्त्रिक सदा उसके पास रहकर उसकी सब बाधाएँ दूर करते रहते हैं, अर्थात् सिद्धि प्राप्त करनेमें केवल साधककी ही तपस्या नहीं होती गुरुको भी तप करना पड़ता है और गुह्य मन्त्र प्राप्त करनेके पश्चात् ४० दिनसे लेकर १२० दिनोंके भीतर सिद्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है, किन्तु सिद्ध गुरुका साथ रहना नितान्त आवश्यक है। बिना सिद्ध गुरुको साथ लिए कभी भूलकर भी साधना करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

किसी एक महाविद्या विशेषत: षोडशी महाविद्याको सिद्ध कर लेनेपर अन्य महाविद्याओं या शक्तियोंको सिद्ध

करना इतना सरल हो जाता है कि एक एक महाविद्या या महाशक्ति ४० दिनसे लेकर ८० दिनोंके भीतर सिद्ध हो जाती है। सिद्ध तान्त्रिक लोग भी कोई सिद्धि प्राप्त कर लेनेपर मौन नहीं हो जाते। वे निरन्तर नई नई महाविद्याओं अथवा दैवी शक्तियोंको सिद्ध करनेमें लगे रहते हैं और फिर उनमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि वे घर बैठे कहीं दूरका दृश्य देख सकते हैं, दूरकी बात सुन सकते हैं, क्षणभरमें कहीं भी पहुँच सकते हैं, देखते देखते अदृश्य हो सकते हैं, आकाशमें उड़ सकते हैं, किसीके शरीरमें प्रविष्ट हो सकते हैं कुछ भी कौतुक कर सकते हैं, किए हुएको बिगाड़ सकते हैं, बिगड़े हुएको बना सकते हैं या बदल सकते हैं। उनमें ऐसी शक्ति भी आ जाती है कि न तो जल उन्हें डुबो सकता है अर्थात् वे जलपर बैठे रह सकते हैं या चल सकते हैं या जलके भीतर जबतक चाहें तबतक रह सकते हैं, न अग्नि उन्हें जला सकती, न कोई अस्त्र-शस्त्र उन्हें चोट पहुँचा सकता, न छू सकता, न उन्हें किसी प्रकारका रोग, शोक या शरीरिक अथवा मानसिक कष्ट हो सकता और शरीर-धर्मके अनुसार वृद्ध हो जानेपर भी वे इच्छा-मृत्यु हो जाते हैं अर्थात् जबतक चाहें तबतक जी सकते हैं, परकाया-प्रवेश कर सकते हैं और जैसा चाहें वैसा रूप बनाकर शरणागतका कल्याण कर सकते हैं।

बहुतसे लोग शत्रुपर विजय प्राप्त करने या मुकदमे आदिमें जीतनेके लिये किसी अन्य व्यक्तिसे वगलामुखीका अनुष्ठान कराते हैं, किन्तु तन्त्र-शास्त्रमें स्पष्ट लिखा है कि किसी भी तान्त्रिक प्रकियासे फल प्राप्त करनेकी इच्छावालेको स्वत: अनुष्ठान करना चाहिए, किसी दूसरेसे नहीं कराना चाहिए और उसकी दीक्षा भी किसी ऐसे सिद्ध तान्त्रिकसे लेनी चाहिए जिसे वह महाविद्या सिद्ध हो। महाविद्याओंके मन्त्रोंमें कभी कभी आता है-''सर्वदुष्टानां बुद्धि नाशय'' आदि वहाँ 'सर्वदुष्टानां' के बदले 'मम शत्रूणां' कर देना चाहिए किन्तु यदि किसी एक कार्यके लिये दोनों विरोधी पक्ष वही अनुष्ठान कर रहे हों तो किसीको उसका फल नहीं मिलता।

ऊपर कहा जा चुका है कि बिना सिद्ध गुरुके कोई तान्त्रिक साधना नहीं करनी चाहिए। कुछ आचारोंकी विशेषत: वामाचारकी साधनामें पञ्च मकार (मत्स्य, माँस, मदिरा, मैथुन और मुद्रा)-का प्रयोग विहित बताया गया है और बड़ी बीभत्स क्रियाएँ बताई गई हैं यहाँतक कि कौलाचारमें यहाँतक कह दिया गया है कि अनुष्ठान क्रिया तब प्रारम्भ करें कि जब मदिरा पीते पीते सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाय, किन्तु जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेगी और विवेक नष्ट हो जायगा तब अनुष्ठान कैसे होगा? इस प्रश्नका समाधान किसी तन्त्र गन्थमें नहीं किया गया। साथ ही अनुष्ठानके लिये कुलस्त्री प्राप्त करना नितान्त असम्भव और अनैतिक क्रिया है। कोई भी स्त्री इस प्रकारके कार्यके लिये न मिल सकती और न तैयार हो सकती। इसके अतिरिक्त न्यायके अनुसार यह अनाचार और दुराचार तो है ही, असामाजिक और बीभत्स भी है। इसी प्रकार शव-साधना भी भयंकर और दुष्कर कार्य है, क्योंकि जिस प्रकारके शवसे साधनाकी बात कही गई है, वैसा शव ही मिलना असम्भव है। अत: इस प्रकारकी तान्त्रिक क्रिया अत्यन्त घृणित, निषिद्ध और गर्हित है। वैदिकाचार, तत्त्वाचार और दक्षिणाचारसे भी जब साधना की जा सकती है तब वामाचार ग्रहण करनेकी आवश्यकता क्या है? यद्यपि इस ग्रन्थमें सब आचारोंकी साधना-प्रक्रियाका वर्णन कर दिया गया है, तथापि उन आचारोंसे दूर रहना चाहिए जिनमें व्यक्तिका विवेक नष्ट होता हो और आचरण भ्रष्ट होता हो।

इस ग्रन्थमें तन्त्रके विषयमें सभी पद्धतियोंका पूर्ण परिचय दे दिया गया है, साथ ही तान्त्रिक गुरु और शिष्यके लक्षण, दीक्षाके प्रकार, आगम, यामल, डामर और तन्त्रकी विभिन्न पद्धतियोंका तथा और तन्त्र-विद्याओंका पूर्ण परिचय दे दिया गया है। साथ ही शैवतन्त्र, शाक्ततन्त्र तथा बौद्धतन्त्रका भी पूर्ण परिज्ञान करा दिया गया है। पञ्चमकारके सम्बन्धमें जो भ्रान्ति व्याप्त है उसका भी निराकरण कर दिया गया है।

तन्त्रके विषयमें जो अनेक प्रकारकी विषम भ्रान्तियाँ व्याप्त हैं उनका परिहार करनेके लिये तथा तन्त्रका वास्तविक रूप, उद्देश्य और साधनाका वास्तविक स्वरूप समझानेके लिये इस ग्रन्थकी रचना की गई है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थसे तन्त्रशास्त्रके जिज्ञासुओंको पूर्ण सन्तोष होगा।

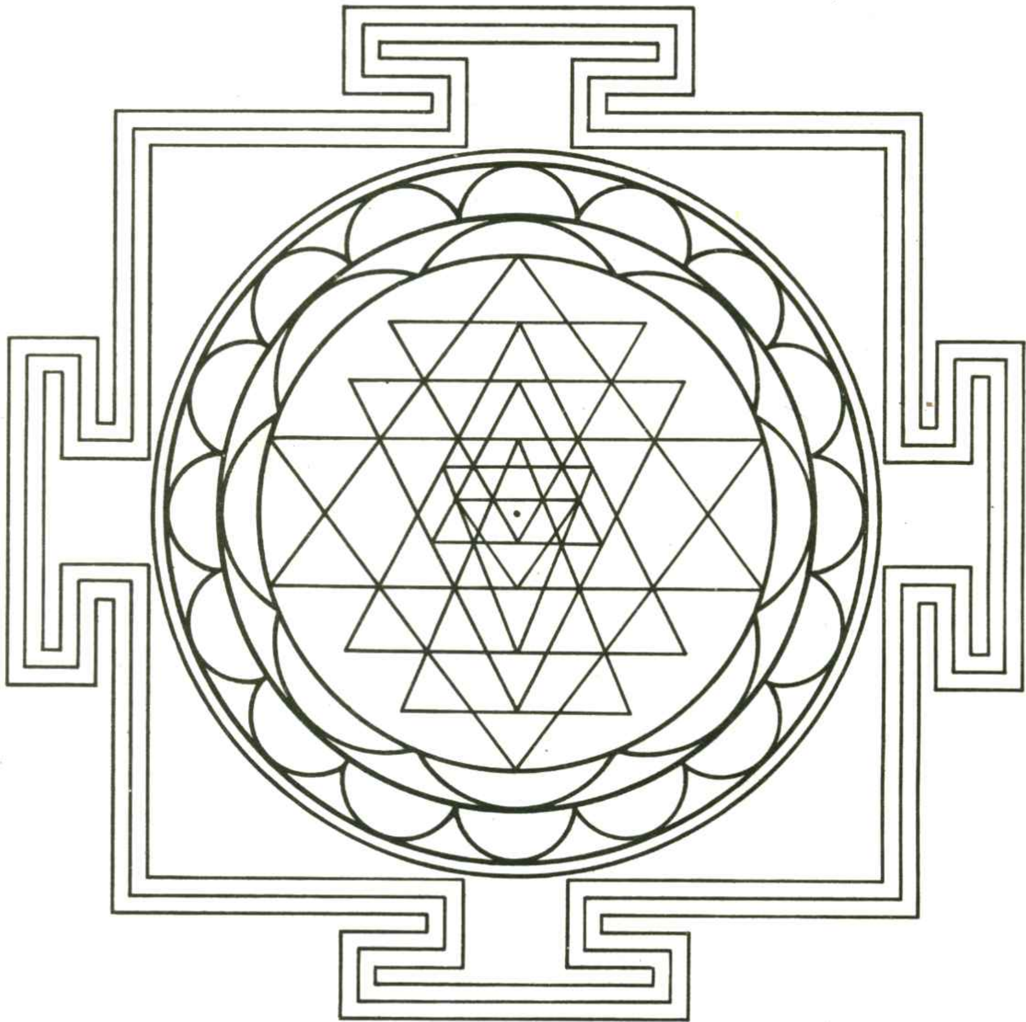
यह ग्रन्थ बहुत पहले ही लिखा जा चुका था किन्तु अभी हमारे पुत्रकल्प श्रीप्रमोदकुमार शर्माकी प्रेरणासे यह प्रस्तुत किया जा रहा है, और पूर्ण विश्वास है कि तन्त्र-शास्त्रका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने वालोंको इस ग्रन्थसे प्रकाश मिलेगा और मिथ्यावादी तान्त्रिकोंसे जनताको मुक्ति मिलेगी।

इस ग्रन्थके लेखनमें सुश्री दीपशिखा (एम. ए.) तथा सुश्री विजयलक्ष्मीने जो परिश्रम किया है और मुद्रणप्रति तैयार की है उसके लिये हम उनके बड़े आभारी हैं और हमारा शुभाशीर्वाद है कि वे अपने जीवनमें निरन्तर सफलता प्राप्त करती रहें। डा. प्रदीप कुमार जैनने इसकी पांडुलिपि तैयार करनेसे अध्यायोंका क्रम व्यवस्थित करनेमें जो परिश्रम किया है, उसके लिये वे धन्यवाद और साधुवादके पात्र हैं।

सीताराम चतुर्वेदी

रामनवमी, सं. २०५५ वि.
वेदपाठी-भवन,
मुज़फ़्फ़रनगर - २५१ ००२

: श्रीयन्त्र :



१



तन्त्र



तन्त्रकी परिभाषा

तन्त्रोंकी व्याख्या करने, उनकी पद्धति और शाखाकी मीमांसा, विशलेषण और विवेचन करनेसे पूर्व तन्त्र शब्दका अर्थ भी जान लेना परम आवश्यक है। शाब्दिक दृष्टिसे तन्त्रका अर्थ है सिद्धान्त, व्याख्या, मीमांसा, विचार, दृढ प्रमाण, औषधि, झाड़ने-फूँकनेका मन्त्र, जादू-टोना, उपाय, अधिकार, शासन, धर्म, कर्त्तव्य, पद, समूह, आह्लाद, आनन्द, सम्पत्ति, परवशता, सम्प्रदाय, उद्देश्य, शिवजी-द्वारा प्रवर्त्तित शास्त्र। यहाँ केवल इसी अन्तिम अर्थमें तन्त्रकी व्याख्या की जा रही है। यह तन्त्र-शास्त्र स्वयं शिवजीने अपने श्रीमुखसे प्रकट किया है।

इस शास्त्रकी प्रधानतः तीन श्रेणियाँ हैं— आगम, यामल और तन्त्र इसलिये जब तन्त्र शास्त्रका विवेचन करना होता है तब केवल तन्त्र ही नहीं आगम और यामलका भी विवेचन और प्रतिपादन नितान्त आवश्यक और अपरिहार्य है। आगमका लक्षण वाराही-तन्त्रमें स्पष्ट लिखा है—

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनं साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च।
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद्विदुर्बुधाः॥

[सृष्टि, प्रलय, देवताओंकी पूजा, सब लोगोंका कल्याण, पुरश्चरण, षट्कर्म-साधन (वेद पढ़ना-पढ़ाना, दान देना-लेना, यज्ञ करना-कराना) और चर्तुविध ध्यान (प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि) ये सात लक्षण जिस ग्रन्थ या पद्धतिमें हों उसे आगम कहते हैं।]

तन्त्रका लक्षण

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रं निर्णय एव च।
देवतानाञ्च संस्थानं तीर्थनाञ्चैव वर्णनम्॥

तथैवाश्रमधर्मश्च विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानञ्चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः॥

उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिषाञ्चैव पुराणाख्यानमेव च॥

कोषस्य कथनञ्चैव ब्रतानां परिभाषणम्।
शौचाशौचस्य चाख्यानं नरकाणाञ्च वर्णनम्॥

हरचक्रस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्।
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च॥

कथ्यते व्यवहारश्च तथा चाध्यात्मवर्णनम्।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते॥



[सृष्टि, प्रलय, मन्त्रोंका निर्णय कि किस कामके लिये कौनसा मन्त्र जपा जाय, देवताओंके संस्थान, तीर्थोंका वर्णन, आश्रम-धर्म (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासीके धर्म), वेदपाठी विप्रोंके संस्थान, भूत अर्थात् प्राणियोंके संस्थान, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि ज्योतिष्पिण्डोंके संस्थान, इतिहास, पुराण, तन्त्रका निर्णय कि किस कामके लिये किस तन्त्रका प्रयोग किया जाय, देवताओंकी

उत्पत्ति, कल्पोंका विवेचन, शब्दकोषका विवेचन, व्रतोंका विधान, शौच और अशौचकी व्याख्या, स्त्री और पुरुषके लक्षणोंका वर्णन, राजाका धर्म, दान करनेका धर्म और विचार, युग-धर्म अर्थात् किस समय किस प्रकारका व्यवहार उचित है वह करना, व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार और आध्यात्मिक विषयोंका जिसमें निरूपण हो उसे तन्त्र कहते हैं।]

यामलका लक्षण

सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम्।
कल्पसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च॥
युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम्॥

[सृष्टि कैसे हुई और कैसे हो सकती है, आकाशमें चमकनेवाले सब प्रकारके ज्योतिष्पिण्डोंका वर्णन, नित्य कर्म, कल्पसूत्र अर्थात् यज्ञ करनेका विधान, वर्णभेद, धर्म-जातिभेद और युग-धर्मका जिसमें वर्णन हो वह यामल कहलाता है।]

इस विवरणसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तवमें तन्त्र क्या है, आगम क्या है और यामल क्या है।

मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र

प्राचीन कालमें अर्थात् वैदिक, स्मृति और पौराणिक कालमें और उसके पश्चात् भी यवनोंके आक्रमण और शासन-तन्त्र स्थापित हो जानेतक अनेक प्रकारकी शारीरिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, लौकिक और सार्वजनिक बहुतसी बाधाओं और विपत्तियोंका निराकरण करनेके लिये तीन उपायोंका अवलम्ब लिया जाता था— मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र। अथर्ववेदमें इन्हीं सब बाधाओं और विपत्तियोंको दूर करनेके लिये अनेक मन्त्र दिए हुए हैं जिनका निर्दिष्ट विधिसे जप करनेसे महामारी, बिजली, भूकम्प, सूखा (अनावृष्टि), बाढ़ (अतिवृष्टि), पशुओंके रोग, शत्रुओंका आक्रमण आदि अनेक विपत्तियोंका तथा व्यक्तिगत दरिद्रता, पुत्र-हीनता, रोग, शोक, मानसिक व्यथा दूर हो सकती है किन्तु मन्त्रका प्रयोग करनेवालेके लिये कठोर नियम यह था कि मन्त्रका प्रयोग करनेके लिये वे कोई पारिश्रमिक नहीं ले सकते थे। अब भी सर्प या बिच्छूका विष झाड़नेवाले लोग मन्त्रके प्रयोगका कोई पारिश्रमिक नहीं लेते, सुनते ही स्वयं वहाँ पहुँच जाते हैं, उपचार करते हैं और अपने ही व्ययसे लौट आते हैं क्योंकि पारिश्रमिकके रूपमें द्रव्य लेते ही मन्त्रका प्रभाव नष्ट हो जाता है। बहुतसे लोग मन्त्रसे आग बाँधते हैं अर्थात् उनपर आगका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे खौलते हुए तेलमें हाथ डाल देते हैं, हाथ चलाते हैं और मैसूरमें विजयादशमीके दिन कड्ग उत्सवमें एक विशेष परिवारका सदस्य बिना किसी प्रकारका सहारा (इँडुवा) लगाए सिरपर भरा हुआ मटका रखकर दिन-भर नाचता हुआ सारे नगरमें घूमता है। इस प्रकार मन्त्रोंके चमत्कार आज भी देखे जा सकते हैं। मन्त्र सिद्ध करनेके लिये या तो साधना करनी पड़ती है या किसी सिद्धके द्वारा शक्तिपात होनेपर वह शक्ति आ जाती है। कभी कभी एक परिवारको ही यह शक्ति दे दी जाती है किन्तु जिसे यह शक्ति दी जाती है उसे विशेष नियमके अनुसार जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यदि उसमें शिथिलता, अनियमितता और असंयम आ जाता है तब वह शक्ति समाप्त हो जाती है। बादलकी कड़क रोकने, वर्षा रोकने या वर्षा होनेके लिये तथा भूत-प्रेत-बाधा दूर करनेके लिये अनेक मन्त्र हैं और जिसे वे मन्त्र सिद्ध हो



जाते है वह केवल देखने, स्पर्श अथवा शान्ति-जल अभिमन्त्रित कर देने मात्रसे बाधा दूर कर देता है। यद्यपि मृत्यु कोई टाल नहीं सकता, वह अवश्यम्भावी है किन्तु ऐसे भी मन्त्र हैं जिनके प्रयोगसे मन्त्रसिद्धको अग्नि जला नहीं सकती, पानी डुबो नहीं सकता। दुर्योधनको जलस्तम्भ विद्या आती थी इसलिये वह बहुत समयतक महाभारतके युद्धके पश्चात् पानीमें छिपा बैठा रहा। मन्त्रके अतिरिक्त पातिव्रत तेज अथवा मन्त्रके प्रभावसे भी ऐसी शक्ति आ जाती है कि अग्नि, जल, वायु किसी प्रकारकी पीडा नही पहुँचा सकते। पातिव्रतके तेजसे ही सीताजीको आग नहीं छू सकी। केवल इतने ही प्रयोजनोंके लिये ही नहीं, सब प्रकारकी कामना सिद्धिके लिये भी अनेक मन्त्र विद्यमान हैं यहाँतक कि कुछ समयके लिये मृत्युको भी टाला जा सकता है, किन्तु मन्त्रका जप करनेवाला परम सात्त्विक और आस्तिक होना चाहिए। छान्दोग्य-उपनिषदमें कहा गया है— आहार-शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः (खाने-पीनेकी शुद्धि होनेसे जीवकी शुद्धि होती है)। जिस व्यक्तिका खान-पान राजसी और तामसी हो उसका जपा हुआ कोई भी मन्त्र सफल नहीं होता, साथ ही जो व्यक्ति लोभसे अर्थात् पारिश्रमिक निश्चित करके जप करता है अथवा इस लोभसे करता है कि मुझे इतना धन मिलेगा, उसका किया हुआ पाठ सर्वथा निष्फल होता है इसलिये मन्त्र उसी व्यक्तिको जपना चाहिए अथवा उसी व्यक्तिसे जपवाना चाहिए जिसका जीवन परम सात्त्विक हो, जिसके मनमें लोभ न हो, जो अत्यन्त श्रद्धा और आस्थाके साथ जप करे और जो भी दक्षिणा मिले उसीसे तृप्त और तुष्ट हो जाय।

तन्त्र

ऊपर तन्त्रकी तीन पद्धतियोंका उल्लेख हो चुका है आगम यामल और तन्त्र, किन्तु तन्त्रके अन्तर्गत औषधियोंका प्रयोग भी सम्मिलित है यहाँतक कि आयुर्वेदमें रोग दूर करनेकी औषधियोंके प्रयोगको अगद-तन्त्र ही कहते हैं। इसके अतिरिक्त, विशेष प्रयोजनोंके लिये जो औषधियोंका प्रयोग होता है वह भी तन्त्रके ही अन्तर्गत है जैसे अपामार्ग (चिर्चिटा)की जड़ पानीमें घिसकर माथेपर लगा लेनेसे निश्चय विजय होती है और जिससे काम कराना होता है वह इच्छित काम कर देता है। इस प्रकारके सैकड़ों प्रयोग हैं जिनसे अपना काम साधा जा सकता है, किसी व्यक्तिको वशमें किया जा सकता है, बाधाएँ दूर की जा सकती हैं और कष्ट दूर किए जा सकते हैं।

यन्त्र

यन्त्र भी तीन प्रकारके होते हैं- अंकयन्त्र, शब्द या बीज-यन्त्र और काष्ठ-धातु-प्रस्तर यन्त्र। अंक-यन्त्रमें किसी विशेष क्रमसे अंक लिखे जाते हैं जिन्हें अनारके कलमसे लाल रोशनाईसे भोजपत्रपर या कागजपर लिखकर किसी व्यक्तिको देनेसे या भीतपर लिख देनेसे लाभ होता है जैसे सत्ताईस का यन्त्र, बीसा-यन्त्र या पन्द्रहका यन्त्र जो दिवालीके दिन लोग अपनी गद्दीपर लिखते हैं। इस प्रकारके अंक-यन्त्रोंमें कुछ तो ऐसे हैं जिनके अंक ऊपरसे नीचे, बाँएँसे दाँएँ अथवा आड़े-तिरछे जोड़नेसे एक ही गणना मिलती है, कुछ ऐसे हैं जिनमें एक विशेष क्रमसे अनेक अंक अंकित होते हैं जैसे २७ कोष्ठोंका यन्त्र जिसमें २७ कोष्ठ ऊपरसे नीचे और २७ दाँएँसे बाँएँ होते हैं। इस प्रकारका यन्त्र जिसके घरमें हो उसे कभी धनकी कमी नहीं होती। श्रीनारायण स्वामीने इस प्रकारके कई सौ यन्त्र बनाए थे जिनमेंसे कुछका विवरण तो प्राप्त है और कुछ केवल अंकित मात्र ही हैं।



शब्द-यन्त्र या बीज-यन्त्रकी विधि यह है कि कुछ विशेष बीज या अक्षर अनारके कलमसे भोजपत्र या कागजपर लाल रोशनाईसे रविवारके दिन दोपहर अभिजित् नक्षत्रमें (ग्यारह बजकर

छत्तीस मिनटसे बारह बजकर चौबीस मिनट- तक) उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, रोहिणी या पुष्य नक्षत्रमें लिखकर या लिखा रक्खा हुआ दे दिया जाय तो ग्रहण करनेवालेका कष्ट दूर हो जाता है और उसकी मन:कामना पूर्ण हो जाती है। विभिन्न कार्योंके लिये इस प्रकारके अनेक बीजाक्षर यन्त्रोंके निर्माणके लिये ग्रन्थोंमें प्राप्त हो जाते हैं और उनसे निर्दिष्ट फल भी प्राप्त हो जाते हैं किन्तु उसके लिये भी यह नियम है कि ये बीज-यन्त्र लिखकर देनेका अधिकार भी उसे ही है जिसे वह बीजाक्षर सिद्ध हो अथवा जो पुरुष श्रद्धावान्, आस्तिक और निर्लोभी हो। इस प्रकारके बीज-यन्त्रके लिये किसी प्रकारका कोई भी द्रव्य स्वीकार नहीं करना होता क्योंकि द्रव्य लेते ही उसका फल समाप्त हो जाता है।

काष्ठ-धातु-प्रस्तर-यन्त्र

उपर्युक्त दोनों प्रकारके यन्त्रोंके अतिरिक्त जीवनमें काम आनेवाले वे सब लकड़ी, पत्थर और धातुसे बने हुए यन्त्र हैं जो हमारे नित्य और नैमित्तिक जीवनमें काम आते हैं जैसे— गाड़ी, ढोल, वाद्य-यन्त्र, अनेक प्रकारके पात्र, रई तथा अन्य साधनोंके अतिरिक्त अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और वर्त्तमान-कालीन सब मशीनें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। लगभग सौ बरस पूर्व-तक हजारों वर्षोंसे एक ही प्रकारके काष्ठ,पत्थर या धातुके यन्त्र काममें आते रहे किन्तु गैस, बिजली आदिके कारण ऐसे अनेक प्रकारके यन्त्र बन गए हैं जिनके कारण आजका मानव-जीवन पूर्णत: यन्त्रबद्ध हो गया है और अभी भी इस यन्त्र-चालित जीवन-पद्धतिको और भी अधिक यान्त्रिक बनानेके लिये दिन-रात नये नये प्रयोग हो रहे हैं जिनमें एक ओर तो मानव-जीवनको सुखी और सरल बनानेके लिये नये नये यन्त्र बनाए जा रहे हैं, दूसरी ओर मानवताके विनाशके लिये अनेक प्रकारके बम, घातक यन्त्र और विध्वंसकारी साधन निर्मित किए जा रहे हैं। यद्यपि कई बार अनेक देशोंके नेताओंने मिलकर विध्वन्सकारी अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग रोकनेकी चेष्टा की तथापि उसका परिणाम कुछ नहीं हुआ और सभी देश अपने सामर्थ्यके अनुसार या अपनी सुरक्षाके लिये अथवा शत्रु-देशोंको त्रस्त करनेके लिये इस प्रकारका प्रयास करते जा रहे हैं। अनेक प्रकारके यान (मोटरकार, विमान, ट्रक, बस आदि) इतने रूपों, आकारों, प्रकारोंमें नये नये ढंगसे प्रतिवर्ष निर्मित किए जा रहे हैं, मनुष्यको स्वस्थ रखने, उसके रोग दूर करनेके लिये अनेक प्रकारकी औषधियाँ, रोग-परीक्षण करने और निदानके लिये एक्सरे, अल्ट्रासाउण्ड आदि अनेक साधन प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिनसे यह भी जाना जा सकता है कि गर्भमें बालक है या बालिका किन्तु उसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि यदि गर्भमें बालिका है तो उसका निर्गम करा दिया जाता है। अभी थोड़े दिनों पहलेतक भ्रूण हत्याको पाप समझा जाता था और कानूनकी दृष्टिसे भी वह अपराध था किन्तु अब उसका कानून हटा लेनेसे भ्रूण हत्याको न पाप समझा जाता है न अपराध।

इस प्रकार यन्त्रोंके निर्माणकी यह प्रक्रिया कितने रूपोंमें व्यक्त होती चलेगी और उससे मानव-जीवनका कितना भला या बुरा होगा यह बता सकना सम्भव नहीं है। यह प्रगति जिस गतिसे चल रही है वह अप्रतिहत है। विचारणीय बात यही है कि इस तीव्र गतिका परिणाम मानव-जीवनके लिये श्रेयस्कर होगा या विध्वंसकारी।



१	१०	४	२	९	४	३	४	८	४	३	८	६	७	२
८	५	२	७	५	३	१०	५	ऐं	९	५	१	१	५	९
६	ॐ	९	६	१	८	२	६	७	२	७	६	८	३	४
९	२	४										७	६	२
स्वौं	५	१०		३ २/३			१० २/३			५ २/३		सौः	५	१०
६	८	१										८	४	३
१	८	६										८	१	६
१०	५	क्लीं		८ २/३			६ २/३			४ २/३		३	५	७
४	२	९										४	९	२
२	७	६										९	हौं	६
९	५	१		७ २/३			२ २/३			९ २/३		२	५	८
४	३	८										४	१०	१
३	४	८	४	९	२	६	१	८	७	ह्रीं	८	८	३	४
१०	५	श्रीं	३	५	७	७	५	३	६	५	४	१	५	९
२	६	७	८	१	६	२	९	४	२	१०	३	६	७	२

२



तन्त्रागम–पद्धतियाँ तथा उनके तन्त्र



वाराही-तन्त्रके अनुसार देवलोक, ब्रह्मलोक और पाताल-लोकमें नौ लाख तन्त्र सम्बन्धी श्लोक हैं और पृथ्वीपर केवल भारतमें एक लाख श्लोक प्राप्त हैं। इनमें आगम तीन प्रकारका है और चौथा ईश्वर है। कल्प भी चार प्रकारके हैं— आगम, डामर, यामल और तन्त्र।

आगमं त्रिविधं प्रोक्तं चतुर्थमीश्वरं स्मृतम्।
कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्तः आगमो डामरस्तथा।
यामलश्च तथा तन्त्रं तेषां भेदाः पृथक् पृथक्॥

महाविश्वसारतन्त्रमें इसे और भी स्पष्ट करके लिखा है—

चतुःषष्टिश्च तन्त्राणि यामलादीनि पार्वति।
सफलानीह वाराहे विष्णुक्रान्तासु भूमिषु॥
कल्पभेदेन तन्त्राणि कथितानि च यानि च।
पाखण्डमोहनायैव विफलानीह सुन्दरि॥

[यामल आदि चौंसठ तन्त्र विष्णुकान्ता-भूमि पर ही फलदायक होते हैं अर्थात् उन्हीं स्थानोंपर उनका फल प्राप्त होता है जहाँ विष्णुकान्ताकी बेल लगी होती है। विष्णुकान्ताका फूल मटरके फूलके समान होता है किन्तु उसका रंग नीला होता है। यह फूल दो प्रकारका होता है विष्णुकान्ता, शिवकान्ता। शिवकान्ताका फूल वैसा ही होता है किन्तु उसका रंग श्वेत होता है। कल्पके भेदसे अर्थात् विभिन्न कल्पोंके लिये जो तन्त्र बताए गए हैं वे पाखण्ड दूर करनेके लिये कहे गए हैं। उनसे कोई फल नहीं होता।]

महानिर्वाण-तन्त्रमें स्वयं महादेवजीने ही कह दिया—

कलिकल्मषदीनानां द्विजातीनां सुरेश्वरि।
मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा॥
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते॥
विना ह्यागममार्गेन कलौ नास्ति गतिः प्रिये।
श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे॥
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः॥

[कलियुगके कारण दीन द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) लोगोंको पवित्र-अपवित्रका विचार नहीं रह जाएगा। ऐसी अवस्थामें जितने कर्म इन द्विजातियोंके लिये वेदमें बताए गए हैं उनका फल उन्हें कैसे मिल पावेगा? इतना ही नहीं, स्मृतियोंमें भी उनके लिये जो कर्म और कर्त्तव्य बताए गये हैं उनसे भी उनकी कामना पूर्ण नहीं हो पावेगी। शिवजीने पार्वतीजीसे कहा— प्रिये ! मैं तुमसे यह सच्ची बात बताए देता हूँ कि कलियुगमें आगम-मार्ग (तन्त्र-मार्ग) के अतिरिक्त मनुष्योंका कल्याण किसी प्रकारसे सम्भव नहीं है। मैंने वेद, स्मृति और पुराणोंमें अनेक बार कहा है कि साधक लोग अर्थात् जो अनेक प्रकारकी कामनाओंकी पूर्णता चाहेंगे वे कलियुगमें तन्त्रके विधानके द्वारा ही देवताओंकी पूजा करें।] यह तो सत्य है और तथ्य है कि आजकल पौरोहित्य-कर्म करनेवाले अनुष्ठान, जप या



हवन करनेवाले और पण्डित कहलानेवाले लोग उदात्त, अनुदात्त और स्वरितके अनुसार वैदिक मन्त्र नहीं पढ़ते हैं और कुछ घोर कलियुगी लोग तो गायत्री मन्त्र भी चिल्ला-चिल्लाकर अशुद्ध पाठ करते और कराते हैं इसीलिये भगवान् शंकरने आगे कहा है कि 'जो व्यक्ति कलियुगमें आगम (तन्त्र)-को छोड़कर किसी अन्य मार्गका अवलम्बन करेगा उसकी सद्‌गति नहीं होगी।'

कलावगममुल्लंघ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्तते।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः॥

किन्तु कठिनाई यह है कि आगम अर्थात् तन्त्रका भी ज्ञान तो लोगोंको नहीं है।

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ मन्त्राः मृता इव॥

पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः॥

अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म बन्ध्यास्त्रीसंगमो यथा।
न तत्र फलसिद्धिः स्यात् श्रम एव हि केवलम्॥

कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥

कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः।
शस्ताः कर्मषु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु॥

[अब सारे वैदिक मन्त्र विधिपूर्वक अध्ययन न करनेसे विषहीन सर्पके समान अशक्त हो गए हैं। सतयुग, त्रेता और द्वापरयुगमें तो वैदिक मन्त्र सफल होते थे किन्तु अब वे सब मृतकके समान हो गए हैं। जैसे दीवारपर बनी हुई पुतलियोंमें सारे अंग तो बने होते हैं किन्तु वे कोई काम नहीं कर.सकती वैसे ही कलियुगमें विधिपूर्वक अध्ययन न करनेसे वैदिक मन्त्र भी शक्तिहीन हो गए। जैसे बाँझ स्त्रीके पुत्र नहीं होता वैसे ही विधिपूर्वक वेदका अध्ययन न करनेसे वैदिक मन्त्रोंके द्वारा भी सिद्धि नहीं होती और उसके लिये किया हुआ सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है। कलियुगमें जो व्यक्ति अन्य शास्त्रोंके द्वारा बताए हुए मार्गोंसे अपनी कामनाएँ सिद्ध करना चाहता है उसका श्रम वैसा ही है जैसे कोई प्यासा व्यक्ति पानी पीनेके लिये गंगाजी के किनारे खड़ा होकर भी कूँआँ खोदना चाहता हो। कलियुगमें तो केवल तन्त्रमें बताए हुए मन्त्र ही शीघ्र फल देते हैं और उनका प्रयोग जप, यज्ञ आदि सभी कार्योंमें उचित है। इसीलिये रघुनन्दन आदि स्मार्त्त विद्वानोंने भी तन्त्रोंको ही कलियुगकी साधनाके लिये प्रामाणिक माना है।]

गुह्यशास्त्र (गुप्त शास्त्र अर्थात् तन्त्र)-को हिन्दू और बौद्ध दोनोंने ही बहुत गुह्य-तत्त्व (गुप्त विद्या) माना है। यह तन्त्र-शास्त्र उसीको बताना चाहिए जिसने नियमपूर्वक दीक्षा ली हो और जिसका किसी सिद्ध तान्त्रिकने अभिषेक किया हो। कुलार्णवतन्त्रमें स्पष्ट लिखा है कि यदि कोई आकर माँगे तो धन दे दे, अपनी पत्नी भी दे दे, प्राणतक दे दे किन्तु यह गुह्य-तन्त्रका रहस्य किसीको न बतावे। यही कारण है कि तन्त्रका भी अव लोप होता जा रहा है। आज भारतमें केवल दो तान्त्रिक-पीठ रह गए हैं जहाँ केवल



दो ही सिद्ध पुरुष विद्यमान हैं किन्तु उन्हें बड़ा भारी दु:ख यही है कि उन्हें कोई साधक नहीं मिल रहा है। जो लोग तान्त्रिक बनकर दुकान खोले बैठे हैं वे सबके सब ढोंगी, पाखण्डी और धूर्त्त हैं। उन्हें तन्त्र विद्याका 'क' 'ख' 'ग' भी नहीं आता।

आगमतत्त्व-विलासमें निम्नलिखित कुछ तन्त्रोंका उल्लेख है-स्वतन्त्रतन्त्र, फेत्कारीतन्त्र, उत्तरतन्त्र, नीलतन्त्र, वीरतन्त्र, कुमारीतन्त्र, कालीतन्त्र, नारायणीतन्त्र, तारिणीतन्त्र, बालातन्त्र, समयाचार तन्त्र, भैरवतन्त्र, भैरवीतन्त्र, त्रिपुरातन्त्र, वामकेश्वरतन्त्र, कुक्कुटेश्वर तन्त्र, मातृकातन्त्र, सनत्कुमारतन्त्र, विशुद्धेश्वरतन्त्र, सन्मोहनतन्त्र, गौतमीयतन्त्र, वृहद्गौतमीयतन्त्र, भूतभैरवतन्त्र, चामुण्डातन्त्र, पिंगलातन्त्र, वाराहीतन्त्र, मुण्डमालातन्त्र, योगिनीतन्त्र, मालिनीविजयतन्त्र, स्वच्छन्दभैरवतन्त्र, महातन्त्र, शक्तितन्त्र, चिन्तामणितन्त्र, उत्तमत्तभैरवतन्त्र, त्रैलोक्यसारतन्त्र, विश्वसारतन्त्र, तन्त्रामृत, महाफेत्कारीतन्त्र, वारवीयतन्त्र, तोडलतन्त्र, मालिनीतन्त्र, ललितातन्त्र, त्रिशक्तितन्त्र, राजराजेश्वरीतन्त्र, महामाहेश्वरोत्तरतन्त्र, गवाक्षतन्त्र, गान्धर्वतन्त्र, त्रैलोक्यमोहनतन्त्र, हंसपारमेश्वर, हंसमाहेश्वर, कामधेनुतन्त्र, वर्णविलासतन्त्र, मायातन्त्र, मन्त्रराज, कुब्जिकातन्त्र, विज्ञानलतिका, लिंगागम, कालोत्तर, ब्रह्मजामल, आदिजामल, रुद्रजामल, वृहज्जामल, सिद्धजामल और कल्पसूत्र।

इनके अतिरिक्त और भी कुछ तान्त्रिक ग्रन्थोंके नाम पाए जाते हैं जैसे— मत्स्यसूक्त, कुलसूक्त, कामराज, शिवागम, उड्डीश, कुलोड्डीश, वीरभद्रोड्डीश, भूतडामर, डामर, यक्षडामर, कुलसर्वस्व, कालिका-कुलसर्वस्व, कुलचूडामणि, दिव्य, कुलसार, कुलार्णव, कुलामृत, कुलावली, कालीकुलार्णव, कुलप्रकाश, वशिष्ठ, सिद्धसारस्वत, योगिनीहृदय, कालीहृदय, मातृकार्णव, योगिनीजालकुलक, लक्ष्मीकुलार्णव, तारार्णव, चन्द्रपीठ, मेरुतन्त्र, चतु:शती, तत्त्वबोध, महोग्र, स्वच्छसारसंग्रह, ताराप्रदीप, संकेतचन्द्रोदय, षट्त्रिंशतत्त्वक, लक्ष्यनिर्णय, त्रिपुरार्णव, विष्णुधर्मोत्तर, मन्त्रदर्पण, वैष्णवामृत, मानसोल्लास, पूजाप्रदीप, भक्तिमञ्जरी, भुवनेश्वरी, पारिजात, प्रयोगशास्त्र, कामरत्न, त्रियासार, आगमदीपिका, भावचूडामणि, तन्त्रचूडामणि, बृहत्श्रीक्रम, श्रीक्रम, सिद्धशेखर, गणेशविमर्शिनी, मन्त्रमुक्तावली, तत्त्वकौमुदी, तन्त्रकौमुदी, मन्त्रतन्त्रप्रकाश, रामार्चनचन्द्रिका, शारदातिलक, जयार्णव, सारसमुच्चय, कल्पद्रुम, ज्ञानमाला, पुरश्चरणचन्द्रिका, आगमोत्तर, तत्त्वसार, सारसंग्रह, देवप्रकाशिनी, तन्त्रार्णव, क्रमदीपिका, तारारहस्य, श्यामारहस्य, तन्त्ररत्न, तन्त्रप्रदीप, ताराविलास, विश्वमातृका, प्रपञ्चसार, तन्त्रसार और रत्नावली। इनके अतिरिक्त महासिद्धि सारस्वतमें सिद्धीश्वर, नित्यतन्त्र, देव्यागम, निवन्धतन्त्र, राधातन्त्र, कामाख्यातन्त्र, महाकालतन्त्र, मन्त्रचिन्तामणि, कालीविलास और महाचीनतन्त्रका उल्लेख है।

उपर्युक्त तन्त्र-ग्रन्थोंके अतिरिक्त अन्य निम्नांकित तन्त्र-ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं— आचारसारप्रकरण, आचारसारतन्त्र, आगमचन्द्रिका, आगमसार, अन्नदाकल्प, ब्रह्मज्ञानमहातन्त्र, ब्रह्माण्डतन्त्र, चिन्तामणितन्त्र, दक्षिणाकल्प, गौरीकञ्चलिकातन्त्र, गायत्रीतन्त्र, ब्राह्मणोल्लास, गुह्ययामलतन्त्र, ईशानसंहिता, जपरहस्य, ज्ञानानन्दतरंगिणी, ज्ञानतन्त्र, कैवल्यतन्त्र, ज्ञानसंकलिनीतन्त्र, कौलिकार्चनदीपिका, क्रमचन्द्रिका, कुमारीकवचोल्लास, लिंगार्चनतन्त्र, निर्वाणतन्त्र, महानिर्वाणतन्त्र, वृहन्निर्वाणतन्त्र, वरदातन्त्र, मातृकाभेदतन्त्र, निगमकल्पद्रुम, निगमतत्त्वसार, निरुत्तरतन्त्र, पिच्छिलातन्त्र, पीठनिर्णय, पुरश्चरणविवेक, पुरश्चरणरसोल्लास, शकिसंगमतन्त्र, सरस्वतीतन्त्र, शिवसंहिता, श्रीतत्त्वबोधिनी, स्वरोदय, श्यामाकल्पलता, श्यामार्चनचन्द्रिका, श्यामाप्रदीप, ताराप्रदीप, शाक्तानन्दतरंगिणी, तत्त्वानन्दतरंगिणी, त्रिपुरासारसमुच्चय, वर्णभैरव, वर्णोद्धारतन्त्र, बोधचिन्तामणि, मणितन्त्र, योगिनीहृदयदीपिका, यामल इत्यादि। वाराहीतन्त्रमें तन्त्रोंके नाम और उनकी श्लोक संख्या इस प्रकार लिखी गई है—



तन्त्र का नाम	श्लोक संख्या
मुक्तक	६०५०
शारदा	१६०२५
प्रपञ्च (प्रथम)	१२३००
प्रपञ्च (द्वितीय)	८०२७०
प्रपञ्च (तृतीय)	५३१०
कपिल	६०८०
योग	१३३११
कल्प	५०९०
कपिञ्जल	२८०१२०
अमृतशुद्धि	५००५
वीरागम	६६०६
सिद्धसंबरण	५००६
योगडामर	२३५३३
शिवडामर	११००७
दुर्गाडामर	११५०३
सारस्वत	९९०५
ब्रह्मडामर	७१०५
गान्धर्वडामर	६००६०
आदियामल	३५३००
ब्रह्मयामल	२२१००
विष्णुयामल	२४०२०
रुद्रयामल	६४६५
गणेशयामल	१०३२३
आदित्ययामल	१२०००
नीलपताका	५०००
वामकेश्वर	२५
मृत्युञ्जयतन्त्र	१३२२०
योगार्णव	८३०७
मायातन्त्र	११०००
दक्षिणामूर्त्ति	५५५०
कालिका	११०१
कामेश्वरीतन्त्र	३०००
तन्त्रराज	९०९०



हरगौरीतन्त्र (प्रथम)	२२०२०
हरगौरीतन्त्र (द्वितीय)	१२०००
तन्त्रनिर्णय	२८
कुब्जिकातन्त्र (प्रथम)	१०००७
कुब्जिकातन्त्र (द्वितीय)	६०००
कुब्जिकातन्त्र (तृतीय)	३०००
कात्यायनीतन्त्र	२४२००
प्रत्यंगिरातन्त्र	८८००
महालक्ष्मीतन्त्र	५५०५
देवीतन्त्र	१२०००
त्रिपुरार्णव	८८०६
सरस्वतीतन्त्र	२२०५
आद्यातान्त्र	२२९१५
योगिनीतन्त्र (प्रथम)	२२५३२
योगिनीतन्त्र (द्वितीय)	६३०३
वाराहीतन्त्र	६३०३
गवाक्षतन्त्र	६५१५
नारायणीतन्त्र	५०२०३
मृडाणीतन्त्र (प्रथम)	४४९०
मृडाणीतन्त्र (द्वितीय)	३०००
मृडाणीतन्त्र (तृतीय)	३३०

वाराहीतन्त्रमें यह भी लिखा है कि इन उपर्युक्त तन्त्रोंके अतिरिक्त बौद्धोंके और कपिल-द्वारा वर्णित और भी अनेक तन्त्र हैं। जैमिनि, वसिष्ठ, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भार्गव, सिद्ध, याज्ञवल्क्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि अनेक ऋषियोंके द्वारा रचे हुए तन्त्रोंका उल्लेख भी मिलता है जिनकी कोई गणना नहीं की जा सकती। जैसे हमारे तन्त्र भगवान् शंकर-द्वारा उपदिष्ट हैं वैसे ही बौद्ध लोग मानते हैं कि समस्त बौद्धतन्त्र भगवान् बुद्ध-द्वारा उपदिष्ट हैं, किन्तु भगवान् बुद्धने तो केवल धम्मपदकी ही रचना की थी। बौद्धतन्त्रोंका प्रादुर्भाव भगवान् बुद्धके निर्वाण-कालके लगभग तीन सौ वर्ष पश्चात् वज्रयानी बौद्धोंके द्वारा हुआ था। हमारे यहाँ तो दस अथवा तेंतीस महाविद्याएँ तान्त्रिकोंके द्वारा मान्य की गई हैं—अन्नपूर्णा, कामाख्या, काली, जम्भिनी, कमला, कामाक्षी, गुह्यकाली, त्वरिता, कमलात्मिका, कालिका, छिन्नमस्ता, तारा, तारिणी, धूमावती, भुवनेश्वरी, मोहिनी, तुलजा, नीला, भैरवी, वाग्वादिनी, त्रिपुरसुन्दरी, प्रत्यंगिरा, महालक्ष्मी, वासली, त्रिपुरा, बगला, मातंगा, षोडशी, दुर्गा, बाला, मातंगी, शैलवासिनी, सुभारी। किन्तु बौद्धोंके यहाँ केवल ताराको ही महाशक्ति मानकर बौद्ध तान्त्रिक तन्त्र-सिद्धि करते हैं। विचित्र बात यह है कि बौद्धोंके तन्त्र भी संस्कृत भाषामें रचे गए हैं। यद्यपि बौद्धोंकी मान्य भाषा पालि या अट्ठकथा रही है तथापि तन्त्र-निर्माणके लिये उन्होंने संस्कृतका ही आश्रय लिया। यह स्मरण रखना चाहिए कि केवल बुद्ध-वचनको ही पालि कहा गया



है। काच्चायनने अपने पालि व्याकरणमें सूत्र ही दिया है— ततो बुद्धवचनम्हि। लंकामें जो बौद्ध साहित्य गया उन्होंने भी स्पष्ट कहा— पालीमत्तं दूधानीतं न तु अट्ठकथा इधा। (यहाँ हम लोग केवल पालिमात्र अर्थात् बुद्धवचन ही लाए हैं अट्ठकथा अर्थात् अन्य बौद्ध आचार्योंके वचन नहीं लाए हैं।)

बौद्ध तन्त्रोंमें निम्नांकित तन्त्र प्रधान हैं— प्रमोदमहायुग, परमार्थसेवा, पिण्डीक्रम, सम्पुटोद्‌यभव, हेवज्र, बुद्धकपाल, सम्बरतन्त्र या सम्बरोदय, वाराहीतन्त्र या वाराहीकल्प, योगाम्बर, डाकिनीजाल, शुक्लयमारि, कृष्णयमारि, पीतयमारि, रक्तयमारि, श्यामयमारि, क्रियासंग्रह, क्रियाकन्द, क्रियासागर, क्रियाकल्पद्रुम, क्रियार्णव, अभिधानोत्तर, क्रियासमुच्चय, साधनमाला, साधनासमुच्चय, साधनसंग्रह, साधनतन्त्र, साधनपरीक्षा, साधनकल्पलता, तत्त्वज्ञान, ज्ञानसिद्धि, गुहासिद्धि, उड्डियान, नागार्जुन, योगपीठ, पीठावतार, कालवीरतन्त्र या चण्डरोषण, वज्रवीर, वज्रसत्त्व, मरीचि, तारा, वज्रधातु, विमलप्रभा, मणिकर्णिका, त्रैलोक्यविजय, सम्पूट, मर्मकालिका, कुरुकुल्ला, भूतडामर, कालचक्र, योगिनी, योगिनीसञ्चार, योगिनीजाल, योगाम्बरपीठ, उड्डामर, वसुन्धरासाधन, नैरात्म, डाकार्णव, क्रियासार, यमान्तक, मञ्जुनी, तन्त्रसमुच्चय, क्रियावसन्त, हयग्रीव, संकीर्ण, नामसंगीति, अमृतकर्णिकानामसंगीति, गूढोत्पादनामसंगीति, मायाजाल, ज्ञानोदय, बसन्ततिलक, निष्पन्नयोगाम्बर और महाकालतन्त्र।

इनके अतिरिक्त हमारे तान्त्रिक कवचोंके समान नेपाली और तिब्बती बौद्धोंके भी अनेक धारणीसंग्रह हैं जिनका कहीं पूरा विवरण प्राप्त नहीं होता। वास्तवमें तन्त्रोंका अधिक प्रचार और प्रयोग बौद्धोंने ही किया किन्तु पीछे चलकर बौद्ध धर्मके लोप होनेके साथ उनकी तन्त्र-साधना भी लुप्त हो गई किन्तु बौद्धोंके तन्त्र-ग्रन्थ अब भी बहुत संख्यामें उपलब्ध हैं किन्तु अब कोई भी बौद्ध तान्त्रिक कहीं नहीं रहा। तिब्बतमें जो तन्त्र-ग्रन्थ हैं वे ऋग्युदु नाम से प्रसिद्ध हैं किन्तु उनका प्रयोग न कोई जानता न करता। यह ऋग्युदु ७८ भागोंमें विभक्त है जिनमें २६४० स्वन्तन्त्र तन्त्र-ग्रन्थ हैं। उनमें प्रधानत: बौद्धोंके गुह्यक्रियाकाण्ड, उपदेश, स्तव, कवच, मन्त्र और पूजा-विधिका वर्णन है।

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि तन्त्र-साहित्य बहुत विस्तृत, विशाल, व्यापक और विविध प्रकारका है जिसे केवल पाठ मात्र करनेके लिये ही कई जन्मोंकी आवश्यकता है और सिद्ध करना तो अब किसीके बसका है ही नहीं।





: त्रयी १५ यंत्र :

१	८	६
१०	५	ॐ
४	२	९

२	७	६
९	५	१
४	३	८

३	४	८
१०	५	ॐ
२	६	७

शुद्धोयम सहृदयश्च

४	३	८
९	५	१
२	७	६

५	५	५
५	५	५
५	५	५

६	१	८
७	५	३
२	९	४

यांत्रिकोयम

७	ॐ	८
६	५	४
२	१०	३

८	३	४
१	५	९
६	७	२

९	२	४
ॐ	५	१०
६	८	१

२	९	४
७	५	३
६	१	८

४	९	२
३	५	७
८	१	६

६	७	२
१	५	९
८	३	४

गणितव्य

८	१	६
३	५	७
४	९	२

३	१०	२
४	५	६
८	ॐ	७

७	६	२
ॐ	५	१०
८	४	३

३



तन्त्रकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि



दार्शनिक दृष्टिसे तन्त्रके तीन प्रकार हैं— शिवोक्त अर्थात् शैव, शाक्त और वैष्णव। यद्यपि प्रारंभमें केवल शिवोक्त तन्त्र ही प्रसिद्ध थे और उन्हींका प्रयोगभी होता था किन्तु जबसे शक्ति-पूजा प्रारंभ हुई तबसे शाक्त तन्त्रोंका अविर्भाव और प्रयोग होने लगा। संयोगवश शैव तन्त्रके प्रारम्भमें ही आचारके दो स्वरूप हो गए थे— एक दक्षिणाचार दूसरा वामाचार। इसी प्रकार शाक्त-तन्त्रके भी दो रूप तो हुए— दक्षिणाचार और वामाचार किन्तु दक्षिणाचारका प्राय: लोप हो गया और वामाचार ही साधना-तन्त्रका मुख्य मार्ग रह गया। वैष्णव तन्त्र शुद्ध रूपसे दक्षिणाचारी है। उनमें पञ्च मकारोंका कोई स्थान नहीं है। उनके सम्पूर्ण कल्प और साधना-पथ पूर्णत: सात्विक और शुद्धाचारी हैं। ये तीनों तान्त्रिक सम्प्रदाय-वाले अपनी अपनी तान्त्रिक पद्धतिके अनुसार ही साधना किया करते थे। अब तो तीनों सम्प्रदायोंमेंसे किसी सम्प्रदायके भी कोई सिद्ध तान्त्रिक नहीं रह गए और केवल दो सिद्ध तान्त्रिक स्वामी भैरवानन्द अवधूत तन्त्राचार्य तथा स्वामी रुद्रस्वरूपाचार्य तन्त्राधिपति सर्वतन्त्रज्ञ शेष हैं और उन्हें यही बड़ा भारी क्लेश है कि कोई एक भी व्यक्ति उन्हें ऐसा प्राप्त नहीं हुआ जो तन्त्र-विहित सात्त्विक मार्गसे साधना करनेके लिये तत्पर हो। जो एक दो आए भी वे भी साधनाकी कठोरतासे त्रस्त होकर बीचमें ही छोड़कर भाग गए।

दक्षिणाचारी और वामाचारी दोनों पद्धतियोंके तान्त्रिक पञ्च मकार तो मानते हैं किन्तु उनकी व्याख्या दोनों अपने अपने ढंगसे करते हैं। निम्नांकित श्लोकमें पाँचों मकारोंका यह विवरण प्राप्त होता है—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम् ॥

[मद्य, मांस, मीन (मछली), मुद्रा (भुना हुआ चिउड़ा, चावल, गेहूँ, चना) और मैथुनको योगियोंके लिये मुक्तिदायक बताया गया है।] किन्तु वास्तवमें मद्य-मांस आदिका वह अर्थ नहीं है जो सामान्यत: वामाचारी तथा अल्पज्ञ लोग लगाया करते हैं।

गन्धर्वतन्त्रके अनुसार ब्रह्मरन्ध्र (सिरके ऊपरी भागमें बालके सहस्रवें भागके संमान अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र)-में समवस्थित जो उलटा सहस्रदल कमल है उसमेंसे बह निकलनेवांली अमृतकी धाराको ही मद्य बताया गया है—

जिह्वया-गलसंयोगात् पिबेत्तदमृतं तदा।
योगिभि: पिबते तत्तु न मद्यं गौडपैष्टिकम्॥

(जीभ उलटकर गलेके संयोगसे जो अमृत योगी लोग पीते हैं यह वह मद्य नहीं है जो गुड़ और पिष्टिक (अन्न) से खींचकर बनाया जाता है।)

मांसके सम्बन्धमें भी कुलार्णवतन्त्रमें लिखा हुआ है—

पुण्यापुण्ये पशू हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं मांसाशी सो निगद्यते॥



(योग जाननेवाला जो पुरुष अपने ज्ञानके खड्गसे पुण्य और पाप-रूपी पशुओंको मारकर अपने चित्तको परमतत्त्व ब्रह्ममें लीन कर देता है वही मांस खानेवाला कहलाता है)

मीनके सम्बन्धमें आगमसारमें लिखा है—

गंगा-यमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः॥

(गंगा (इडा) और यमुना (पिंगला)के बीच (श्वास और प्रश्वास नामके) दो मत्स्य हैं। (प्राणायामके द्वारा) जो इन्हें खा जाय वही मत्स्य-साधक कहलाता है।)

मुद्राके सम्बन्धमें विजयतन्त्रमें लिखा है—

असत्संगतिमुद्राणं तन्मुद्रा परिकीर्त्तिता।
सत्संगेन भवेन्मुक्तिः असत्संगेषु बन्धनम्॥

(दुष्टोंकी संगतिसे बचे रहनेको ही मुद्रा कहते हैं। क्योंकि सत्संगसे मुक्ति मिलती है और दुष्टोंकी संगतिसे बन्धन होता है।)

इसी क्रममें मैथुनकी व्याख्या करते हुए बताया गया है—

इडापिंगलयोः प्राणान् सुषुम्नायां प्रवर्त्तयेत्।
सुषुम्नाशक्तिरुद्दिष्टा जीवेऽयं तु परः शिवः।
तयोस्तु संगमे देवैः सुरतं नाम कीर्त्तितम्॥

(इडा और पिंगलामें स्थित प्राणों (श्वास-प्रश्वासों)को सुषुम्णामें प्रवर्त्तित कर दे क्योंकि सुषुम्णा ही शक्ति है और जीव ही परात्मा शिव है। उनके (जीव और सुषुम्णाके) पारस्परिक संगमको ही देवताओंने मैथुन बताया है।)

पञ्च मकार

तन्त्र ग्रन्थोंमें पंच मकारकी व्याख्या और भी अनेक प्रकारसे की गई है—

मद्य

जिस समय साधककी कुण्डलिनी, षट्चक्रका भेदन करके ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सहस्रार-चक्रपर पहुँचती है उस समय सोम-कमल-चक्रसे श्वेत रंगका अमृत टपकता है। यही मद्य या सुरा है।

ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।
या शुभ्रा सुकला सुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा॥ (भैरवयामल)

व्योमपंकजनिष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः॥

सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्राद् वरानने।
पीत्वानन्दमयीं तां यः स एव मद्यसाधकः ॥ (आगमसार)

मांस



वाणीपर संयम करके काम, क्रोध आदि पशुओंको ज्ञानरूपी तलवारसे मारकर अपने सब कर्म परब्रह्मको समर्पित कर देना ही मांस-प्रयोग करना है।

कामक्रोधसुलोभमोहपशुकाँश्छित्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं भुञ्जन्ति तेषां बुधाः॥

पुण्यापुण्योभयं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं स मांसांशी निगद्यते॥ (भैरवयामल)

मत्स्य

गंगा (इडा), यमुना (पिंगला) नदियों (नाडियों)के बीच जो दो मछलियाँ (श्वास-प्रश्वास, साँसका आना जाना) हैं उनका (प्राणायामके द्वारा) नाश कर देना ही मत्स्यका सेवन है।

मनसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
स मीनाशी भवेद् देवि इतरे प्राणघातकाः॥

गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स मवेन् मत्स्य-साधकः॥

मुद्रा

सहस्रार महापद्मके अन्तर्गत बन्द पंखड़ीके भीतर (द्विदल पद्मके बीच) जो विशुद्ध पारे-जैसा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी होनेपर भी करोड़ों चन्द्रमाओंके समान शीतल आत्मा है, वहाँ कुण्डलिनीसे मिल जानेपर ज्ञान प्राप्त करनेवालेको ही मुद्रा-साधक कहते हैं।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकामुद्रिता चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलं पारदोपमः॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकोटिसुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः।

यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते॥ (यामल)

मैथुन

सहस्रारके ऊपरवाले बिन्दु (लिंग) परमात्मासे अपने जीवात्मा और कुण्डलिनीको ले जा मिलाना ही मैथुन-क्रिया है।

सहस्रारोपरि बिन्दौ कुण्डलीमिलनाच्छिवे।
मैथुनं परमं दिव्यं यतीनां परिकीर्त्तितम्॥

या प्रोक्ता कुण्डलीशक्तिर्लिंगेनैव स्वयंभुवा।
रमतेऽहर्निशं यत्र पञ्चमी स्यादुदाहृता॥ (यामल)

इन पाँचों मकारोंके सिद्ध हो जानेपर निम्नांकित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं—



(१) मद्य-पानसे आठों सिद्धियाँ।

(२) मांस-भक्षणसे नारायणके समान।

(३) मत्स्य-भक्षणसे कालिकाका प्रत्यक्ष दर्शन।

(४) मुद्रासे विष्णुके समान।

(५) मैथुनसे योगी स्वयं शिवके समान हो जाता है।

जिन वामाचारी तान्त्रिकोंने मैथुनका अर्थ सम्भोग साधना माना है उन्होंने मैथुन-साधनाके लिये एक भैरवी रखना भी आवश्यक बताया है जो निम्न जातिकी ही होनी चाहिए जैसे— धोबिन, मल्लाहिन, मातंगि। (निम्न जातिकी कोई स्त्री जो स्वयं भैरवी बननेके लिये प्रस्तुत हो।)

तन्त्र-शास्त्रकी उत्पत्ति कब, किस युगमें, किसके द्वारा हुई इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। केवल यही वर्णन मिलता है कि शिवजीने जब देखा कि कलियुगमें विधिपूर्वक वेदोंका अध्ययन नहीं हो पा रहा है तब उन्होंने तन्त्र-शास्त्रका प्रवर्त्तन किया। किन्तु पिछले अध्यायमें आगम, यामल और तन्त्र नामसे जो तीन पद्धतियाँ चली उनमेंसे किसका प्रवर्त्तन शिवजीने किया इसका कहीं विवरण नहीं मिलता।

स्मृतियोंमें जिन चौदह विद्याओं (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद नामक चार वेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और व्याकरण नामक छः वेदांग तथा धर्मशास्त्र, न्याय या तर्कशास्त्र, मीमांसा और पुराण)को गिनाया गया है। उनमें तन्त्रका नाम नहीं है। इससे स्पष्ट है कि तन्त्र-विद्याका प्रादुर्भाव स्मृतिकालके पश्चात् हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य अठारह पुराणों, उपपुराणों तथा इतिहासके किसी ग्रन्थमें भी तन्त्रका नाम नहीं मिलता।

मारण, मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटन आदि अभिचार-क्रियाओंका उल्लेख अथर्ववेदमें तो उपलब्ध है किन्तु इन क्रियाओंको तान्त्रिक नाम नहीं दिया गया और न दिया जा सकता। वास्तवमें तान्त्रिक साधनाका उससे कोई सम्बन्ध भी नहीं है। सर्वप्रथम तन्त्रका उल्लेख अथर्ववेदीय नृसिंहतापनीयोपनिषद्में आता है। इस उपनिषदमें मन्त्रराज-नरसिंह-अनुष्टुभ प्रसंगमें तान्त्रिक मालामन्त्रका स्पष्ट आभास मिला है। जो बारह उपनिषद् (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषितकी उपनिषद्) मुख्य गिनाए गए हैं उनमें नृसिंहतापनियोपनिषद्का नाम नहीं है जो निश्चय ही बहुत पीछेका है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्मृति तथा उपनिषद् कालके अनन्तर ही तन्त्र-शास्त्रका प्रादुर्भाव हुआ। जहाँतक बौद्ध तन्त्रोंका सम्बन्ध है, वे वज्रयानी सम्प्रदाय द्वारा प्रवर्त्तित हुए। यह सम्प्रदाय ईसाकी तीसरी-चौथी शताब्दीमें अधिक प्रबल रूपसे प्रकट हुआ। इसलिये यह सम्भव है कि भारतीय तन्त्र भी उसी समय अथवा उससे कुछ पूर्व प्रकट हुए होंगे। आद्य शंकराचार्यजीने नृसिंहतापनीयोपनिषद्की टीका लिखी है इससे यह सिद्ध है कि यह आठवीं शताब्दीसे पूर्व लिखा गया और यह भी अधिक सम्भव है कि हमारे तन्त्रोंकी देखादेखी बौद्धोंने अपने तन्त्रोंकी रचना की हो। इस दृष्टिसे तन्त्रोंका प्रादुर्भाव तीसरी शताब्दी ईसा मानी जा सकती है। बहुतसे बौद्ध तन्त्रोंका अनुवाद ईसाकी ८वींसे ११वीं शताब्दीके मध्य तिब्बतीय भाषामें हुआ था। ऐसी दशामें मूल बौद्ध तन्त्र ईसाकी छठी शताब्दीके पहले और उनके आदर्श हिन्दू तन्त्र सब बौद्ध तन्त्रसे पहले प्रकाशित हुए हैं इसमें सन्देह नहीं है।



श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें लिखा है—

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः।।

नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र देवं सुरासवम्॥
ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव यद्ययं परिनिन्दथ।
सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः॥

(जो लोग महादेवका व्रत धारण करेंगे और जो उनके अनुवर्त्ती होंगे वे सत् शास्त्रके प्रतिकूलाचारी और पाखण्डी नामसे प्रसिद्ध हों। शौचाचारहीन, मूढबुद्धि व्यक्ति ही जटाभस्मधारी होकर शिवदीक्षामें प्रवेश करें जहाँ सुरासव ही देववत् आदरणीय है, तुम लोगोंने शास्त्रोंके मर्यादास्वरूप ब्रह्मदेव और ब्राह्मणोंकी निन्दा की है इसलिये तुम लोगोंको पाखण्डाश्रित कहा है।)

पद्मपुराणके पाखण्डोत्पत्ति अध्यायमें लिखा है—लोगोंको भ्रष्ट करनेके लिये ही शिवकी दुहाई देकर पाखण्डियोंने अपना मत प्रकट किया है। उक्त भागवत और पद्मपुराणमें जिस पाखण्डीमतका उल्लेख किया गया है, तन्त्रमें वही शिवोक्त उपदेश कहा गया है। गौडीय वैष्णववर्गके ग्रन्थोंके पढ़नेसे जान पड़ता है कि चैतन्यदेवने भी तान्त्रिकोंको पाखण्डीके नामसे सम्बोधन किया है। ऐसा होनेसे भागवत और पद्मपुराणके रचनाकालमें जो तान्त्रिक मत प्रचारित हुआ था वही तन्त्र मूल रूपमें ग्रहण किया जा सकता है।

चीनी परिव्राजक फ़ाह्यान और ह्वेनसाङ्ने जो तत्कालीन भारतीय धर्मों और सम्प्रदायोंका उल्लेख किया है उनमें तान्त्रिकोंका कहीं नाम नहीं है। किन्तु ९वीं शताब्दीमें भूटानमें अनेक बौद्ध तन्त्रोंका भूटानी भाषामें अनुवाद हुआ था। आश्चर्यकी बात यह है कि ह्वेनसाङ्ने जहाँ छठी शताब्दीमें जिन अनेक बौद्ध शास्त्रोंका उल्लेख किया है वहाँ तन्त्रोंका कोई नाम नहीं मिलता। जब ९वीं शताब्दीमें मूल तन्त्रका अनुवाद किया गया तब स्पष्ट है कि मूल तन्त्रका आविर्भाव उससे पहले ही हुआ होगा।

विन्ध्य प्रदेशसे दक्षिणमें अद्वैतवादी शंकराचार्यजीने अपने जिस केवलाद्वैतका प्रचार किया था उसे तान्त्रिक मानकर कुछ लोगोंने शंकराचार्यजीको प्रच्छन्न बौद्ध (छिपा हुआ बौद्ध) कहा है और इसी कारण उन्हें मायावादी भी कहते हैं। किन्तु यह नितान्त भ्रम है कि शंकराचार्यजी तन्त्र-शास्त्रके या बौद्धमतके प्रचारक थे। उन्होंने तो बौद्ध आचार्योंके साथ शास्त्रार्थ करके उनके सब विहार और आश्रम समाप्त कर दिए थे।

दक्षिणाचार तन्त्रराजमें लिखा है कि गौड (बंगाल), केरल और कश्मीर इन तीन प्रदेशोंमें ही तान्त्रिकोंका मुख्य गढ़ रहा है। किन्तु वास्तवमें गौड (बंग देश)को ही प्रधान रूपसे शाक्तों और तान्त्रिकोंकी विशेष साधना भूमि मान सकते हैं।

यद्यपि तान्त्रिकोंके शैव, शाक्त और वैष्णव तीन सम्प्रदाय हैं तथापि तान्त्रिक मुख्यतः शाक्त ही हैं क्योंकि वे तारा शक्तिकी उपासना करते हैं।



बंगालमें अब भी शाक्तोंकी जैसी प्रधानता है वैसी भारतके अन्य किसी स्थानमें नहीं है। बंगालमें तन्त्रशास्त्रका प्रचार उस समय अधिक हुआ जब बौद्धोंका प्रभाव बहुत कम या एक प्रकारसे समाप्त हो गया था। जितने शिवोक्त तन्त्र प्राप्त होते हैं उनके रचना-कौशलको देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उनकी रचना बंग देशमें हुई। तन्त्र-ग्रन्थोंमें जिस वर्णमालाका प्रयोग हुआ है

वह बंग देशमें ही प्रचलित और सामान्यतः प्रयुक्त होती थी। वरदातन्त्र और वर्णोद्धारतन्त्रकी वर्णमालामें जिस प्रकारके अक्षरोंका विन्यास हुआ है वह शुद्ध रूपसे बंगला लिपिकी वर्णमालासे मिलती-जुलती है। तन्त्रोंमें प्रयुक्त यह लिपि केवल बंगलामें ही प्रचलित है अन्य भारतके किसी स्थानमें नहीं और यह लिपि निश्चय ही एक सहस्र वर्षसे प्राचीन नहीं है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि इस लिपिमें जितने तन्त्र रचे गए वे सबईसाकी १०वीं शताब्दीके बाद के ही हैं। भूटानमें अतिश नामके एक बंगाली तान्त्रिककी बहुत प्रसिद्धि है जिसने ११वीं शताब्दीमें तिब्बतमें जाकर तन्त्रशास्त्रका प्रचार किया था। इससे यह अनुमान भी किया जा सकता है कि बंग-वासियोंने ही भूटान, तिब्बत और चीनमें जाकर ११वीं शताब्दीके पश्चात् तान्त्रिक मतका प्रचार किया होगा।

गुजराती भाषामें लिखे हुए—आगमप्रकाशमें लिखा है कि हिन्दू राजाओंके राज्यकालमें, बंगालियोंने गुजरात, डभोई, पावागढ़, अहमदाबाद, पाटन आदि स्थानोंमें आकर कालीकी मूर्त्तियाँ स्थापित की थीं।

बंगालमें प्रसिद्ध महानिर्वाणतन्त्रकी रचना राजा राममोहन रायके गुरुने की थी। यह निश्चय ही १९वीं शताब्दीकी रचना है इसीलिये किसी अन्य तन्त्रग्रंथमें महानिर्वाणतन्त्रका उल्लेख नहीं मिलता। मेरुतन्त्र—जैसे तान्त्रिक ग्रन्थोंमें कुछ ऐसे अंगरेजीके शब्द आए हैं जिससे स्पष्ट है कि उनकी रचना १९वीं शताब्दीमें हुई है।





: सप्तक यंत्र :

१	२	३	४०	४२	४४	४३
४	१३	१४	३१	३२	३५	४६
३८	३०	२४	२३	२८	२०	१२
३९	३३	२९	२५	२१	१७	११
४१	३४	२२	२७	२६	१६	९
४५	१५	३९	१९	१८	३७	५
७	४८	४७	१०	८	६	४९

४



तन्त्रका दार्शनिक और गुह्य स्वरूप



तन्त्रोंमें प्रातःस्मरण, स्नानविधि, त्रिपुण्ड्रधारण, भूशुद्धि, प्राणायाम, संध्याजप, पुरश्चरण, करांगन्यास, अन्तरमातृका, बहिर्मातृका, चित्रान्यास, नामादिविद्या, नित्यादिविद्या, मूलविद्या, तत्त्वन्यास, द्वारपूजा, तर्पण, दशविद्यान्यास, पात्रनिर्णय, नित्य-पूजा, सूर्यार्घ्य, तीर्थसंस्कार, गुर्वादि, पूजन, दीक्षा, पूर्णाभिषेक, प्रायश्चित्त, निम्बपुष्पपूजा, दमनकपूजा, वसन्तपूजा, श्रीचक्रपूजा, दीक्षाकाल, दीक्षाभेद, सर्वतोभद्रादिचक्रनिर्णय, यन्त्रनिरूपण, पुण्याह-वाचन, नान्दीश्राद्ध, नवयोनि-कौलश्राद्ध, मन्त्रशोधन, मन्त्रोद्धार, नामपारायण, तत्त्वपारायण, पञ्चांगन्यास, महाषोढान्यास, महान्यास, सम्मोहनन्यास, सौभाग्यवर्धनन्यास, अन्त्येष्टिक्रिया, विविधमुद्रा, अवधूतादिनिर्णय आदि नाना विषयोंका विधान दिया गया है।

मनुस्मृतिके टीकाकार कुल्लूकभट्टने एक स्थानपर लिखा है—

वैदिकी-तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुतिकीर्त्तिता:।

इस वचनके अनुसार तन्त्रको भी एक प्रकारसे श्रुति ही कहा जा सकता है क्योंकि वह भी किन्हीं आचार्यों-द्वारा कहा गया और किन्हीं शिष्योंके द्वारा सुनकर ग्रहण किया गया है। यद्यपि किसी श्रुति-ग्रन्थमें अर्थात् वैदिक वाङ्मयमें तन्त्रका विधान प्राप्त नहीं होता तथापि जैसे मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने वैदिक मन्त्रोंके दर्शन किए थे वैसे ही तन्त्र-शास्त्रियोंने भी तन्त्रका दर्शन किया होगा और तभी उसके स्वरूपका वर्णन किया होगा। केवल रहस्यकी बात यही है कि जैसे वैदिक मन्त्रोंके साथ मन्त्रके देवता, ऋषि, छन्द और विनियोगका विवरण आवश्यक माना गया है वैसे किसी तन्त्र अथवा महाविद्याके मन्त्रके साथ ऋषि अर्थात् मन्त्र-द्रष्टा, छन्द, देवता और विनियोगका विवरण प्राप्त नहीं होता। पीछे चलकर कुछ सामान्य लोगोंने छन्द और विनियोग जोड़ तो दिए किन्तु वह छन्दके लक्षणों से मेल नहीं खाता। विनियोगके सम्बन्धमें भी यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि किसी भी महाविद्याका अनुष्ठान, उसकी उपासना और साधना किसी विशेष प्रयोजनके लिये ही की जाती है, सब महाविद्याओंकी साधना सब प्रकारके प्रयोजनोंके लिये नहीं की जाती।

दूसरी विशेष ज्ञातव्य बात यह है कि तन्त्रकी साधना वैदिक मन्त्रोंके जपके समान सामान्य रूपसे नहीं की जाती। प्रत्येक महाविद्या, महाशक्ति या योगिनीकी सिद्धिके लिये विभिन्न प्रकारके आसनों, मालाओं, वेशों, जप और साधनाके समय तथा गुह्य स्थानका विधान है। किसी भी प्रकारकी तान्त्रिक साधना ऐसे किसी स्थानमें करनेका बड़ा भारी निषेध है जहाँ आस-पास लोग देखते हों, कोलाहल हो या कोई झाँककर भी अनुष्ठानकी प्रक्रियाको देख पा सकता हो।

इसीलिये तान्त्रिक साधनाको गुह्य-साधना कहा गया है जिसमें पहले तो विशेष महाविद्या या महाशक्तिकी उपासनाके विधानके अनुसार गुरु द्वारा उपदिष्ट समयतक जप करे और जब गुरु यह समझ ले कि अब शिष्यको गुह्य मन्त्रका उपदेश दिया जा सकता है और चालीस दिनतक विशिष्ट महाविद्या या महाशक्तिके अनुसार पूर्ण विधि विधानके साथ गुह्य मन्त्र ग्रहण करनेके योग्य हो गया है तब वह उस विशेष महाविद्या या महाशक्तिका गुह्यमन्त्र तीन बार दाहिने कान में तीन प्रकारसे दें— पहली बार मन्त्रको तीन खण्डोंमें, दूसरी बार दो खण्डोंमें और तीसरी बार पूर्ण रूपसे मन्त्र देते समय तान्त्रिक गुरु निरन्तर अपना दाहिना हाथ शिष्यके सिरपर रखकर बाँएँ हाथसे उसके दोनों हाथ पकड़े रखता है और मन्त्र दे चुकनेपर उसी प्रकार सिरपर हाथ रक्खे हुए और दोनों हाथ पकड़े हुए अस्फुट वाणीसे केवल ओठ हिलाकर किन्हीं अन्य गुप्त मन्त्रोंका लगभग आधा घंटे पाठ करता है। ये गुह्य मन्त्र तथा गुप्त मन्त्र केवल गुरु ही जानता है, कहीं लिखा नहीं मिलता और न लिखे



जानेका विधान ही है। वह केवल श्रुत होता है इसलिये उसे श्रुति भी कह सकते हैं। वैदिक श्रुति और तान्त्रिक श्रुतिमें अन्तर यही है कि वैदिक मन्त्र तो स्फुट वाणीमें भी कहे, सुनाए और पढ़ाए जा सकते हैं किन्तु तान्त्रिक गुह्य मन्त्र अस्फुट वाणीमें केवल परीक्षित साधकको ही चुपचाप कानमें फुसफुसाए जाते हैं और साधक भी कभी स्फुट वाणीमें उसे नहीं बोल सकता इसीलिये तन्त्रशास्त्रको गुह्य-शास्त्र कहते हैं। इसी गोपनीयताके कारण ही तन्त्रशास्त्रके गुह्य मन्त्रोंका पूर्णतः लोप हो गया है और कोई पुष्ट साधक न मिलनेके कारण जो दो सिद्ध तान्त्रिक रह गए हैं उन्हींके साथ तान्त्रिक विधानके समस्त गुह्याचार और समस्त गुह्य मन्त्र समाप्त हो जायँगे।

विचित्र बात यह है कि यद्यपि बौद्ध तान्त्रिकोंने अपने तन्त्र ग्रन्थोंमें अपने तान्त्रिक जप-मन्त्रोंका उल्लेख करनेके साथ साथ कुछ गुह्याचारोंका भी वर्णन किया है जो तिब्बतके बौद्ध तान्त्रिक ग्रन्थोंमें पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध है तथापि गुह्य मन्त्रोंका उनमें भी अभाव है। बौद्धोंके तान्त्रिक गुह्याचारोंको पढ़कर भारतीय तान्त्रिकोंके गुह्याचारोंकी कुछ कल्पना की जा सकती है किन्तु भारतीय तान्त्रिक गुह्याचार उनसे सर्वथा भिन्न थे। भारतीय तन्त्र-शास्त्रके अनुसार विभिन्न महाविद्या या महाशक्तिको जगाने, उसकी झलक पाने, दर्शन पानेके लिये दिन और रातके आठ प्रहरोंमें अलग अलग मुहूर्त्त (दो दो घड़ीका समय) निहित है। उसी विशेष समयमें साधना प्रारम्भ करके उसी विशेष मुहूर्त्तमें एक साधना पूर्ण करनी होती है। इस बीच न तो साधक आसन छोड़ सकता है न कुछ खा-पी सकता। इस प्रकार चालीस बार (मण्डलावधि) साधना करनेपर महाविद्या या महाशक्ति सिद्ध हो जाती है। इस अवधिमें गुरु भी निरन्तर अपने साधक शिष्यके पास ही बैठा रहता है या उसकी देखभाल करता रहता है क्योंकि किसी भी समय शिष्यकी साधनामें किसी प्रकारकी बाधा, असुविधा या उपद्रव होनेकी आशंका बनी रहती है जिसे केवल गुरु ही दूर कर सकता है किसी अन्य विधिसे उसका उपचार नहीं हो सकता। तत्काल उपचार न होनेपर साधना भी भंग हो जाती है और साधकको किसी प्रकारका उन्माद अथवा मानसिक या शारीरिक भयंकर रोग भी हो सकता है।

तन्त्रका दार्शनिक स्वरूप

जैसे बिजली, गैस, अग्नि आदि शक्तियोंके आधारपर अनेक प्रकारके यन्त्र, यान और मानव-जीवनकी सुविधाएँ अवलम्बित हैं वैसे ही संसारमें अनेक प्रकारकी गुह्य, अदृश्य शक्तियाँ भी विद्यमान हैं। प्रत्यक्ष रूपसे देखा जाता है कि बहुत-से बालकों, स्त्रियों या पुरुषोंपर सहसा किसी अदृश्य शक्ति (भूत-प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि)का ऐसा आवेश हो जाता है कि वे व्याकुल हो उठते हैं, तोड़-फोड़ करने लगते हैं, ऊल-जलूल बकने लगते हैं यहाँतक कि अपना परिचय भी देने लगते हैं कि मैं अमुक पुरुष या स्त्री हूँ और मुझे अमुक वस्तु चाहिए या मैं इसे नहीं छोड़ूँगा या नहीं छोड़ूँगी आदि। जिस प्रकार ऐसी कष्टदायक और उन्मत्त करनेवाली, व्याकुल कर देनेवाली शक्तियाँ होती हैं वैसे ही कुछ ऐसी भी महाविद्याएँ या महाशक्तियाँ हैं जो सिद्ध होनेपर साधकका तो उपकार कर ही देती हैं, उसके माध्यमसे जनताका भी उपकार करती रहती हैं। जैसे बहुतसे साधक भूत-प्रेत आदिको सिद्ध करके उनसे बहुत-सा काम (प्रायः बुरा काम) करा लेते हैं वैसे ही महाविद्या या महाशक्तिको सिद्ध कर लेनेपर बहुत-सा लोक-कल्याणका कार्य करा लिया जा सकता है। बहुतसे लोग किसी भी पण्डितको पकड़कर उससे वगलामुखी या श्रीविद्याका जप, पाठ अनुष्ठान या हवन करा तो लेते हैं किन्तु उसका कोई फल नहीं होता। फल तभी होता है जब मनुष्य



उस महाविद्याके अनुकूल दीक्षा लेकर पूरे विधि-विधानके साथ स्वयं जप करे अथवा किसी सिद्ध साधकके द्वारा जप करावे। जो सिद्ध साधक होता है वह एक दिनमें ही और कभी कभी एक प्रहर (तीन घंटे), एक मुहूर्त्त (दो घड़ी) या एक घड़ी (चौबीस मिनट)में ही इष्ट फल प्रदान करा देता है।

आदियामलके मतसे—

आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतोपि गिरिजालये।
मग्नं तव हृदम्भोजे तस्मादागम उच्यते।।

(हे दुर्गे ! शिवके मुखसे निकलकर यह तुम्हारे हृदय-पद्ममें मग्न हुआ है इसीलिये इसको आगम (शैवागम) कहते हैं।)

कुलार्णवतन्त्रके अनुसार—

कृते श्रुत्युक्त आचारत्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तं कलौ आगमकेवलम्।।

विष्णुयामलमें वर्णित है—

आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः।
नहि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः।।

(बुद्धिमान् मनुष्य कलिकालमें आगमोक्त व्यवस्थाके अनुसार ही पूजा करेंगे, अन्य नियमसे पूजा करनेसे देवगण प्रसन्न नहीं होते।)

रुद्रयामलके मतसे—

पञ्चमन्त्रैर्भवेद्दीक्षास्त्वागमोक्तं श्रृणु प्रिये।
यां कृत्वा कलिकाले च सर्वाभीष्टं लभेन्नरः।।

(आगमोक्त पञ्चमन्त्र-द्वारा दीक्षा लेवे। इसके लेनेसे मनुष्यको कलिकालमें सर्व अभीष्टकी सिद्धि होगी।)

उपर्युक्त विवरणसे यह समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि सम्पूर्ण तन्त्रशास्त्र पूर्ण रूपसे शैवागम है अर्थात् यह शिवजीके द्वारा उपदिष्ट शास्त्र है।

यद्यपि किसी पुराण या अन्य ग्रन्थमें ऐसा कोई विवरण नहीं मिलता कि शिवजीने पार्वतीजीको कोई ऐसा शास्त्र सुनाया या सिखाया हो तथापि यह विचित्र संयोग है कि जितने भी शास्त्र हैं जैसे आयुर्वेद, संगीत शास्त्र अथवा अन्य वैज्ञानिक शास्त्र सबके विधाता शिव ही माने गए हैं इसलिये यह भी माना जा सकता है कि तन्त्र शास्त्रके विधायक भी भगवान शंकर ही हैं।



जैसे वेदके चार उपवेद, छह वेदांग, उपनिषद, आरण्यक, ब्राह्मण आदि हैं वैसे तन्त्रके तो कोई अंग नहीं हैं किन्तु कालिका-पुराण-जैसे कुछ पुराण अवश्य हैं जिनमें कालीको सिद्ध करनेका विधान, शतचण्डी, सहस्रचण्डी आदि यज्ञ करनेका पूरा विधान है।

एक श्लोक विद्वत्समाजमें प्रसिद्ध है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेत् श्रियमिच्छेद्धुताशनात्।
ज्ञानं च शंकरादिच्छेदिच्छेन्मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात्।।

(सूर्यसे आरोग्य प्राप्त करना चाहिए, अग्निकी सेवा करके श्री (लक्ष्मी, धन, कान्ति, शोभा, ऐश्वर्य, यश) प्राप्त करना चाहिए, भगवान् शंकरसे सब ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और भगवान् विष्णुसे मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।) इस दृष्टिसे भी तन्त्रके प्रवर्त्तक शिवजी ही माने जा सकते हैं। यही तन्त्रका दार्शनिक आधार है।





: अष्टक यंत्र :

૧	૨	૧૧	૧૨	૬૦	૫૯	૫૮	૫૭
૯	૧૫	૨૧	૨૩	૪૬	૪૭	૪૩	૫૬
૧૩	૨૦	૩૨	૨૫	૩૪	૩૯	૪૫	૫૨
૫૧	૪૧	૩૭	૩૬	૨૭	૩૦	૨૪	૧૪
૫૫	૪૮	૩૫	૩૮	૨૯	૨૮	૧૭	૧૦
૬૧	૪૯	૨૬	૩૧	૪૦	૩૩	૧૬	૪
૬૨	૨૨	૪૪	૪૨	૧૯	૧૮	૫૦	૩
૮	૬૩	૫૪	૫૩	૫	૬	૭	૬૪

५



तान्त्रिक दीक्षा



जो व्यक्ति तन्त्रकी साधना करना चाहे उसे किसी सिद्ध तान्त्रिकसे विधिवत् दीक्षा लेनी चाहिए। जिस सिद्ध तान्त्रिकसे वह दीक्षा ले उसके पास स्वयं जाकर और उसकी इच्छाके अनुसार उसके पास निश्चित समयतक रहकर अपनी योग्यता प्रमाणित करे। जब सिद्ध गुरुको यह विश्वास और निश्चय हो जाय कि साधक वास्तवमें साधनाके योग्य है और साधनाके समयमें सब प्रकारकी असुविधाएँ, कठिनाइयाँ, बाधाएँ और भयावने अनुभव सहन कर सकेगा तब वे उसे दीक्षा देते हैं। इस दीक्षामें वे पहले जपका मन्त्र देते हैं। दीक्षाके बिना तन्त्रकी साधनाका अधिकार नहीं होता और जो व्यक्ति बिना किसी सिद्ध गुरुसे दीक्षा लिए साधना करता है उसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है।

गौतमीय तन्त्रमें लिखा है—

द्विजानामनुपनीताना स्वधर्माध्ययनादिषु।
यथाधिकारो नास्तीह सन्ध्योपासनकर्मसु।।
तथा ह्यदीक्षितानान्तु मन्त्रतन्त्रार्चनादिषु।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम्।।

[जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजातियोंको उपनयन-संस्कारके बिना वेद पढ़ने, संध्या, पूजा, हवनका अधिकार नहीं होता वैसे ही बिना दीक्षा लिए किसी भी साधकको तन्त्रकी साधना करनेका अधिकार नहीं है इसलिये दीक्षा लेना परम आवश्यक है।]

उपर्युक्त गौतमीय तन्त्रके सातवें अध्यायमें लिखा है—

ददाति दिव्यता वंचेत् क्षिणुयात् पापसन्ततिम्।
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तंत्रपारगैः।
यां बिना नैव सिद्धिः स्यान्मंत्रो वर्षशतैरपि।।

[दीक्षासे दैवी शक्ति प्राप्त होती है, सारे पाप नष्ट हो जाते हैं इसीलिये तन्त्रपारंगत मुनियोंने इस क्रियाको दीक्षा कहा है। जबतक दीक्षा न ली जाय तब-तक चाहे कोई सौ वर्षतक भी मन्त्रका जप करता रहे मन्त्रकी सिद्धि नहीं होती।] इसलिये किसी भी मन्त्रके लिये दीक्षा लेना परम आवश्यक है।

तन्त्रकी दीक्षा किसी ऐसे सिद्ध गुरुसे लेनी चाहिए जिसे स्वयं तन्त्र सिद्ध हो और जिसे दीक्षा देनेका अधिकार भी प्राप्त हो। हमारे यहाँ एक कहावत प्रसिद्ध है- ''गुरु कीजै जानकर, पानी पीजै छानकर'' । जहाँ एक ओर साधकके लिये योग्यता आवश्यक है वहीं दूसरी ओर गुरुके लिये भी निम्नांकित लक्षणवाला होना अत्यन्त आवश्यक है।

दीक्षा-गुरु

दीक्षा-गुरुका लक्षण बताते हुए कहा गया है—



शान्तो दान्तः कुलीनश्च शुद्धान्तःकरणः सदा।
पंचतत्त्वार्चको यस्तु सद्गुरुः स प्रकीर्त्तितः।।

सिद्धोऽसाविति चेत् ख्यातो बहुभिः शिष्यपालकः।
चमत्कारी दैवशक्त्या सद्गुरुः कथितः प्रिये॥

अश्रुतं सम्मतं वाक्यं व्यक्ति साधु मनोहरम्।
तन्त्रं मन्त्रं समं व्यक्ति एवं सद्गुरुश्च सः॥

सदा यः शिष्यबोधेन हिताय च समाकुलः।
निग्रहानुग्रहे शक्तः सद्गुरुर्गीयते बुधैः॥

परमार्थे सदा दृष्टिः परमार्थं प्रकीर्त्तितम्।
गुरुपादाम्बुजे भक्तिर्यस्यैव सद्गुरुः स्मृतः॥

[जो व्यक्ति पूर्णतः शान्त हो अर्थात् कभी न क्रोध करता, चिल्लाता या बहुत बोलता हो सबसे अत्यन्त मधुर वाणीसे व्यवहार करता हो, जिसे अपनी इन्द्रियोंपर पूरा वश हो अर्थात् वह किसी प्रकारके प्रलोभनसे भी विचलित न हो, उच्च कुलका सम्भ्रान्त व्यक्ति हो, जिसका मन अत्यन्त पवित्र हो अर्थात् जिसका मन न कभी किसी बुरे कर्मकी ओर जाता हो, न बुरा कर्म करनेकी इच्छा ही करता हो, जो पञ्च तत्त्व अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाशकी पूजा करता हो, जो तन्त्र विद्यामें पारंगत हो और इस कारण सर्वत्र प्रसिद्ध हो, और जो बहुतसे शिष्योंका अन्न, वस्त्र आदिके द्वारा पालन करनेकी क्षमता रखता हो, जो अपनी तन्त्र-विद्याके चमत्कार भी प्रकट कर चुका हो और लोगोंको तन्त्रके चमत्कारसे प्रभावित कर चुका हो, जिसमें तन्त्रकी साधनासे दैवी शक्ति आ गई हो, जो अत्यन्त सज्जन हो, देखनेमें सुन्दर, सुशील और आकर्षक हो तथा पहले कभी न सुने हुए तन्त्रों और मन्त्रोंका परम ज्ञाता हो, जो तन्त्र विद्याके अनुसार ही सब बातें भली प्रकार कर सकता हो और जो तन्त्र-मन्त्रको भली प्रकार जानता हो, शुद्ध उच्चारण कर सकता हो, जो अपने शिष्यको ज्ञान देना ही अपना परम हित मानता हो, जो निद्रा रोक सकनेमें समर्थ हो अर्थात् बिना झपकी लिए इच्छित समयतक जागता रह सकता हो, सदा दूसरोंका हित करना ही अपना कर्त्तव्य समझता हो अर्थात् पूर्णतः निर्लोभ निष्काम लोकसेवा करता रहता हो, जो सदा दूसरेके हितकी ही चिन्ता करता रहता हो, जो गुरु चरणोंमें अचल भक्ति रखता हो और स्वयं अपनेको ही सर्वज्ञ न माने बैठा हो, वही व्यक्ति सद्गुरु हो सकता है।]

प्रत्येक साधकका कर्त्तव्य है कि साधना करनेसे पूर्व वह ऐसे लक्षणोंवाला गुरु खोज निकाले। आजकल जो तान्त्रिक गुरु बने फिरते हैं वे सबके सब लोभी, अर्थपिशाच, ढोंगी और धूर्त हैं। उन्हें न तो तन्त्र-विद्याका ही कोई ज्ञान है न उन्होंने किसी सिद्ध गुरुसे दीक्षा ही ली, न उन्हें गुरु बननेका अधिकार ही है।

ऊपर दीक्षा-गुरुके जो लक्षण बताए गए हैं वैसे दीक्षा-गुरु अब भारतमें कहीं नहीं हैं इसीलिये सभी प्रधान तन्त्रोंमें लिखा है—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥



(जो अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए हैं उन्हें जो ज्ञानकी सलाईसे आँजकर उनकी आँखें खोल देता है ऐसे गुरुको प्रणाम है।)

शिष्यके लक्षण

गौतमीय तन्त्रमें शिष्यके लक्षण बताते हुए लिखा है—

शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थपरायणः।
अधीतवेदकुशलः पितृमातृहिते रतः॥

धर्मविद्धर्मकर्त्ता च गुरुशुश्रूषणे रतः।
सदा शास्त्रार्थतत्त्वज्ञो दृढदेहो दृढाशयः॥

हितैषी प्राणिनां नित्यं परलोकार्थकर्मकृत्।
वाङ्मनःकायवसुभिर्गुरुशुश्रूषणे रतः॥

अनित्यकर्मणस्त्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः।
जितेन्द्रियो जितालस्यो जितमोहविमत्सरः॥

गुरुवद्गुरुपुत्रेषु तत्कलत्रादिषु शक्तिमान्।
एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वितरो गुरुदुःखदः॥

वर्षैकेण भवेद्योग्यो विप्रः सर्वगुणान्वितः।
वर्षद्वये तु राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः॥

चतुर्भिर्वत्सरेः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता।
यदा शिष्यो भवेद् योग्यः कृपया सद्गुरुस्तदा॥

कृपया परया सम्यग् दीक्षाया विधिमाचरेत्॥

(शिष्य या साधक ऐसा होना चाहिए जो उच्च, अच्छे कुलका हो, जिसका मन शुद्ध हो जो लोकसेवाकी दृष्टिसे तन्त्रकी शिक्षा प्राप्त करना चाहता हो, जिसमें तन्त्र-साधना करनेका पुरुषार्थ और सामर्थ्य हो, जो शुद्ध सस्वर वेदका पाठ कर सकता हो, जो सदा अपने माता-पिताकी सेवा करता और उनका हित करता रहता हो, जो धर्मशास्त्रको जानता हो, सदा धर्मके ही काम करता हो अर्थात् सबका कल्याण करता रहता हो, जो सदा अपने गुरुकी सेवा करनेमें लगा रहता हो, जो तन्त्र-शास्त्रका ठीक ठीक मर्म जानता हो, जिसका शरीर स्वस्थ और हृदय पुष्ट हो, जो सब प्राणियोंका सदा कल्याण करनेकी इच्छा रखता हो, जो परलोकमें भी अपना कल्याण चाहता हो अर्थात् जो कभी ऐसा काम न करता हो जिससे परलोक बिगड़े अथवा मुक्तिमें बाधा हो, जो मन, वचन और कर्मसे जीवनपर्यन्त गुरुकी सेवामें लगा हुआ हो, जो कभी नित्य कर्म (सन्ध्या-वन्दन आदि) न छोड़ता हो, जो सदा अपने गुरुके कथनानुसार तन्त्रका अनुष्ठान करता रहता हो, जिसने अपनी इन्द्रियाँ वशमें कर रक्खी हों, जिसमें आलस्यका नाम न हो, जिसने मोह और ईर्ष्यापर विजय प्राप्त कर ली हो, जो अपने गुरुके पुत्र तथा गुरुके परिवारको गुरुके समान ही आदरणीय मानता हो, वही व्यक्ति उपयुक्त शिष्य होनेके योग्य है। इन लक्षणोंसे रहित जो व्यक्ति साधना करनेकी इच्छा करता है वह सदा गुरुके लिये दुःखदायी होता है। कहा गया है कि शुद्ध सात्त्विक ब्राह्मण एक वर्षमें, क्षत्रिय दो वर्षमें और वैश्य तीन वर्षमें, शूद्र चार वर्ष में गुरुके पास रहकर साधारणतः साधक होनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है। सद्गुरुको चाहिए कि जब वह किसी भी शिष्यको साधक होनेके योग्य



समझ ले तभी उसे दीक्षा दे उससे पूर्व नहीं और तब उससे तन्त्र-साधनाकी सब विधियोंका नियमतः पालन करावे।)

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उपर्युक्त लक्षण होनेसे ही कोई व्यक्ति तन्त्र-साधकका गुरु होनेके योग्य हो जाता है।

योगिनीतन्त्रमें लिखा है—

पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात् तथा मातामहस्य च।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च॥

(मातासे, पितासे, सगे भाईसे, अपनेसे छोटी अवस्था वालेसे और अपने शत्रुके किसी सम्बन्धीसे कभी दीक्षा नहीं लेनी चाहिए।)

कामाख्यातन्त्रके अनुसार—

अन्धं खञ्जं तथा रुग्णं स्वल्पज्ञानयुतं पुनः।
सामान्यकौलं वरदे वर्जयेन्मतिमान् सदा॥

उदासीनं विशेषेण वर्जयेत् सिद्धिकामुकः।
उदासीनमुखाद्दीक्षा बन्ध्या नारी यथा प्रिये॥

अज्ञानाद् यदि वा मोहादुदासीनात्तु पामरः।
अभिषिक्तो भवेद् देवि विघ्नस्तस्य पदे पदे॥

सर्वं हि विफलं तस्य नरकं याति चान्तिमे॥

(जो आदमी दीक्षा लेना चाहता हो उसे चाहिए कि किसी ऐसे व्यक्तिसे दीक्षा न ले जो अन्धा, लँगड़ा, रोगी, मूर्ख, साधारण रूपसे तन्त्रका ज्ञानी हो और जो रुचि न लेता हो क्योंकि जो व्यक्ति उदासीन हो, रुचि न लेता हो उससे दीक्षा लेना बाँझ स्त्रीके बराबर है, उसका कोई फल नहीं होता। यदि बिना जाने या अनजाने किसी रुचि न रखनेवाले उदासीन व्यक्तिसे दीक्षा ले ली जाय तो पग पगपर अनेक प्रकारके भयंकर विघ्न उपस्थित हो जाते हैं, उसे कभी सफलता नहीं मिलती और वह अन्तमें नरकमें ही जाता है।)

गणेशविमर्षिणीतन्त्रमें लिखा है—

यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः।
विविक्ताश्रमिणो दीक्षा न सा कल्याणदायिका॥

(किसी यति (संन्यासी), पिता, जंगलमें अकेले रहनेवाले और जिसने गृहस्थाश्रम छोड़ दिया हो उससे कभी दीक्षा नहीं लेनी चाहिए।)

इसी प्रकार रुद्रयामलमें भी लिखा है—

न पत्नीं दीक्षयेद् भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम्।
न पुत्रश्च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत्॥



सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं स दीक्षयेत्।
शक्तित्वेन वरारोहे न च सा पुत्रिका भवेत्।।

(कोई भी पति न तो अपनी पत्नीको दीक्षा दे न पिता अपनी पुत्री या पुत्रको दीक्षा दे। पति केवल तभी अपनी पत्नीको दीक्षित कर सकते हैं जब वे सिद्धमन्त्र हो जायँ और फिर पत्नी-रूपसे उससे सम्बन्ध नहीं रख सकते क्योंकि उनके शक्तित्त्वके कारण वह कन्या नहीं समझी जाती।)

गणेशविमर्षिणी तन्त्रके अनुसार ही—

प्रमादाद्वा तथाज्ञानात् पितुर्दीक्षा समाचरन्।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत्।।

(यदि अनजाने या भूलसे पितासे दीक्षा ले भी ली जाय तो फिर प्रायश्चित्त करके उसे उपयुक्त व्यक्तिसे दीक्षा लेनी पड़ती है।)

कृष्णानन्दने तन्त्रसारमें लिखा है—

वैष्णवे वैष्णवी ग्राह्यः शैवे शैवं च शक्तिके।
शैवः शाक्तोपि सर्वत्र दीक्षास्वामी न संशयः।।

(वैष्णवको वैष्णव तान्त्रिकसे, शैवको शैव या शाक्त तान्त्रिक सबको सदा दीक्षा दे सकते हैं क्योंकि शैव तथा शाक्त सबके लिये सदा और सर्वत्र दीक्षा-गुरु हो सकते हैं।)

देशके भेदसे भी दीक्षा-गुरुमें निम्न और श्रेष्ठका भेद होता है। बृहद्गौतमीय तन्त्रके अनुसार—

पाश्चात्या गुरवो मुख्या दाक्षिणात्याश्च मध्यमाः।
गौडदेशोद्भवा न्यूना कामरूपोद्भवास्तथा।।

कलिंगाद्या श्चये प्रोक्ता अधमास्ते द्विजाः स्मृताः।

(पश्चिमके वैदिक गुरु दीक्षा देनेके लिये सर्वश्रेष्ठ, विंध्याचलसे दक्षिणके लोग मध्यम कोटिके और बंगाल तथा असम (कामरूप)-के ब्राह्मण अधिक निम्न होते हैं तथा कलिंग (उड़ीसा) आदिके दीक्षा-गुरु अधम समझे जाते हैं, उनसे कभी दीक्षा नहीं लेनी चाहिए।)

विद्याधराचार्यके यामल-वचनके अनुसार—

मध्यदेशे कुरुक्षेत्रे लाटकोंकणसम्भवाः।
अन्तर्वेदिप्रतिष्ठाना अवन्ताश्च गुरूत्तमाः।।

गौडा शाल्वोद्भवा सौरा मागधा केरलास्तथा।
कोशलाश्च दशार्णाश्च गुरवः सप्त मध्यमाः।।

कर्णाट - नर्मदा - रेवा - कच्छतीरोद्भवास्तथा।
कलिंगाः कम्बलाश्चैव काम्बोजाश्चाधमा मताः।।



(मध्य देशमें कुरुक्षेत्र, लाट (गुजरात), कोंकण (बम्बईसे दक्षिणकी ओर) अन्तर्वेदि (गंगा यमुनाके बीचके प्रदेश), प्रतिष्ठान (पैठन या प्रयाग झूँसी), अवन्ति (उज्जैन)-के तन्त्र-दीक्षा-गुरु

सर्वश्रेष्ठ होते हैं। गौड़ (बंगाल), शाल्व, सौर (ब्रज मण्डल), मगध, केरल, कौशल (अवध), दशार्ण (मालवा) इन सात स्थानोंके तन्त्र दीक्षा-गुरु मध्यम श्रेणीके, कर्णाट (कन्नड़), नर्मदा, रेवा, कच्छमें रहनेवाले, कलिंग (उड़ीसा), कम्बल और कम्बोजके दीक्षा-गुरु अधम होते हैं।)

किन्तु अब तो किसी प्रदेशमें भी कोई श्रेष्ठ तन्त्र-दीक्षा-गुरु नहीं रह गया है। जो दो सिद्ध पुरुष बचे रह गए हैं उन्हें कोई अच्छा साधक शिष्य नहीं मिल पा रहा है।

मन्त्र लेनेका अधिकार

जहाँतक तन्त्र विद्याकी दीक्षाके अधिकारकी बात है स्त्री, शूद्रतकको भी तन्त्रका मन्त्र ग्रहण करनेका अधिकार है। गौतमीय तन्त्रके प्रारम्भमें ही स्पष्ट लिख दिया गया है—

सर्ववर्णाधिकारश्च नारीणां योग्य एव च॥

कंगालमालिनी तन्त्रके मतसे—

शूद्राणां प्रणवं देवि चतुर्दशस्वरं प्रिये।
नादबिन्दुसमायुक्तं स्त्रीणां चैव वरानने॥

मनौ स्वाहा च या देवि शूद्रोच्चार्या न संशयः।
होमकार्ये महेशानि शूद्रः स्वाहां न चोच्चरेत्॥

मन्त्रोऽप्यूहो नास्ति शूद्रे विषबीजं विना प्रिये॥

(हे देवि! शूद्र और स्त्रियोंका प्रणव तो बीज मन्त्र नाद बिन्दु समासयुक्त चतुर्दश स्वर है। शूद्रको मनमें भी 'स्वाहा' उच्चारण नहीं करना चाहिए। होम कार्योंमें भी शूद्र 'स्वाहा' उच्चारण न करे। विष-बीजके अतिरिक्त शूद्रको और कोई भी मन्त्र उच्चारण नहीं करना चाहिए।)

दीक्षाकाल

नीलतन्त्रके मतसे दीक्षाकाल इस प्रकार है—

कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभेऽहनि।
पूर्वभाद्रपदायुक्ते मित्रतारादिसंयुते॥

अथवा ह्यनुराधायां रेवत्यां वा प्रशस्यते।
जानीयाच्छोभनं कालं चन्द्रार्कग्रहणं प्रति॥

इषे मासि विशेषेण कार्तिके च विशेषतः।
महाष्टम्यां विशेषेण धर्मकामार्थसिद्धये॥

रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम्।
पुष्या शतभिषा चैव दीक्षानक्षत्रमुच्यते॥

(कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथि, शुभ लग्न और शुभ दिनमें मित्रतारादियुक्त पूर्व भाद्रपद, अनुराधा या रेवती नक्षत्रमें चन्द्रग्रहणके समय, आश्विन या कार्तिक मास में दीक्षा लेना प्रशस्त है। विशेषतः धर्म-अर्थ-कामकी सिद्धिके लिये महाष्टमी अत्यन्त प्रशस्त है। रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा,



उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, उत्तरफाल्गुनी, पुष्य और शतभिषा ये दीक्षा-नक्षत्र समझे जाते हैं।)

दीक्षा-गुरु

मतभेदसे दीक्षागुरुमें भी भेद होता है। नीलतन्त्रके मतसे—

विष्णुर्विष्णुमतस्थानां सौरः सौरविदां मतः।
गाणपत्यस्तु देवेशि गणदीक्षा प्रवर्तकः।
शैवः शाक्तश्च सर्वत्र दीक्षास्वामी न संशयः।।

(वैष्णवोंके गुरु विष्णुमन्त्रोपासक, सौर मतावलम्बियोंके गुरु सौर और गाणपत्योंके गुरु गणदीक्षाप्रवर्त्तक होंगे। शैव और शाक्त सर्वत्र ही दीक्षा-गुरु हो सकते हैं, इसमें संदेह नहीं।)

उक्त पाँच सम्प्रदायोंमें भी विभिन्न देवमूर्त्तियाँ और असंख्य बीज हैं। उन बीजोंके अनुसार ही इष्ट देवकी पूजा और ध्यान आदि हुआ करते हैं।

तान्त्रिकगण उपासना और बीजमन्त्रके भेदसे नाना शाखाओं और सम्प्रदायोंमें विभक्त होनेपर भी किसी किसी तन्त्रमें ब्राह्मणमात्रको ही शाक्त कहा गया है।

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिदेवी च गायत्री उपासकविमोक्षदा।।

(सभी द्विज शाक्त हैं, शैव या वैष्णव नहीं हैं, क्योंकि उपासककी मुक्तिदात्री आदिदेवी गायत्री सबकी आराध्या हैं।)





६



तन्त्रिक आचार और भाव



आचार-भेद

तान्त्रिकगण सात प्रकारके आचारोंमें विभक्त हैं।

कुलार्णवतन्त्रके मतसे—

> सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं महत्।
> वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्॥
> दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम्।
> सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् परतरं नहि॥

(सबसे श्रेष्ठ वेदाचार है, वेदाचारसे वैष्णवाचार महत् है, वैष्णवाचारसे शैवाचार उत्कृष्ट है, शैवाचारसे दक्षिणाचार उत्तम है, दक्षिणाचारसे वामाचार श्रेष्ठ है, वामाचारसे सिद्धान्ताचार उत्तम है और सिद्धान्ताचारकी अपेक्षा कौलाचार उत्तम है। कौलाचारसे उत्तम और कोई नहीं है।)

❊ वेदाचार

प्राणतोषिणीधृतनित्यानन्दतन्त्रके मतसे—

> वेदाचारं प्रवक्ष्यामि श्रृणु सर्वांगसुन्दरि।
> ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय गुरुं नत्वा स्वनामभिः॥
> आनन्दनाथशब्दान्तः पूजयेदथ साधकः।
> सहस्राराम्बुजे ध्यात्वा उपचारैस्तु पंचभिः॥
> प्रजप्य वाग्भवबीजं चिन्तयेत् परमां कलाम्॥

(सर्वांगसुन्दरि! वेदाचारका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो। साधकको चाहिए कि वह ब्राह्म मुहूर्तमें उठे और गुरुके नामके अन्तमें आनन्दनाथ बोलकर उनको प्रणाम करे। फिर सहस्रदल पद्ममें ध्यान करके पञ्च उपचार (गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप)से पूजा करे और वाग्भवबीज जप करके परमकलाशक्तिका ध्यान करे।)

❊ वैष्णवाचार

> वेदाचारक्रमेणैव सदा नियमतत्परः।
> मैथुनं तत्कथालापं कदाचिन्नैव कारयेत्॥
> हिंसां निन्दां च कौटिल्यं वर्जयेन्मांसभोजनम्।
> रात्रौ मालां च यन्त्रं च स्पृशेन्नैव कदाचन॥

(वेदाचारकी विधिके अनुसार साधकको सर्वदा नियमतत्पर होना चाहिए। मैथुन या उसका कथा-प्रसंग भी कभी नहीं करना चाहिए। हिंसा, निन्दा, कुटिलता और मांस-भोजनका परित्याग करना चाहिए। रातको कभी माला या यन्त्र नहीं छूना चाहिए।)



❊ शैवाचार

वेदाचारक्रमेणैव शैवे शाक्ते व्यवस्थितम्।
तद्विशेषं महादेवि! केवलं पशुघातनम्।।

(शैव और शाक्तोंके लिये जैसे वेदाचारकी व्यवस्था दी गई है, इनके लिये भी वैसी ही है। शैवाचारमें विशेषता इतनी ही है कि इसमें केवल पशुबलिकी व्यवस्था है।)

❊ दक्षिणाचार

वेदाचारक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम्।
स्वीकृत्य विजयां रात्रौ जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।।

(वेदाचारके क्रमानुसार आद्याशक्तिकी पूजा करके और रातको विजया ग्रहण करके साधक एकाग्रचित्तसे जप करें।)

❊ वामाचार

पञ्चतत्त्वं खपुष्पं च पूजयेत् कुलयोषितम्।
वामाचारी भवेत्तत्र वामा भूत्वा यजेत् पराम्।।

(पञ्च तत्त्व अथवा पञ्च मकार, खपुष्प अर्थात् रजस्वलाके रज और कुल- स्त्रीकी पूजा करें। ऐसा करनेसे वामाचार होता है। इसमें स्वयं वामा होकर पराशक्तिकी पूजा करें)

❊ सिद्धान्ताचार

शुद्धाशुद्धं भवेत् शुद्धं शोधनादेव पार्वति।
एतदेव महेशानि सिद्धान्ताचारलक्षणम्।।

(पार्वति! शुद्ध या अशुद्ध वस्तुएँ शोधन करनेसे ही शुद्ध हुआ करती हैं, यही सिद्धान्ताचारका लक्षण है।)

समयाचारतन्त्रमें सिद्धान्ताचारियोंके विषयमें लिखा है—

देवपूजारतो नित्यं तथा विष्णुपरो दिवा।
नक्तं द्रव्यादिकं सर्वं यथालाभेन चोत्तमम्।।
विधिवत् क्रियते भक्त्या स सर्वं च फलं लभेत्।।

(जो साधक सर्वदा देव-पूजामें निरत रहता हैं, दिनमें विष्णु-परायण होकर रातको यथा-साध्य और भक्तिभावसे यथाविधि मद्यदान और मद्यपान करता है, वह समस्त फल प्राप्त कर लेता है।)

❊ कौलाचार

दिक्कालनियमो नास्ति तिथ्यादिनियमो न च।
नियमो नास्ति देवेशि महामन्त्रस्य साधने।।
क्वचित् शिष्टः क्वचित् भ्रष्टः क्वचित् भूतपिशाचवत्।
नानावेशधरा कौलाः विचरन्ति महीतले।।



कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं मित्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि तथैव कांचने तृणे।।
न भेदो यस्य देवेशि स कौल: परिकीर्त्तित:।।

(जो न तो दिशा और कालका नियम मानता न किसी तिथि आदिका नियम मानता न महामन्त्रसाधनका न कभी शिष्ट, कभी भ्रष्ट और कभी भूतपिशाचके समान रहता है इस प्रकारके नाना वेशधारी कौल महीतलपर विचरण किया करते हैं। प्रिये! कर्दम और चन्दनमें, मित्र और शत्रुमें, श्मशान और गृहमें, स्वर्ण और तृणमें जो भेद नहीं करते उन्हें ही कौल कहा जा सकता है।)

यद्यपि नित्यातन्त्र और कुलार्णवमें सात प्रकारके आचारोंका उल्लेख है, तथापि प्रधानत: दक्षिणाचार और वामाचार नामक दो प्रकारके आचार ही देखनेमें आते हैं।

दक्षिणाचार-तन्त्रराजमें लिखा है—

दक्षिणाचारतन्त्रोक्तं कर्मतच्छुद्धवैदिकम्।।

(दक्षिणाचारतन्त्रमें जिस प्रकारकी कर्मपद्धति विवृत हुई है, वही शुद्ध वैदिक है।)

वास्तवमें जो दक्षिणाचारी लोग वेदोक्त विधिके अनुसार अर्थात् पशुभावसे भगवतीकी अर्चना किया करते हैं वे वामाचारियोंकी भाँति मद्य-मांसका व्यवहार या शक्तिकी साधनादि नहीं करते। दक्षिणाचारतन्त्रके मतसे रक्त-मांसादि रहित सात्त्विक बलि देना ही ब्राह्मणोंके लिये विधेय है। दाक्षिणात्यमें बहुतसे दक्षिणाचारी रहते हैं।

पशुभाव

कामाख्यातन्त्रमें (चतुर्थ पटल) पशुभावका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पंचतत्त्वं न गृह्णाति तत्र निन्दां करोति न।
शिवेन गदितं यत्तु तत्सत्यमिति भावयन्।।
निन्दाया: पातकं वेत्ति पाशव: स प्रकीर्त्तित:।
तस्याचारं वदाम्याशु श्रृणु संशयनाशकम्।।
हविष्यं भक्षयेन्नित्यं ताम्बूलं न स्पृशेदपि।
ऋतुस्नातां विना नारीं कामभावे न हि स्पृशेत्।।
परस्त्रियं कामभावो दृष्ट्वा संगं समुत्सृजेत्।
संत्यजेन्मत्स्यमांसानि पशवो नित्यमेव च।।
गन्धमाल्यानि वस्त्राणि चीराणि प्रभजेन्न च।
देवालये सदा तिष्ठेदाहारार्थे गृहं व्रजेत्।।
कन्यापुत्रादिवात्सल्यं कुर्यान्नित्य: समाकुल:।
ऐश्वर्यं प्रार्थयेन्नैव यद्यस्ति तत्तु न त्यजेत्।।
सदा दानं समाकुर्याद् यदि सन्ति धनानि च।
कार्यद्रोहान् क्षिपेत् सर्वानहंकारादिकाँस्तत:।।



विशेषेण महादेवि! क्रोधं संवर्जयेदपि।
कदाचिद्दीक्षयेन्नैव पशवः परमेश्वरि॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नान्यथा वचनं मम।
अज्ञानाद् यदि वा लोभान्मन्त्रदानं करोति च॥

सत्यं सत्यं महादेवि देवीशापं प्रजायते।
इत्यादि बहुधाचारा क्वचिद्धूमः पशोर्मतिः॥

तथापि च न मोक्षः स्यात् सिद्धिश्चैव कदाचन।
यदि चंक्रमणे शक्तः खड्गधारे सदा नरः॥

पश्वाचारं सदा कुर्यात् किन्तु सिद्धिर्न जायते।
जम्बूद्वीपे कलौ देवि ब्राह्मणो हि कदाचन॥

पशुर्न स्यात् पशुर्न स्यात् पशुर्न स्यात् शिवाज्ञया॥

(जो पञ्चतत्त्व ग्रहण नहीं करते और न उसकी निन्दा ही करते हैं, जो शिवोक्त कथाको सत्य मानते और पाप-कार्यको निन्दनीय मानते हैं वे ही पशु नामसे प्रसिद्ध हैं। तुम्हारे सन्देहको दूर करनेके लिये मैं उनका आचार कहता हूँ, सो सुनो। जो प्रतिदिन हविष्य आहार करते हैं, ताम्बूल नहीं छूते, ऋतुस्नाता अपनी स्त्रीके अतिरिक्त अन्य किसीको भी काम-भावसे नहीं देखते, परस्त्रीके काम-भावको देखकर उसका साथ त्याग देते हैं, मत्स्य-मांस कभी भी ग्रहण नहीं करते, गन्ध, माल्य, वस्त्र और चीर नहीं लेते, सर्वदा देवालयमें रहते हैं और आहारके लिये ही घर जाते हैं, पुत्रकन्याओंको अति स्नेह दृष्टिसे देखते हैं, ऐश्वर्य नहीं चाहते पर जो है उसका भी त्याग नहीं करते, धन होनेपर सर्वदा दरिद्रोंको दान देते हैं, कभी कार्पण्य, द्रोह और अहंकारादि प्रकट नहीं करते, विशेषतः जो अपना क्रोध वर्जन करते हैं, परमेश्वरि! ऐसे पशुओंको दीक्षा नहीं देनी चाहिए। सत्य कहता हूँ, मेरा कहना कभी अन्यथा न होगा। अज्ञान या भ्रमसे पशुको मन्त्र देनेसे, सचमुच ही देवीका शापभागी होना पड़ेगा। बहुप्रकार आचार-वालेको पशु कहते हैं। इनको कभी मोक्ष या सिद्धि नहीं मिलती। पश्वाचार कितना ही क्यों न करे, किसी प्रकार भी सिद्धि नहीं होती। हे देवि! शिवकी आज्ञा है कि इस जम्बू द्वीपमें ब्राह्मण कभी पशु न होंगे।)

बंगालमें तान्त्रिक कहनेसे प्रधानतः वामाचारियोंका ही बोध होता है। किसीके मतसे ये वेदविरुद्ध विपरीत आचरण करनेके कारण वामाचारीके नामसे प्रसिद्ध हैं। बंगालके तान्त्रिकोंमें वामाचार और दक्षिणाचार दोनों ही आचार मिश्रित देखनेमें आते हैं किन्तु वास्तविक तान्त्रिकगण इस बातको नहीं मानते।

वामकेश्वरतन्त्रके इक्यावनवें पटलमें लिखा है—

आचारो द्विविधो देवि वामदक्षिणभेदतः
जन्ममात्रं दक्षिणं हि अभिषेकेन वामकम्॥



(देवि! वामाचार और दक्षिणाचारके भेदसे आचार दो प्रकारका है। जन्ममात्रसे दक्षिण और अभिषेक होनेपर वामाचारी होता है।)

सात प्रकारके आचारोंका निर्देश होनेपर भी तन्त्रमें प्रधानतः तीन भावोंका विषय वर्णित है। पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। वामकेश्वर तन्त्रके मत से—

जन्ममात्रं पशुभावं वर्षषोडशकावधि।
ततश्च वीरभावस्तु यावत् पञ्चाशतो भवेत्॥

द्वितीयांशे वीरभावस्तृतीयो दिव्यभावकः।
एवं भावत्रयेणैव भावमैक्यं भवेत् प्रिये॥

ऐक्यज्ञानात् कुलाचारो येन देवमयो भवेत्।
भावो हि मानसो धर्मो मनसैव सदाभ्यसेत्॥

(जन्मकालसे सोलह वर्षतक पशुभाव, इसके पश्चात् द्वितीयांशमें पचास वर्ष-तक वीरभाव, उसके अनन्तर तृतीयांशमें दिव्यभाव होता है। इस भावत्रयसे भावऐक्य होता है, ऐक्यज्ञानसे कुलाचार होता है। इस कुलाचारके कारण ही मानव देवमय हुआ करता है। भाव ही मानस धर्म है, अतः मन ही मन सर्वदा उसका अभ्यास करना उचित है।)

कुंजिका-तन्त्रके सातवें पटलमें लिखा है—

भावश्च त्रिविधो देवि दिव्यवीरपशुक्रमात्।
विश्वं च देवतारूपं भावयेत् कुलसुन्दरि॥

स्त्रीमयं च जगत् सर्वं पुरुषं शिवरूपिणम्।
अभेदे चिन्तयेद् यस्तु स एव देवतात्मकः॥

नित्यस्नानं नित्यदानं त्रिसन्ध्यश्च जपार्चनम्।
निर्मलं वसनं देवि परिधानं समाचरेत्॥

वेदशास्त्रे दृढज्ञानं गुरौ देवे तथैव च।
मन्त्रे चैव दृढज्ञानं पितृदेवार्चनं तथा॥

बलिवैश्वं तथा श्राद्धं नित्यकार्यं शुचिस्मिते।
शत्रुं मित्रसमं देवि चिन्तयेत्तु महेश्वरि॥

अन्नं चैव महेशानि सर्वेषां परिवर्जयेत्।
गुरोरन्नं महेशानि भोक्तव्यं सर्वसिद्धये॥

कदर्यं च महेशानि निष्ठुरं परिवर्जयेत्।
सत्यं च कथयेद् देवि न मिथ्या च कदाचन॥

केवलं दिव्यभावेन पूजयेत् परमेश्वरीम्॥



(भाव तीन प्रकारके हैं— दिव्य, वीर और पशु। हे कुलसुन्दरि! यह विश्व देवतारूप है, समस्त जगत् स्त्रीमय और पुरुष शिव है, इस प्रकार अभेदभावसे जो चिन्ता करता है, वह देवतात्मक या दिव्य है। उसको चाहिए कि वह नित्यस्नान, नित्यदान, त्रिसन्ध्या, जपपूजा, निर्मल वसन-परिधान, वेदशास्त्र, गुरु और देवतामें दृढ़आस्था, मन्त्र और पितृदेवपूजामें अटल विश्वास, बलिदान, श्राद्ध और

नित्यकार्य, शत्रु-मित्रमें समज्ञान, सबका अन्नपरित्याग, सर्वसिद्धिके लिये गुरुका अन्नभोजन, कदर्य और निष्ठुर आचरणका त्याग तथा दिव्यभावसे सर्वदा परमेश्वरीकी पूजा करे। उसको सर्वदा सत्य बोलना चाहिए, कभी झूठ न बोले।)

पिच्छिलातन्त्रके दसवें पटल में लिखा है—

दिव्यवीरोमहाभावावधमः पशुभावकः।
वैष्णवः पशुभावेन पूजयेत् परमेश्वरि॥

शक्तिमन्त्रे वरारोहे पशुभावो भयानकः।
दिव्यैर्वीरैर्महेशानि जायते सिद्धिरुत्तमा॥

दिव्ये वीरे न भेदोऽस्ति भेदो वीरो महोद्धतः।
दिव्यवीरौ प्रवक्ष्यामि सर्वभावोत्तमौ मतौ॥

विना शक्तिं न पूजास्ति मत्स्यमांसं विना प्रिये।
मुद्रां च मैथुनं चापि विन नैव प्रपूजयेत्॥

स्त्रीभगं पूजनाधारः स्वर्णरूप्यात्मकः कुशः।
अभावे सर्वद्रव्याणामनुकल्पः कलौ युगे॥

अथवा परमेशानि मानसं सर्वमाचरेत्।
स्नानन्तु मानसं प्रोक्तं वैदिको मानसः सदा॥

यत्र भुक्त्वा महापूजा मानसं भोजनन्तु तत्।
स्वकीयां परकीयां वा मानसन्तु रमेत् स्त्रियम्॥

मानसं मद्यमांसादि स्वीकुर्याद् साधकोत्तमः।
स्वयम्भूकुसुमं तद्वन्मानसं समुपाचरेत्॥

मानसं भगरोमादि मानसं भगपूजनम्।
सर्वन्तु मानसं कुर्यात्तेन सिद्ध्यति साधकः॥

न कलौ प्रकृताचारः संशयात्मनि नैव सः।
मानसेनैव भावेन सर्वसिद्धिमुपालभेत्॥

दिव्य और वीर—ये दो महाभाव हैं, पशुभाव अधम है। वैष्णवको पशुभावसे ही पूजा करनी चाहिए। शक्ति मन्त्रमें पशुभाव भयजनक है। दिव्य और वीर भावमें प्रभेद नहीं है। वीरभाव अति उद्धत है। अब समस्त भावोंमें सर्वश्रेष्ठ और दिव्य वीरभावका वर्णन किया जाता है। शक्ति या मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुनके बिना पूजा नहीं की जाती। स्वर्ण और चाँदी रूपी कुश ही स्त्री-भग पूजाका आधार है। कलियुगमें सर्वद्रव्यके अभावमें अनुकल्प है अथवा समस्त कार्य मानस रूपसे ही करनेका मार्ग है। सदा मानस स्नान, मानस वैदिक कर्मकाण्ड, जहाँ महापूजाभोग वहीं मानस भोजन और मन ही मन स्वकीया या परकीया नारीसे रमण करें। साधकश्रेष्ठ मन ही मन मद्य, मांस आदि ग्रहण करें और मानस रूपसे ही स्वयम्भूकुसुम भी उपाचार दें तथा मन ही मन भग-रोम आदिका चिन्तन और भग-पूजा करें। इस प्रकार समस्त कार्य मानस रूपसे ही करना चाहिए। निश्चय ही कलिकालमें



वास्तविक आचार नहीं है, केवल मानस भावोंके द्वारा ही समस्त सिद्धि प्राप्त होती है।

पशुभावका लक्षण पूर्वमें ही वर्णित किया जा चुका है। रुद्रयामलके उत्तरखंडके अनुसार—

दुर्गापूजां विष्णुपूजां शिवपूजां च नित्यशः।
अवश्यं हि यः करोति स पशुरुत्तमः स्मृतः।।

केवलं शिवपूजां च यः करोति च साधकः।
पशूनां मध्यतः श्रीमान् शिवया सह चोत्तमः।।

केवलं वैष्णवो धीरः पशूना मध्यमः स्मृतः।
भूतानां देवतानां च सेवां कुर्वन्ति सर्वदा।।

पशूनामधमाः प्रोक्ता नरकास्था न संशयः।
त्वत्सेवां मम सेवां च ब्रह्मविष्ण्वादिसेवनम्।।

कृत्वान्यसर्वभूतानां नायिकानां महाप्रभो।
यक्षिणीनां भूतिनीनां ततः सेवां शुभप्रदाम्।।

यः पशुः ब्रह्मकृष्णादि सेवां च कुरुते सदा।
तथा श्रीतारकब्रह्मसेवां ये वा नरोत्तमाः।।

तेषामसाध्याभूतादि देवता सर्वकामहा।
वर्जयेत् पशुमार्गेण विष्णुसेवापरो जनः।।

(जो प्रतिदिन दुर्गापूजा, विष्णुपूजा और शिवपूजा अवश्य करता है वही पशु उत्तम है। पशुओंमें जो शक्ति-सह शिवपूजा करता है अथवा जो व्यक्ति धीर और केवल वैष्णव है, उसको मध्यम तथा पशुओंमें जो भूतादि उपदेवताओंकी सर्वदा सेवा करता है, उसको अधम कहते हैं। अधम निश्चय नरकस्थ होता है। जो पशु आपकी, मेरी और विष्णु आदिकी सेवा करके पीछे सर्वभूत, नायिका, यक्षिणी, भूतिनी आदिकी सेवा करता है, उसको भी शुभप्रद समझें। और जो पशु ब्रह्म कृष्णादि और तारकब्रह्मकी सेवा करता है, भूतादि देवताकी सेवा उसके लिये कामहारी होती है, इसलिये साधनयोग्य नहीं। वैष्णवको पशुमार्गसे भूतादिकी सेवा छोड़ देनी चाहिए।)

रुद्रयामलके मतसे—

पशुभावस्थितो मन्त्री सिद्धिमेकामवाप्नुयात्।
यदि पूर्वापरस्थां च महाकौलिकदेवताम्।।

कुलमार्गस्थितो मन्त्री सिद्धिमाप्नोति निश्चितम्।
यदि विद्याः प्रसीदन्ति वीरभावं तदा लभेत्।।

वीरभावप्रसादेन दिव्यभावमवाप्नुयात्।
दिव्यभावं वीरभावं ये गृह्णन्ति नरोत्तमाः।।

वांछाकल्पद्रुमलतापतयस्ते न संशयः।।



(यदि पूर्वापर पशुभावसे रहकर महाकौलिक देवताका मन्त्र ग्रहणकारी केवल सिद्धि लाभ करे, तो कुल-मार्गस्थ मन्त्रग्रहणकारी निश्चय सिद्धि लाभ करेगा। महाविद्याके प्रसन्न होनेपर वीरभाव प्राप्त होता है। वीरभावके प्रसादसे दिव्यभावकी प्राप्ति होती है। जो नरवर दिव्य और वीरभाव ग्रहण कर लेते हैं, वे निःसन्देह वाञ्छाकल्पतरुलताके अधिपति हो जाते हैं अर्थात् वे जो चाहे सो कर सकते हैं।)





: नवक यंत्र :

૧	૨	૩	૪	૬૯	૭૧	૭૨	૭૪	૭૩
૫	૧૭	૧૮	૧૯	૫૬	૫૮	૬૦	૫૯	૭૭
૭	૨૦	૨૯	૩૦		૪૮	૫૧	૬૨	૭૫
૬૬	૫૪	૪૬	૪૦	૩૯	૪૪	૩૬	૨૮	૧૬
૬૭	૫૫	૪૯	૪૫	૪૧	૩૭	૩૩	૨૭	૧૫
૬૮	૫૭	૫૦	૩૮	૪૩	૪૨	૩૨	૨૫	૧૪
૭૦	૬૧	૩૧	૫૨	૩૫	૩૪	૫૩	૨૧	૧૨
૭૬	૨૩	૬૪	૬૩	૨૬	૨૪	૨૨	૬૫	૬
૯	૮૦	૭૯	૭૮	૧૩	૧૧	૧૦	૮	૮૧

७



अभिषेक



अभिषेक

तान्त्रिक कार्यादिका प्रकृत साधन करनेके लिये पहले अभिषिक्त होना ही पड़ता है। अभिषेक बिना हुए चक्र-पूजा या साधनका अधिकार नहीं होता।

निरुत्तर तन्त्रके दसवें पटलमें लिखा है—

अभिषिक्तो भवेत् वीरो अभिषिक्ता च कौलिकी।
एवं च वीरशक्तिं च वीरचक्रे नियोजयेत्॥

नाभिषिक्तो वसेच्चक्रे नाभिषिक्ता च कौलिकी।
वसेच्च रौरव याति सत्यं सत्यं न संशयः॥

(जो वीर और कुलस्त्री दोनों ही अभिषिक्त हों, ऐसे वीर और शक्तिको ही चक्रमें नियुक्त किया जाय। जो अभिषिक्त न हुआ हो, ऐसे पुरुष और कुलस्त्रीको चक्रपर नहीं बैठने देना चाहिए। यदि बैठे तो वह सच-मुच ही नरकको जायगा।)

अभिषेक साधारणतः पट्टाभिषेक या पूर्णाभिषेक नामसे प्रसिद्ध है। यथाविधि दीक्षित होकर जो गुरुका उपदेश, संकेत और तान्त्रिक परिभाषा समझकर उसके अनुसार काम करनेमें समर्थ, सैकड़ों बार पञ्च मकारकी सेवा न करके भी जो विचलित नहीं होते, उन्हींको पूर्णाभिषिक्त कहा जा सकता है। इस प्रकार पूर्णाभिषिक्त आचार्य पदपर अभिषिक्त होनेकी क्रियाका नाम पट्टाभिषेक है। कुलार्णवतन्त्रमें लिखा है—

गुरूपदिष्टमार्गेण बोधं कुर्याद्विचक्षणः।
पाशमुक्तक्षणाक्लिष्य परानन्दमयो भवेत्॥

बोधविद्वा शिवः साक्षान्न पुनर्जन्मतां व्रजेत्।
एषा तीव्रतरा दीक्षा भवबन्धविमोचिनी॥

सजीवमीनयुक्तेन सुरया पूरितेन च।
अयं सिद्धाभिषेकस्य आचार्यस्यास्य पार्वति॥

पूर्णाभिषेकहीना ये मृताश्च कुलनायिके।
सिद्धा पूर्णाभिषेकेन शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥

तेन मुक्तिं व्रजन्तीति शाम्भवीवाक्यमब्रवीत॥

(दीक्षित विचक्षण व्यक्ति अपने गुरुके उपदिष्ट मार्गपर विचरण करके सम्पूर्ण ज्ञान लाभ करनेपर भव-बन्धन और क्लेशसे मुक्त होकर परानन्दमय हो जाता है। मत्स्यमद्यादियुक्त इस कठोर दीक्षामें जीव भव-बन्धनसे विमुक्त हो जाता है। हे कुलनायिके! जिनका पूर्णाभिषेक नहीं हुआ है, उनको मृत समझना चाहिए। पूर्णाभिषेकके द्वारा सिद्ध शिवसायुज्य लाभ करता है। स्वयं शिवने कहा है कि इस पूर्णाभिषेकके द्वारा निश्चय ही मुक्ति होती है।



पूर्णाभिषेकका विधान महानिर्वाण तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

विधानमेतत् परमं गुप्तमासीद्युगत्रये।
गुप्तभावेन कुर्वन्तो नरा मोक्षं ययुः पुरा॥

प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्त्मनः।
नक्तं वा दिवसे कुर्यात् स प्रकाशाभिषेचनम्।।

नाभिषेकं विना कौलः केवलं मद्यसेवनात्।
पूर्णाभिषिक्तः कौलः स्याच्चक्राधीशं कुलार्चकः।।

तत्राभिषेकपूर्वाह्णे सर्वविघ्नोपशान्तये।
यथाशक्त्युपचारेण विघ्नेशः पूजयेद् गुरुः।।

गुरुश्चेन्नाधिकारी स्यात् शुभपूर्णाभिषेचने।
तदाभिषिक्तकौलेन तत्सर्वं साधयेत् प्रिये।।

खान्तार्णबिन्दुसंयुक्तं बीजमस्य प्रकीर्त्तितम्।
गणकोऽस्य ऋषिश्छन्दो निर्वृद्धिघ्नस्तु देवता।।

कर्त्तव्यकर्मणे विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगिता।
षड्दीर्घयुक्तमूलेन षडंगानि समाचरेत्।।

प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेत् गणपतिं शिवे।
सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं।।

खड्गं पाशांकुशेष्टान्वरकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम्।
बालेन्दूद्दीप्तमौलिं करिपतिवदनं बीजपूरार्द्रगण्डम्।।

भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्रांगरागम्।।
ध्यात्वैवं मानसे विष्ट्वा पीठशक्तिं प्रपूजयेत्।

तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी।
उग्रा तेजस्वती सत्या मध्ये विघ्नविनाशिनी।।

पूर्वादितोऽर्चयित्वैताः पूजयेत् कमलासनम्।
पुनर्ध्यात्वा गणेशानं पञ्चतत्त्वोपचारकैः।।

अभ्यर्च्य च चतुर्दिक्षु गणेशं गणनायकम्।
गणनाथं गणक्रीडं यजेत् कौलीनसत्तमः।।

एकदन्तं वक्रतुण्डं लम्बोदरगजाननौ।
महोदरं च विकटं धूम्राभं विघ्ननाशनम्।।

ततो ब्राह्मीमुखाः शक्तिर्दिक्पालाँश्च प्रपूजयेत्।
तेषामस्त्राणि संपूज्य विघ्नराजं विसर्जयेत्।।

एवं संपूज्य विघ्नेशमधिवासनमाचरेत्।
भोजयेच्च पञ्चतत्त्वैर्ब्रह्मज्ञान् कुलसाधकान्।।



ततः परदिने स्नातः कृतनित्योदितक्रियः।
आजन्मकृतपापाना क्षयार्थं तिलकाञ्चनम्।।

उत्सृजेत् कौलतृप्त्यर्थं भोज्यैकैकमपि प्रिये।
अर्घ्यं दत्वा दिनेशाय ब्रह्मविष्णुनवग्रहान्।।

अर्चयित्वा मातृगणान् वसुधारां प्रकल्पयेत्।
कर्मणोभ्युदयार्थाय वृद्धिश्राद्धं समाचरेत्।।

ततो गत्वा गुरोः पार्श्वे प्रणम्य प्रार्थयेदिदम्।
एहि नाम कुलाचार नलिनीकुलवल्लभ।।

त्वत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि कृपानिधे।
आज्ञां देहि महाभाग शुभपूर्णाभिषेचने।।

निर्विघ्नं कर्मणः सिद्धिमुपैमि त्वत्प्रसादतः।
शिवशक्त्याज्ञया वत्स कुरु पूर्णाभिषेचनम्।।

मनोरथमयी सिद्धिर्जायतां शिवशासनात्।
इत्थमाज्ञां गुरोः प्राप्य सर्वोपद्रवशान्तये।।

आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यावाप्त्यै संकल्पमाचरेत्।
ततस्तु कृतसंकल्पो वस्त्रालंकारभूषणैः।।

कारणैः शुद्धिसहितैरभ्यर्च्य वृणुयाद् गुरुम्।
गुरुर्मनोहरे गेहे गैरिकादिविचित्रिते।।

चित्रध्वजपताकाभिः फलपुष्पेण शोभिते।
किंकिणीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते।।

घृतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविवर्जिते।
कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपैः सुवासिते।।

व्यजनैश्चामरैर्बर्हैर्दर्पणाद्यैरलंकृतेः।
सार्द्धहस्तमितां वेदीमुच्चकैश्चतुरांगुलाम्।।

रचयेन्मृण्मयीं तत्र चूर्णैरक्षतसम्भवैः।
पीतरक्तासितश्वेतश्यामलैः सुमनोहरैः।।

मण्डलं सर्वतोभद्रं विदध्यात् श्रीगुरुस्ततः।
स्व स्व कल्पोक्तविधिना कुर्यादर्चाविधिक्रियाम्।।

कृत्वा पूर्वोक्तविधिना पञ्चतत्त्वानि शोधयेत्।
संशोध्य पञ्चतत्त्वानि पूर्वकल्पितमण्डले।।

स्वर्णं वा रजतं ताम्रं मृण्मयं घटमेव वा।
क्षालितं चन्द्रबीजेन दध्यक्षतविचर्चितम्।।

स्थापयेद् ब्रह्मवीक्षेण सिन्दूरेणांकयेत् श्रियाम्।
क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुविभूषितैः।।



मूलमन्त्रप्रजापेण पूरयेत् कारणेन तम्।
अथवा तीर्थतोयेन शुद्धेन पायसापि वा।।

नवरत्नं सुवर्णं वा घटमध्ये विनि:क्षिपेत्।
पनसोडुम्बराश्वत्थबकुलाम्रसमुद्भवम्।।

पल्लवं तन्मुखे दद्याद्वाग्भवेन कृपानिधि:।
सरावमार्त्तिकं चापि फलाक्षतसमन्वितम्।।

रमां मायां समुच्चार्य स्थापयेत् पल्लवोपरि।
बध्नीयाद्वस्त्रयुग्मेन ग्रीवां तस्य वरानने।।

शक्तौ रक्तं शिवे विष्णौ श्वेतवास: प्रकीर्त्तितम्।
स्थां स्थीं मायां रमां स्मृत्वा स्थिरीकृत्य घटान्तरे।।

नि:क्षिप्य पञ्चतत्त्वानि नवपात्राणि विन्यसेत्।
राजतं शक्तिपात्रं स्याद् गुरुपात्रं हिरण्मयम्।।

श्रीपात्रस्तु महाशंखं ताम्रान्यन्यानि कल्पयेत्।
पाषाणदारुलौहानां पात्राणि परिवर्जयेत्।।

शक्त्या प्रकल्पयेत् पात्रं महादेव्या प्रपूजने।
पात्राणां स्थापनं कृत्वा गुरून् देवीं प्रतर्पयेत्।।

ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्चयेत् सुधी:।
दर्शयित्वा धूपदीपौ सर्वभूतबलिं हरेत्।।

प्राणायामं तत: कृत्वा ध्यात्वा बाह्यमहेश्वरीम्।
स्वशक्त्या पूजयेदिष्टां वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।।

होमन्तु कृत्वा निष्पाद्य कुमारीशक्तिसाधनम्।
पुष्पचन्दनवासोभिरर्चयेत् स गुरु: शिवे।।

अनुगह्णन्तु कौलं मे शिष्यं प्रतिकुलव्रता:।
पूर्णाभिषेकसंस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम्।।

एवं पृच्छति चक्रेशे ते ब्रूयुर्गुरुमादरात्।
महामायाप्रसादेन प्रभावात् परमात्मन:।।

शिष्यो भवति पूर्णस्ते परतत्त्वपरायण:।
शिष्येण च गुरुर्देवीमर्चयित्वार्चिते घटे।।

कामं मायां रमां जप्त्वा चालयेद् घटमुत्तमम्।
उत्तिष्ठ ब्रह्म कलसमुत्तराभिमुखं गुरु:।।



मन्त्रैरेतैर्वक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत् कृपान्वित:।
शुभपूर्णाभिषेकस्य सदाशिव ऋषि: स्मृत:।।

छन्दोऽनुष्टुब्देवताद्या प्रणवं बीजमीरितम्।
शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः प्रकीर्त्तितः॥

सत्य, त्रेता और द्वापर युगमें इस पूर्णाभिषेकका विधान सातिशय गुप्त था। उस समय गुप्तभावसे इसका अनुष्ठान करके मानवोंने मोक्ष लाभ किया। पीछे जब कलिका प्रभाव बढ़ जायगा, तब कुलाचारी लोग रात या दिनमें प्रकाश्य भावसे अभिषेक करेंगे। अभिषेकके बिना केवल मद्य-सेवन करनेसे ही कौल नहीं होते। जिनका पूर्णाभिषेक हुआ है, वे ही कुलार्चक, चक्राधीश्वर और कौल हो सकते हैं। अभिषेकके पहले दिन गुरुको सर्वविघ्नोंकी शान्तिके लिये यथाशक्ति उपचार द्वारा विघ्नराज गणेशजीकी पूजा करनी चाहिए। यदि गुरु शुभ पूर्णाभिषेकके अधिकारी न हों तो पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त कौल द्वारा उक्त संस्कारका साधन करना चाहिए।

'ख' - वर्णके आगेके वर्णमें बिन्दु जोड़नेसे (गं) गणपतिका बीज होगा। उस गणपति मन्त्रके ऋषि गणक, छन्द नीवृत और देवता विघ्न हैं। कर्त्तव्य कर्मके विघ्नोंकी शान्तिके लिये विनियोग कीर्त्तन करना होगा। छह दीर्घस्वरयुक्त मूल मन्त्रके द्वारा (१) षडंगन्यास करना चाहिए। अनन्तर (२) प्राणायाम करके गणपतिका ध्यान करना चाहिए।

जो सिन्दूरके समान रक्तवर्ण हैं, जो नयनत्रय-विशिष्ट हैं, जिनका उदर स्थूलतर है, जो चार बाहुओंमें खड्ग, पाश, अंकुश और वर धारण किए हुए हैं, जो विशाल शुण्ड-द्वारा वारुणीपूर्ण कुम्भ धारण करते हैं, नूतन शशिकलाके द्वारा जिनका मस्तक शोभायमान है, जिनका मुखमण्डल गजराजके सदृश है, जिनके गण्डद्वय सर्वदा मदस्रावसे भीगे रहते हैं, जिनका शरीर सर्पराज-द्वारा विभूषित है, जो रक्त वस्त्र और रक्त अंगराग धारण करते हैं, ऐसे देव गणपतिका पूजन करना चाहिए।

इस प्रकारका ध्यान करके मानस उपचार-द्वारा (प्रणव उच्चारणंपूर्वक चतुर्थी विभक्तयन्त नाम उच्चारण करके 'नमः' शब्द अन्तमें लगाकर गन्ध-पुष्पादि-द्वारा) पूजा करके पीठ-शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिए। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजस्वती और सत्या इन आठ पीठ-शक्तियोंकी पूर्वादिक्रमसे पूजा करके मध्यदेशमें विघ्नविनाशिनीकी पूजा करनी चाहिए। (३) (प्रणवपाठपूर्वक 'नमः' पदान्त नाम उच्चारण करके) कमलासनकी पूजा करनी चाहिए। कौलिकश्रेष्ठको पुनः ध्यान करके मन्त्रशोधित पञ्चतत्त्वरूप उपचार-द्वारा गणेशकी पूजा करनी चाहिए। इसके उपरान्त उनके चतुर्दिक् गणेश, गणनायक, गणनाथ, गणक्रीड, एकदन्त, वक्रतुण्ड, लम्बोदर, महोदर, विकट, धूम्राभ, विघ्ननाशन, गजाननकी पूजा करनी चाहिए।

अनन्तर ब्राह्मी आदि अष्टशक्ति और इन्द्र आदि दश दिक्पालोंकी पूजा करके दिक्पालोंके अस्त्रसमुदायकी पूजा-पूर्वक (विघ्नराज क्षमस्व इस वाक्यके द्वारा) विघ्नराजको विसर्जन करें।

इस प्रकारसे विघ्नराजकी पूजा करके अधिवास करें और पञ्चतत्त्वके द्वारा ब्रह्मज्ञ कुलसाधकोंको भोजन करावें।



दूसरे दिन स्नानपूर्वक नित्यक्रिया समाधान करके जन्मसे किए हुए पापपुञ्जके क्षयके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे। (४) प्रिये! उसके पश्चात् कौलोंकी तृप्तिके लिये भोज्य उत्सर्ग करना चाहिए (५) पीछे सूर्यको अर्घ्य प्रदानपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह और मातृगणोंकी पूजा करके वसुधारा देनी चाहिए। फिर कर्मके अभ्युदयकी कामनाके लिये वृद्धि-श्राद्ध करें।

अनन्तर गुरुके पास जाकर प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करें कि नाथ! आप कौलिकरूप पद्मवनके वल्लभ हैं। कृपानिधि! अब मेरे मस्तकपर अपने चरण कमलकी छाया प्रदान करें। महाभाग! मेरे शुभ पूर्णाभिषेकके विषयमें आप आज्ञा प्रदान करें जिससे मैं आपके प्रसादसे निर्विघ्न कार्य सिद्धि कर सकूँ।

''वत्स! शिव-शक्तिके आज्ञानुसार पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त होओ। महेश्वर-के आदेशानुसार तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होवे।'' शिष्य गुरुसे इस प्रकारकी आज्ञा लेकर सब उपद्रवोंकी शान्तिके लिये तथा आयु, लक्ष्मी, बल और आरोग्य-लाभके लिये संकल्प करें।

इस प्रकारसे कृतसंकल्प होकर वस्त्र, अलंकार, भूषण और शुद्धिके साथ कारण-द्वारा गुरुकी अर्चना करके उनका वरण करें।

तब गैरिकादि-द्वारा चित्रित मनोहर-गृहमें उपवेशन करें। वह गृह मनोहर ध्वजा-पताका-द्वारा और फल-पल्लवादि-द्वारा सुशोभित तथा किंकिणी अर्थात् क्षुद्र घण्टिकासमूहकी मालासे विभूषित चन्द्रातप-द्वारा अलंकृत होना चाहिए। वहाँ इस प्रकार गृह-प्रदीप जलाने होंगे कि कहीं भी अन्धकारका लेश मात्र न रहे। वह स्थान कपूर-सहित शालनिर्याससे निर्मित धूपके द्वारा सुवासित और पंखा, तालवृन्त, चामर, मयूरपुच्छ, दर्पणादि-द्वारा सुसज्जित होना चाहिए।

गुरुको चाहिए कि इस घरके भीतर चार अंगुल उच्च और सार्द्धहस्त परिमित मृण्मय वेदीकी रचना करें। पीछे पीत, रक्त, कृष्ण, श्वेत, श्यामल, इन पाँच वर्णोंके अक्षतचूर्ण-द्वारा सुमनोहर सर्वतोभद्र मण्डल बनावें। फिर स्व-स्व कल्पोक्त विधानानुसार मानसपूजा-पर्यन्त समस्त कार्य सम्पन्न करके मन्त्र-द्वारा पञ्चतत्त्व शोधन करें।

पञ्चतत्त्वशोधनके पश्चात् पूर्वकल्पित सर्वतोभद्र मण्डलके ऊपर सुवर्ण-निर्मित, रजननिर्मित, ताम्रनिर्मित अथवा मृत्तिकानिर्मित घट लाकर 'फट्' इस मन्त्रके द्वारा उस घटका प्रक्षालन करें। दधि और अक्षत विलेपन-पूर्वक प्रणव उच्चारण कर उसको उस मण्डलमें स्थापित करें। पीछे 'श्रीं' बीजमन्त्र पढ़कर सिन्दूर-द्वारा उसे लिख दें। अनन्तर चन्द्रबिन्दु-विभूषित 'क्ष' से 'अ' पर्यन्त पश्चात् वर्णोंके साथ मूल मन्त्र तीन बार जप करके कारण-द्वारा उस घटको भर दें अथवा तीर्थजल-द्वारा या विशुद्ध सलिल-द्वारा घट पूर्ण करके उस घटमें नवरत्न और सुवर्ण निक्षेप करें। तत्पश्चात् कृपानिधि गुरु 'ऐँ' बीज मन्त्र उच्चारण करके घटके मुँहपर कटहर, उदुम्बल, अश्वत्थ, बकुल और आम्र इन पाँच प्रकारके वृक्षोंके पत्ते रक्खें। पीछे 'श्रीं' 'ह्रीं' मन्त्र उच्चारण करके आतपतण्डुल और फलसमन्वित सुवर्णमय, रजतमय, ताम्रमय या मृण्मय सराव (सराई)-को पत्तोंके ऊपर रक्खें। वरानने! वस्त्रयुगल-द्वारा उस घटकी ग्रीवा बन्धन करना चाहिए। शिवे! शक्तिमन्त्रमें रक्त वस्त्र और विष्णुमन्त्रमें श्वेत वस्त्र ही प्रशस्त हैं। इसके उपरान्त 'स्थां स्थां ह्रीं श्रीं स्थिरीभव' मन्त्र पढ़कर स्थिरीकृत अन्य घटपर पञ्चतत्त्व स्थापन करके नव पात्रका विन्यास करना चाहिए।

शक्तिपात्र रजतनिर्मित, गुरुपात्र सुवर्णनिर्मित, श्रीपात्र महाशंखविरचित और अन्य समस्त पात्र ताम्रनिर्मित होने चाहिएँ। महादेवीकी पूजाके समय पाषाण निर्मित पात्र, काष्ठनिर्मित पात्र या लौहनिर्मित पात्रको छोड़कर शक्तिके अनुसार अन्य पदार्थके पात्रोंका व्यवहार करें। पात्र संस्थापन करके गुरुओंको भगवती (और आनन्द भैरवादि)-का तर्पण करें। तत्पश्चात् ज्ञानी व्यक्ति अमृतपूर्ण घटकी पूजा करें। फिर धूप, दीप प्रदर्शनपूर्वक पूर्वोक्त मन्त्र बोलकर सर्वभूत-बलि प्रदान करें। अनन्तर



पीठ-देवताओंकी पूजा करके षडंगन्यास करें। पीछे प्राणायाम करके महेश्वरीका ध्यान और आवाहनपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार अभीष्ट देवताकी पूजा करके, किसी प्रकार भी वित्तशाठ्य (कंजूसपना) नहीं करना चाहिए। शिवे! सद्गुरुको चाहिए कि वे होमतक समस्त कार्य सम्पन्न करके पुष्प, चन्दन और वस्त्र-द्वारा कुमारियों और शक्ति-साधकोंको अर्चित करें।

'हे कुलव्रत कौलगण! आप लोग मेरे शिष्यपर अनुग्रह प्रकट करें। इस पूर्णाभिषेक-संस्कारमें आप लोग अनुमति प्रदान करें।' चक्रेश्वरके ऐसा प्रश्न करनेपर कौलगण समादरपूर्वक कहेंगे कि, 'महामायाके प्रसाद और परमात्मा-के प्रभावसे आपके शिष्य परमतत्त्वपरायण और श्रेष्ठ हों'।

तदनंतर गुरु, शिष्यके द्वारा देवी भगवतीकी पूजा कराकर अर्चित घटपर 'क्लीं ह्रीं श्रीं' मन्त्र जपकर उस निर्मल घटकी चालना करें। फिर यह मन्त्र पढ़ें कि हे ब्रह्मकलश, तुम सिद्धिदाता हो और देवता-स्वरूप उत्थान करते हो। मेरा शिष्य तुम्हारे जल और पल्लवसे सिक्त होकर ब्रह्म निरत होवे।

गुरु इस मन्त्र-द्वारा कलश संचालित करके कृपायुक्त हृदयसे, उत्तरकी ओर मुँह करके शिष्योंको अभिषिक्त करें और यह मन्त्र पढ़ते रहें 'शुभपूर्णाभिषेक-में ऋषि सदाशिव, छन्दअनुष्टप्, बीज प्रणव, शुभपूर्णाभिषेक कार्य विनियोग कीर्त्तन करना होगा। उसके अनन्तर यह अभिषेक मन्त्र पढ़ें—

गुरवस्त्वाभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः।।

षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा।।

जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु वगला वरदा शिवा।।

नारसिंही च वाराही वैष्णवी वनमालिनी।
इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वामभिषिञ्चन्तु शक्तयः।।

भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा।
श्रद्धा कांतिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा।।

महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च अभिषिञ्चन्तु सर्वदा।।

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो भार्गवरामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा।।

असितोंगरुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तभयंकरः।
कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा।।

काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्लाविरोधिनी।
विप्रचित्तामहोग्रात्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा।।

इन्द्रोग्निः शमनो रूक्षो वरुणः पवनस्तथा।
धनदश्च महेशानः सिंचन्तु त्वां दिगीश्वराः।।



रविः सोमो मंगलश्च बुधो जीवः शितः शनिः।
राहुः केतुः सनक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहा॥

नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च।
ऋतुर्मासोहायनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः।
समुद्रास्त्वाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा॥

गंगा सूर्यसुता रेवा चन्द्रभागा सरस्वती।
सरयुर्गण्डकी कुंडी श्वेतगंगा च कौशिकी॥

अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्या पतत्रिणः।
तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिंचन्तु त्वां दिगीश्वराः॥

पातालभूतलव्योमचारिणः क्षेमकारिणः।
पूर्णाभिषेकसन्तुष्टा अभिषिञ्चन्तु पाथसा॥

दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा दौर्मनस्यं तथा शुचः।
विनश्यन्त्वभिषेकेण कालीबीजेन ताडिताः॥

भूतः प्रेतः पिशाचश्च ग्रहा येऽरिष्टकारिणः।
विद्रुतान्ते विनश्यन्तु रमाबीजेन ताडिताः॥

अभिचारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये।
मनोवाक्कायजा दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात्॥

नश्यन्तु विपदः सर्वा सम्पदः सन्तु सुस्थिराः।
अभिषेकेन पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः॥

इत्येकाधिकविंशत्या मन्त्रैः संसिक्तसाधकम्।
पशोर्मुखबध्मंत्रं तु पुनः संश्रावयेद् गुरुः॥

पूर्वोक्तनाम्ना संबोध्य ज्ञापयन् शक्तिसाधकान्।
दद्यादानन्दनाथान्तमाख्यानं कौलिको गुरुः॥

श्रुतमन्त्रगुरोर्यन्त्रे संपूज्य निजदेवताम्।
पञ्चतत्त्वोपचारेण गुरुमभ्यर्चयेत्ततः॥

गोभूर्हिरण्यवासांसि नानालंकरणानि च।
गुरवे दक्षिणां दत्वा यजेत् कौलान् शिवात्मकाम्॥

कृतकौलार्चनो धीरः शांतोऽतिविनयान्वितः।
श्रीगुरोश्चरणौ स्पृष्ट्वा भक्त्या नत्वेदमर्थयेत्॥

श्रीनाथ जगतां नाथ मन्नाथ करुणानिधे।
परामृतप्रदानेन पूरयान्मन्मनोरथम्॥



आज्ञां मे दीयतां कौला: प्रत्यक्षशिवरूपिण:।
सच्छिष्याय विनीतायं ददामि परमामृतम्।।

चक्रेशपरमेशान कौलपंकजभास्कर।
कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं देह्यमुष्मै कुलामृतम्।।

आज्ञामादाय कौलीशं परमामृतपूरितम्।
सशुद्धिकं पानपात्रं शिष्यहस्ते समर्पयेत्।।

ह्याकृष्य गुरुर्देवीं स्रुवसंलग्नभस्मना।
स्वस्यशिष्यस्य कौलानां कूर्चे च तिलकं न्यसेत्।।

तत: प्रसादतत्त्वानि कौलेभ्य: परिवेशयन्।
चक्रानुष्ठानविधिना विदध्यात् पानभोजनम्।।

इति ते कथितं देवि शुभपूर्णाभिषेचनम्।
ब्रह्मज्ञानैकजननं शिवत्वफलसाधनम्।।

नवरात्रं सप्तरात्रं पञ्चरात्रं त्रिरात्रकम्।
अथवाप्येकरात्रं च कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम्।।

संस्कारेऽस्मिन् कुलेशानि पंचकल्पा: प्रकीर्त्तिता:।
नवरात्र विधातव्यं सर्वतोभद्रमण्डलम्।।

नवनाभं सप्तरात्रे पंचाब्जं पंचरात्रके।
त्रिरात्रे चैकरात्रे च पद्ममष्टदलं प्रिये।।

मण्डले सर्वतोभद्रे नवनाभेऽपि साधकै:।
स्थापनीया नव घटा: पंचाब्जे पंचसंख्यका:।।

नलिनेऽष्टदले देवि घटस्त्वेक: प्रकीर्त्तित:।
अंगावरणदेवाँश्च केशरादिषु पूजयेत्।।

पूर्णाभिषेकसिद्धानां कौलानां निर्मलात्मनाम्।
दर्शनात् स्पर्शनात् घ्राणात् द्रव्यशुद्धिर्विधीयते।।

गुरु तुमको अभिषिक्त करें। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तुमको अभिषिक्त करें। दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी ये माताएँ तुमको अभिषिक्त करें। षोडशी, तारिणी, नित्या, स्वाहा, महिषमर्दिनी तुमको मंत्रपूत सलिल-द्वारा अभिषिक्त करें। जयदुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी, सरस्वती, बगला, वरदा, शिवा तुमको अभिषिक्त करें। नारसिंही, वाराही, वैष्णवी, वनमालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री समस्त शक्तियाँ तुम्हें अभिषिक्त करें। भैरवी, भद्रकाली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति सर्वदा तुम्हें अभिषिक्त करें। महाकाली, महालक्ष्मी, महानीलसरस्वती, उग्रचण्डा, प्रचण्डा ये सर्वदा तुमको सलिल-द्वारा अभिषिक्त करें। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम सर्वदा तुम्हें सलिल-द्वारा अभिषिक्त करें। असितांग, चक्र, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण, ये सलिलसे तुम्हें



अभिषिक्त करें। काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचण्डा, महोग्रा ये तुमको अभिषिक्त करें। इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नैर्ऋत, वरुण, मरुत, कुबेर, ईशान ये अष्ट दिक्पाल तुम्हें अभिषिक्त करें। रवि, सोम, मंगल,बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु ये गृह तुमको अभिषिक्त करें। अश्विनी आदि नक्षत्र, वव आदि करण, विष्कुम्भ आदि योग, रवि आदि वार, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, वसन्त आदि छह ऋतुएँ वैशाख आदि बारह मास, उत्तरायण, दक्षिणायण, ये सर्वदा तुम्हें अभिषिक्त करें। लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र और जलसमुद्र ये समस्त समुद्र मन्त्रपूत सलिल-द्वारा तुम्हें अभिषिक्ति करें। गंगा, यमुना, रेवा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, गण्डकी, कुंडी, श्वेतगंगा, कौशिकी ये मन्त्रपूत जल-द्वारा तुम्हें अभिषिक्त करें। अनन्त, वासुकि, पद्म आदि महानाग, गरुड आदि पक्षी, कल्पवृक्ष आदि वृक्ष और पर्वत तुम्हें अभिषिक्त करें। पातालचारी, भूतलचारी और व्योमचारी जीव तुम्हारा मंगल करें तथा वे पूर्णाभिषेक दर्शन करके परितुष्ट होकर तुम्हें सलिल-द्वारा अभिषिक्त करें। पूर्णाभिषेक तथा परब्रह्मके तेज-द्वारा तुम्हारा दुर्भाग्य, अयश, रोग, दोर्मनस्य और शोक-समुदाय विध्वस्त होवे।

अलक्ष्मी, कालकर्णी, डाकिनी, योगिनी, ये सब अभिषेक और काली बीजके द्वारा ताडित होकर विनष्ट होवें। भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह तथा समस्त अनिष्टकारीगण रमाबीज-द्वारा ताड़ित होकर विनष्ट हो जावें। अभिचारजनित दोष, वैरमन्त्रसे उत्पन्न दोष, मानसिक दोष, वाचनिक दोष, कायिक दोष ये सब तुम्हारे अभिषेकके द्वारा ध्वस्त होवें। तुम्हारी समस्त विपत्तियाँ दूर होवें।

इन इक्कीस मन्त्रोंसे साधकको अभिषिक्त होना चाहिए। यदि शिष्य पशुके पास दीक्षित हुआ हो तो गुरुको चाहिए कि उसे पुन: वही मन्त्र सुनावें। अनन्तर कौलिक गुरु शक्तिसाधकोंको सूचना देते हुए पूर्वनाम ग्रहणपूर्वक शिष्यको सम्बोधन करके आनन्दनायान्त नाम प्रदान करें। शिष्यको चाहिए कि वह गुरुसे मन्त्र सुनकर पञ्चतत्त्वोपचार-द्वारा मन्त्रमें अपने अभीष्ट देवताकी पूजा करके गुरु-पूजा करें।

इसके पश्चात गुरुको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, पेय द्रव्य, अलंकार इनकी दक्षिणा देकर साक्षात् शिव-स्वरूप कौलोंकी पूजा करनी चाहिए। पीछे ज्ञानी व्यक्ति कौलिकोंकी अर्चना करके शान्त और अति विनीत होकर भक्तिके साथ श्री-गुरुके चरण छूकर प्रणाम करे और प्रार्थना करे कि श्रीनाथ आप जगत्के नाथ हैं, मेरे नाथ और करुणानिधि हैं। आप परमामृत प्रदान करके मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए। गुरु कौलोंसे यह कहेंगे— कौलगण! आप प्रत्यक्ष शिवरूपी हैं। आप आज्ञा देवें जिससे मैं इस विनय सम्पन्न सच्छिष्यको परमामृत प्रदान कर सकूँ। कौल यह कहेंगे— चक्रेश्वर! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आप कौलरूप पद्मवनके लिये भास्कर-स्वरूप हैं, आप इस सत्छिष्यको चरितार्थ करें। इसको कुलामृत देवें।

तदनन्तर गुरु कौलोंकी अनुमति लेकर शुद्धिके साथ परमामृत-पूरित पानपात्र शिष्यके हाथमें रक्खें। इसके अनन्तर गुरुको चाहिए कि देवी भगवतीको हृदयमें धारण करके स्रुवसंलग्न भस्मके द्वारा अपने शिष्य और कौलोंके ललाटपर तिलक लगा दें। तपश्चात् प्रसाद-तत्त्व-समुदाय कौलोंकी परिवेशन करके चक्रानुष्ठानके विधानानुसार पान और भोजन करें। यह मैंने तुमको शुभ-पूर्णाभिषेक बताया है। इससे ब्रह्मज्ञान और शिवत्व प्राप्त होता है।



नवरात्रि, सप्तरात्रि, पञ्चरात्रि, त्रिरात्रि अथवा एकरात्रि पूर्णाभिषेक करना चाहिए। कुलेश्वरि! इस

संस्कारमें पाँच कल्प हैं। यदि नवरात्रिका अभिषेक करना हो तो सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करनी चाहिए। प्रिये! सप्तरात्रिके अभिषेकमें नवनाभमण्डल, पञ्चरात्रि अभिषेकमें पञ्चाश्रमण्डल, त्रिरात्रि और एकरात्रिके अभिषेकमें अष्टदलपद्मकी रचना करनी चाहिए। साधकोंको उचित है कि वे सर्वतोभद्रमण्डल और नभमण्डलपर ९ घट तथा पञ्चाश्रमण्डलपर ५ घट स्थापन करें। अष्टदलपद्ममें केवल एक घट स्थापना करें। इस पद्मके केशरादि, अंग-देवता और आवरण-देवताओंकी पूजा करनी पड़ती है। जो पूर्णाभिषेकसे अभिषिक्त कौल हैं, जो निर्मलहृदय हैं, उनका दर्शन, स्पर्शन या घ्राण-द्वारा ही द्रव्यशुद्धि हो जाया करती है।





८



साधक–साधिका



तान्त्रिक साधक और साधिकाके लक्षणोंका भी तन्त्रोंमें विस्तृत वर्णन है। निरुक्त तन्त्रके ग्यारहवें पटलके मतसे—

आत्मनो ज्ञानमात्रेण तत्त्वज्ञानं भवेत् प्रिये।
तत्त्वज्ञानी भवेद् योगी स योगी त्रिविधः स्मृतः॥

निरालम्बश्च सालम्बो भक्तश्च परमेश्वरि।
भक्तोऽपि वीरभावेन साधयेत् कुलसाधनम्॥

शक्तिमात्रं यजेद् योगी भक्तो योगपरायणः।
अभिषेकेन देवेशि भैरवो जायते भुवि॥

अवधूतो भवेद्वीरो दिव्यश्च कुलसुन्दरि।
श्मशानागमनिष्ठश्च कुलयोषित्परायणः॥

कुलशास्त्रार्थसंवक्ता बलिदानरतः सदा।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निर्लोभो निर्भयः शुचिः॥

गुरुदेवरतः शान्तो घृणालज्जाविवर्जितः।
रक्तचन्दनलिप्तांगो रक्तकौपीनभूषणः॥

उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः।
कुलाचाररतो वीरः पंडितः कुलवर्त्मना॥

कुलसंकेतसंवेत्ता कुलशास्त्रविशारदः।
महाबलो महाबुद्धिः महासाहसिकः शुचिः॥

नित्यकर्मणि निष्ठातो दम्भहिंसाविवर्जितः।
परा निन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा॥

वीरमासनमासीनः पितृभूमिगतः शुचिः।
सर्वदानन्दहृदयः कुमारीपूजने रतः॥

एवं यदि भवेद्वीरस्तदेव हीनजां यजेत्।
दिव्योऽपि वीरभावेन साधयेत् कुलसाधनम्॥

कुलश्च सर्वजातीनां पूजनीयं कुलार्चने।

श्मशाने निर्जने रम्ये त्रिगन्ते शून्यमण्डले॥
ग्रामे पातालके वापि साधयेत् कुलसाधनम्॥

प्रिये! आत्माके स्वरूपका ज्ञान होते ही तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञानी ही योगी हो सकते हैं। वे योगी तीन प्रकारके होते हैं— निरालम्ब, सालम्ब और भक्त। भक्तको भी वीरभावसे कुलसाधन करना चाहिए। योगपरायण भक्त योगीको शक्तिमात्रकी पूजा करना उचित है। देवेशि! अभिषेकके द्वारा इस संसारमें भैरव तथा दिव्य और वीराचारी अवधूत हुआ करता है। जो श्मशानागमनमें निष्ठावान कुलस्त्रीपरायण हो और कुलशास्त्रार्थ भली भाँति कर सकता हो, नित्य बलिदानमें रत, द्वन्द्वहीन,



अहंकारहीन, निर्लोभ, निर्भय, शुद्ध, गुरु और देवतामें अनुरक्त, शान्त, घृणालज्जारहित, जिसके अंगोंपर रक्तचन्दन लिप्त हो, रक्तवर्णकी कौपीन धारण करनेवाला, उदारचित्त, सब समय वैष्णवाचारमें तत्पर, कुलाचाररत, वीराचारी, कुलमार्गमें पण्डित, कुलसंकेतका वेत्ता, कुलशास्त्रमें विशारद, महाधनवान, बुद्धिमान्, अति साहसी, शुद्धाचारी, नित्यकर्मनिष्ठ, दम्भ और हिंसारहित, परनिन्दासहिष्णु, सर्वदा परोपकारमें रत, वीरासनमें समासीन, पितृभूमिगत, सर्वदा ही आनन्दित और कुमारी पूजनमें रत, ऐसा होनेपर वीर तान्त्रिक साधनमें हीनजा यज्ञ करें। दिव्य और वीर भावसे कुलसाधन करें। कुलपूजामें सभी जातिकी कुलस्त्री पूजनीय हैं। श्मशानमें, निर्जन या रमणीय स्थानमें, त्रिमात्रपथ और शून्य मण्डलमें, ग्राम या सुरंगके भीतर कुलपूजा करनी चाहिए।

साधिकाके लक्षण

निर्लोभा कामनाहीना निर्लज्जा दम्भवर्जिता।
शिवसमागता साध्वी स्वेच्छया विपरीतया॥

चतुर्वर्णोद्भवा रम्भा प्रशस्ता कुलपूजने।
चतुर्वर्णोद्भवानां च पुरश्चर्या विधीयते॥

वर्णसंकरतो जाता हीनजा परिकीर्त्तिता।
लज्जालांछितभाला या सा साक्षाद् भुवनेश्वरी॥

नानाजात्युद्भवानां च सा दीक्षा कुलपूजने।
ब्राह्मणो हीनजां देवीं मनसा वा प्रपूजयेत्॥

अज्ञात्वा कौलिकीं देवी पशुवत् परिपूजयेत्।
पशुवत् पूजयेद्वीरो दीक्षितां वाप्यदीक्षिताम्॥

शक्तिमात्रं यजेद्वीरः प्राप्तयोगमनाः स्मरेत्।
हीनजाते तु संयुक्ता दीक्षिताश्चैव सर्वदा॥

शांकरी शक्तिका वापि वैष्णवी वाप्यवैष्णवी।
सर्वदा साधने योज्या साधकानां कुलार्चने॥

जिस स्त्रीको लोभ नहीं, कामना नहीं, लज्जा नहीं, दम्भ नहीं, जिस साध्वीने शिव-संग किया है, जो स्त्री अपनी इच्छासे विपरीत रमण करती है, ऐसी चारों ही वर्णोंकी स्त्रियाँ कुलपूजाके लिये प्रशस्त हैं। चारों वर्णोंकी कुलस्त्रियोंके लिये पुरश्चरणका विधान है। वर्णसंकरसे उत्पन्न नारी हीनजा नामसे प्रसिद्ध है। जिसके मुखमण्डलपर लज्जाकी आभा हो, वह साक्षात् भुवनेश्वरी है। इस प्रकारकी नाना जातिकी स्त्रियोंको कुलपूजामें दीक्षित किया जा सकता है। ब्राह्मण तो हीनजातीया देवीकी मन ही मन पूजा करे। कौलिकी देवी ज्ञात न होनेपर उसकी पशुवत् अर्चना करे। वीराचारी भी दीक्षिता या अदीक्षिता स्त्रीकी पशुवत् पूजा करे अथवा प्राप्तयोगमना होकर शक्तिमात्रका स्मरण करे। हीनजा मात्र ही सर्वदा दीक्षिता हैं। शैवा या शाक्तरमणी, वैष्णवी अथवा अवैष्णवी साधिकाओंको कुलसाधनमें योग्य समझना चाहिए।



तान्त्रिक उपासक मात्रको ही संकेत जानना विशेष आवश्यक है नहीं तो कुलपूजामें उनका कुछ

भी अधिकार नहीं होता अथवा चक्रके मध्य वह स्थान पानेके योग्य नहीं होता। निरुत्तरतन्त्रमें लिखा है-

क्रमसंकेतकं चैव पूजासंकेतमेव च।
मन्त्रसंकेतकं चैव यंत्रसंकेतस्तथा।।
लिखनं मन्त्रयन्त्राणां संकेतं गुरुमार्गतः।
संकेतज्ञं विना वीरं यदि चक्रे नियोजयेत्।।
निष्फलं पूजनं देवि दुःखं तस्य पदे पदे।
संकेतहीनो यो वीरो नाभिषेकी गुरुक्तोक्रमात।।
कुलभ्रष्टः स पापिष्ठस्तं त्यजेद्वीरचक्रकै।।

क्रमसंकेत, पूजासंकेत, मन्त्रसंकेत, यन्त्रसंकेत, गुरुसे मन्त्र और यन्त्र लिखनेका संकेत, इन संकेतोंको जिसने नहीं जाना है उसको चक्रमें नियुक्त करनेसे पूजा निष्फल होती है और पद पदमें उसको दुःख हुआ करता है। जो वीर संकेत नहीं जानता अथवा जो गुरुके क्रमानुसार अभिषिक्त नहीं है, वह कुलभ्रष्ट और पापिष्ठ है, उसका वीरचक्रमें परित्याग करना चाहिए।





६



तान्त्रिक-संकेत



तन्त्र-शास्त्रमें कुछ पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग हुआ जिनका अर्थ जाने बिना उन्हें किसी भी कोशके सहारे नहीं समझा जा सकता। अतः इन तान्त्रिक संकेतोंका ज्ञान प्रत्येक तन्त्र-विज्ञानके अध्येताको होना ही चाहिए।

क्रमसंकेत

खपुष्प, स्वयंभूपुष्प, कुण्डोद्भव, गोलोद्भव, वज्रपुष्प, उल्लास, प्रौढ इत्यादि।

तन्त्रमें उक्त तान्त्रिक शब्दोंके अर्थका निर्णय किया गया है। बहुतसे सांकेतिक शब्द ऐसे भी हैं जिनका अर्थ अभिषिक्त गुरुके अतिरिक्त और कोई नहीं बता सकता।

स्वयम्भू कुसुम तो प्रथम ऋतुमतीका रज है यथा—

हरसम्पर्कहीना या लतायाः काममन्दिरे।
जातं कुसुममादौ यन्महादेव्यै निवेदयेत्।।

स्वयम्भूकुसुमं देवि रक्तचंदनसंज्ञितम्।
तथा त्रिशूलपुष्पं च वज्रपुष्पं वरानने।।

अनुकल्पं लोहिताक्षचंदनं हरवल्लभम्।।

(मुण्डमाला-तन्त्र पटल 2)

(हर अर्थात् पुरुषके संपर्कके बिना लता अर्थात् स्त्रीकी योनिसे जो कुसुम अर्थात् रज निकलता है, उसीको स्वयम्भू कुसुम या रक्तचन्दन कहा जाता है। इसके अभावमें महादेवीको त्रिशूलपुष्प और वज्रपुष्प (चाण्डालिनका रज) चढ़ाना चाहिए। इसका अनुकल्प शिव-प्रिय लोहिताक्ष चन्दन है।)

कुण्डोद्भव का अर्थ है सधवा स्त्रीका रज। यंथा—

जीवद्भर्तृकनारीणां पञ्चमं कारयेत् प्रिये।
तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तत्कुण्डोद्भवमुच्यते।।

(समयाचारतन्त्र द्वितीय पटल)

गोलोद्भव अर्थात् विधवा स्त्रीका रज। यथा-

मृतभर्तृकनारीणां पंचमं चैव कारयेत्।
तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तत् गोलोद्भवमुच्यते।।

कुलार्णवके मतसे--

तत्त्वत्रयं स्यादारंभः कथिते कुलनायिके।
कथितस्तरुणोल्लासे ह्यरुणं मुखमंबिके।।

यौवनं मनसः सम्यगुल्लासः कथितः प्रिये।
स्खलनं दृङ्मनोवाचां प्रौढ इत्यभिधीयते।।



(तत्त्व-त्रयको आरम्भ, अरुण मुखको तरुण उल्लास, यौवनको मनका महोल्लास, दृष्टि, मन और वचनके स्खलनको प्रौढ कहते हैं।)

पूजा-संकेत

तन्त्रसारमें इस प्रकार उद्धृत हैं-

द्रव्याणां यावती संख्या पात्राणां द्रव्यसंहतिः।
हाटकं राजतं ताम्रं मारकतमृतादिना।।

उपचारविधाने तद् द्रव्यमाहुर्मनीषिणः।
आसने पंचपुष्पाणि स्वागते षट्चतुःपलम्।।

जलं श्यामाकदूर्वा च विष्णुक्रान्ताभिरीरितम्।
पाद्ये चार्घ्ये जलं तावत् गन्धपुष्पाक्षतं जवा।।

दूर्वास्तिलाश्च चत्वारः कुशाग्रः श्वेतसर्षपाः।
जातीफललवंगाश्च कंकोलाश्चैव षट्पलम्।।

प्रोक्तमाचमनं कांस्ये मधुपर्कः घृतं मधु।
दध्ना सह पलैकन्तु शुद्धं वारि तथा च मे।।

परिमार्गन्तु पंचाशत् पलं स्नानार्थसंभवः।
निर्मलेनोदकेनाथ सर्वत्र परिपूर्णता।।

मलिनं गर्हितं सर्वं त्यजेत् पूजाविधौ हरेः।
वितस्तिमात्रादधिकं वासो युग्मन्तु नूतनम्।।

स्वर्णाद्याभरणान्येवं मुक्तारत्नयुतानि च।
चन्दनागुरुकर्पूरपंकं गन्धफलावधि।।

नानाविधानि पुष्पाणि पंचाशदधिकानि च।
कांस्यादि निर्मिते पात्रे धूपो गुग्गुलुकर्षभाक्।।

सप्तवर्त्यासु संयुक्तो दीपस्याच्चतुरंगुलः।
यावद् भक्ष्यं भवेत् पुंसस्तावद्दद्याज्जनार्दने।।

नैवेद्यं विविधं वस्तु भक्ष्यादिकचतुर्विधम्।
कर्पूरादियुता वर्त्ति सा च कार्पासनिर्मिता।।

सप्तवर्त्यासु संयुक्तो दीपस्याच्चतुरंगुलः।
शिलापिष्टं चन्दनायां सप्तधा वर्त्तयेन्नरः।।

कार्यं ताम्रादिपात्रे तत् प्रीतये हरिमेधसः।
दूर्वाक्षतप्रमाणं च विज्ञेयन्तु शताधिकम्।।

उत्तमोऽयं विधिः प्रोक्ते विभवे मति सर्वदा।
एषामभावे सर्वेषां यथाशक्त्या तु पूजयेत्।।

अनुकल्पं विवर्जेच्च द्रव्याणां विभवे सति।।



द्रव्यकी जितनी संख्या है, पात्रकी भी उतनी ही संख्या समझनी चाहिए। उपचार-द्रव्य कहनेसे सुवर्ण, रजत, ताम्र और कांस्य इन चारका बोध होता है। पञ्चविध पुष्पसे आसन, षट्पुष्पसे स्वागत, चार पल जलसे पाद्य, श्यामाक, विष्णुक्रान्ता, अपराजिता, गन्धपुष्प, आतपतण्डुल, दूर्वा, तिल, कुशाग्र, श्वेतसर्षप, जायफल, लवंग और कंकोल, इनका अर्घ्य, षट्पल जलमें आचमन, कांस्यपात्रमें घृत, मधु और दधिसे मधुपर्क, एक पल विशुद्ध जलसे आचमन ५० पल विशुद्ध जलसे स्नान, वितस्तिमात्रासे अधिक दो नये कपड़ोंसे वसन, मुक्ता और रत्नादियुक्त स्वर्णादि-द्वारा आभरण, चंदन, अगुरु और कर्पूरसे गन्ध, ५० प्रकारसे अधिक फलोंसे पुष्प, कास्यादिपात्रसे धूना और गुग्गुलुसे धूप तथा सप्तवर्त्तीयुक्त दीप- द्वारा धूप बनती है। जितने द्रव्यके भक्षण करनेसे एक पुरुषका पेट भरता है, उतनेसे विष्णुका नैवेद्य बनता है। (इस नैवेद्यमें नाना प्रकारके पदार्थ मिलाए जाते हैं, खाद्य वस्तु चारों प्रकारकी (भक्ष्य, भोज्य,लह्य और पेय) कम न होनी चाहिए)। कार्पासादि सूत्रके द्वारा ४ अंगुल परिमित ७ वर्त्ति बनाकर उसमें कपूर संयुक्त करके जला देनेसे दीप और ७ बार प्रदक्षिणा करके प्रणाम करनेसे वंदना समझनी चाहिए। (विष्णुप्रीतिके लिये ताम्रादि पात्रमें यह कार्य करना चाहिए।)

दूर्वाक्षत कहनेसे एक सौसे अधिक दूर्वा और अक्षत लेना चाहिए। धनशाली व्यक्तिके लिये यही उत्तम विधि है। इस विधिके अनुसार जो पूजा करता है, वह समस्त भोगोंको भोगकर अन्तमें विष्णुलोकको गमन करता है। विभवहीन व्यक्ति यथाशक्ति उपचार-द्वारा पूजा कर सकता है। यह अनुकल्प धनवानोंके लिये नहीं है। धनवान् व्यक्तिके ऐसा करनेपर सब निष्फल होता है।

मन्त्र-संकेत

मन्त्र बनानेकी विशिष्ट रीति है। प्रत्येक महाविद्या अलग-अलग बीजमन्त्र है। मन्त्र-संकेत अर्थात् बीज! जैसे भुवनेश्वरी बीज मन्त्र है—

नकुलीशोऽग्निमारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान्।।

[नकुलीश शब्द से 'ह्', अग्नि शब्दसे 'र', वामनेत्र शब्दसे 'ई' और अर्द्धचन्द्रसे 'ँ'। इन सबको मिलाकर ''ह्रीँ'' मन्त्रका उद्धार हुआ।]

इसी प्रकार कालीबीजके लिये—

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम्।।

[वर्गाद्य शब्दसे 'क्', वह्नि शब्दसे 'र', रति शब्दसे 'ई' और बिन्दु शब्दसे 'ं'—इनसे ''क्रीं'' मन्त्रका उद्धार हुआ।]

इस सांकेतिक पदसमूहको मन्त्र-संकेत कहते हैं।

इस प्रकारसे किस प्रकारका चक्र होनेसे उसको कौनसा मन्त्र कहते हैं, वह किस रीतिसे बनाया जाता है, इन सब संकेतोंको मन्त्र-संकेत कहते हैं। प्रत्येक तन्त्र साधकको मन्त्र-संकेत अवश्य जानना चाहिए।





१०



वीराचार–पूजा



वीराचार-पूजा

तन्त्रमें वीराचार पूजा एक प्रधान अंग है। कृकलास-दीपिकाके तृतीय पटलमें लिखा है—

आदौ दीपनि देवेशि वक्तव्या वीरपूजिते।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥

सर्वेषामेव देवानां दीपनीया प्रकीर्त्तिता।
अनायत्तं विना विद्या न सिद्ध्यति कदाचन॥

विना पूजां विना ध्यानं विनाचारं महेश्वरि।
साधको ज्ञानमात्रेण भवेन्मुक्तो महानघः॥

तत्कुले नैव दारिद्र्यं तद्गोत्रे नास्त्यपंडितः।
प्राणं देयात् धनं देयात् कुलं देयात् स्त्रियोऽपि च॥

एनां विद्यां महेशानि न दद्याद् यस्य कस्यचित्।
काली बीजत्रयं कूर्चयुगलं तदनन्तरम्॥

लज्जाबीजद्वयं देवि दक्षिणे कालिके तथा।
पुनस्तान्येव बीजानि वह्निकान्तावधिर्मनुः॥

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम्।
दक्षिणा कालिका प्रोक्ता देवता तन्त्रगोपिता॥

बीजशक्तिं च देवेशि कूर्चं लज्जां क्रमात् प्रिये।
अंगन्यासकरन्यासौ मायया परिकीर्त्तितौ॥

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं दिगम्बराम्।
चतुर्भुजां महादेवीं मुण्डमालाविभूषिताम्॥

सद्यः कृत्यशिरः खड्गवामोर्द्धाधः कराम्बुजाम्।
अभयं वरदश्चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्॥

महामेघप्रभां श्यामां करकंकालकान्विताम्।
कण्ठावशक्तमुक्तालीगलद्रुधिरचर्चिताम्॥

घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवरूप - महादेव - हृदयोपरिसंस्थिताम्॥

महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्।
एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन मद्यैर्मांसैश्च भक्तितः॥

रक्तपुष्पै रक्तपद्मै रक्ताम्बरसमन्वितैः।
संपूज्य यत्नतो मन्त्री परिवारान् समर्चयेत्॥



पीठपूजां ततो देवि आधारशक्तिपूर्वकम्।
प्रकृतिं कमठञ्चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च॥

सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा।
श्मशानं पारिजातञ्च तन्मूले मणिवेदिकाम्।।

तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत् साधकसत्तमः।
चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाँश्च नरमुण्डकान्।।

धर्माद्यधर्मादींश्चैव ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।
केशरेषु च पूर्वादिष्विच्छाज्ञानक्रिया तथा।।

कामिनी कामदा चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च।
श्रिया नन्दा महेशानि मध्ये चैव मनोन्मनी।।

कालींकपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम्।
विप्रचित्तां महेशानि वहिःषट्कोणकेष्वथः।।

उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां न्यसेत् पत्रत्रिकोणके।
मात्रां मुद्रां सितां चैव न्यसेच्चान्यतिकोणके।।

सर्वाः श्यामा असिकराः मुण्डमालाविभूषिताः।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः।।

दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्ववाहनभूषिताः।
एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन पूजयेदष्टपत्रके।।

ब्राह्मीं नारायणीं चैव तथा माहेश्वरीं प्रिये।
अपराजितां च कौमारीं वाराहीमर्चयेद् बुधः।।

नारसिंहीं प्रपूज्यैव ततो दक्षिणतो यजेत्।
महाकालं यजेद् देवि विपरीतरतान्तरे।।

दिगम्बरं मुक्तकेशं चण्डवेशं प्रयत्नतः।
एवं संपूज्य यत्नेन यजेन् मन्त्रमनन्यधीः।।

विना मद्यं विना मांसं यदि देवीं प्रपूजयेत्।
देवता-शापमाप्नोति मृतो नरकमश्नुते।।

वीराचार-पूजामें पहले दीपनी आवश्यक है जिसके जाननेसे मनुष्य जीवन्मुक्त होता है इसीलिये समस्त देवताओंके लिये दीपनी कही गई है। इस विद्याके बिना आयत्त हुए कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। साधक पूजा, ध्यान और आचारके बिना एकमात्र ज्ञान-द्वारा मुक्त होता है तथा जो मुक्त होता है उसके कुलमें कोई दरिद्र या मूर्ख नहीं रह जाता। प्राण, धन, कुल और तो क्या स्त्री भी दान की जा सकती है, किन्तु यह मन्त्र हर एकको नहीं देना चाहिए। कालीके बीजद्वय, उसके अनन्तर कूर्चबीजद्वय और लज्जाबीजद्वय, देवी दक्षिणकालिका, ये ही बीज होंगी। इसके ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक् और देवी दक्षिणकालिका हैं।



इसके बीज कूर्च और लज्जा शक्ति हैं, अंगन्यास और करन्यास मायाबीज- द्वारा करके देवीका ध्यान करना पड़ता है।

कराल-वंदना, घोरा, मुक्तकेशी, दिगम्बरी, चतुर्भुजा इत्यादि रूपमें कालीका ध्यान करके मद्य, मांस, रक्त पुष्प और रक्त पद्म-द्वारा रक्त वस्त्रान्वित करके भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

उसके पश्चात् परिवारपूजा, फिर पीठपूजा की जाती है। प्रकृति, कमठ, शेष, पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणिद्वीप, चिन्तामणिगृह, श्मशान, पारिजात, इनकी जड़में मणिवेदिका बनावें। उसमें साधकश्रेष्ठ मणिपीठ न्यस्त करें। चारों ओर मुनि, देवता, शिव, नरमुण्ड, धर्माधर्मादि को '**ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः**' इतना कहकर स्थापन न्यस्त करें।

पीछे साधक काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, इन सबको बहिः षट् कोणोंमें न्यस्त करें।

इसके अनन्तर ''सर्वाः श्यामा असिकरा'' इत्यादि मन्त्र-द्वारा ध्यान करके अष्टपत्रसे भक्तिपूर्वक पूजा करें।

तदुपरान्त साधक ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, अपराजिता, कौमारी और वाराही-की पूजा करें। पीछे नारसिंहीकी पूजा करके फिर यज्ञ करें। विपरीतरतान्तरमें महाकाल-यज्ञ करें। साधकको चाहिए कि अनन्यचित्त होकर चण्डवेश, मुक्तकेश और दिगम्बरकी यत्नपूर्वक पूजा करें। मद्य और मांसके व्यतीत यदि देवीकी पूजाकी जाय तो देवता का शाप मिलता है और पूजाकारी व्यक्ति अन्तमें नरकमें जाता है।

विना परस्त्रिया देवि जपेत् यदि तु साधकः।
शतकोटिजपेनैव तस्य सिद्धिर्न जायते॥

स्त्रियो गतिः स्त्रियो प्राणाः स्त्रियः सिद्धिनं संशयः।
नारीणां स्मरणे काली स्मारिता स्यान्न संशयः॥

कण्ठे कण्ठं मुखे वक्त्रं वक्षोजं चोरसि प्रिये।
तस्यै कुलरसं देवि पाययित्वा यथोचितम्॥

स्वयं पीत्वा जपेन्मन्त्रं सिद्धिर्भवति नान्यथा॥

साधक परस्त्रीके बिना यदि जप करें तो शत कोटि जप करनेपर भी उसको सिद्धि प्राप्त न होगी क्योंकि इसमें स्त्री ही एकमात्र गति है, स्त्री ही एकमात्र प्राण है, स्त्री ही एकमात्र सिद्धि है, इसमें तनिक भी संशय नहीं। नारीके स्मरणसे कालीका स्मरण करना होता है। कण्ठसे कण्ठ, मुखसे मुख, उरुस्थलसे वक्षोज, इस प्रकार उसको कुलरस पिलाकर और स्वयं पीकर यथोचित जप करें।

इस प्रकारसे जप करनेपर सिद्धि होती है, अन्यथा होनेपर सिद्धि नहीं होती।

अनधिकारा

इसमें अनधिकारी कौन है?



एतस्य च प्रयोगेन ग्लानिर्यस्य प्रजायते।
कालिकामन्त्रवर्गेषु नाधिकारी स उच्यते॥

ऊपर जो कहा गया है उसपर जिसको ग्लानि उपस्थित हो, वह वीराचार-पूजामें अनधिकारी है।

पुरश्चरण

लक्षमात्रजपेनैव पुरश्चरणमुच्यते।
क्षत्रियाणां द्विलक्षं स्याद् वैश्यानां च त्रिलक्षकम्।।
शूद्राणान्तु चतुर्लक्षं पुरश्चरणमुच्यते।
लक्षमात्रं जपेद्देवि हविष्याशी दिवा शुचिः।।
रात्रौ निशीथे तावच्च पीत्वा कुलरसं प्रिये।
कुलनारीगणोपेतो जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।।
एवमुक्तविधानेन दशांशं होममाचरेत्।
तद्दशांशं तर्पणं च तद्दशांशाभिषेचनम्।।
तद्दशांशं विप्रभोज्यं कीर्त्तितं परमेश्वरि।
पुष्पिणीमकरन्देन होमतर्पणमाचरेत्।।
एवं प्रयोगमात्रेण सिद्धो भवति नान्यथा।
वाक्सिद्धिं लभते देवि कवित्वं निर्मलं प्रिये।।
धनेनापि कुबेरः स्यात् विद्यया स्यात् बृहस्पतिः।
आकल्पो जीवनो भूत्वा चान्ते मुक्तिमवाप्नुयात्।।

लक्षमात्र जप ही इसका पुरश्चरण है, किन्तु क्षत्रियके लिये दो लाख, वैश्योंके लिये तीन लाख और शूद्रोंके लिये चार लाख जपका पुरश्चरण होता है। दिनमें शुचिपूर्वक हविष्याशी होकर निशीथरात्रमें कुलरस पीकर तथा कुलनारीयुक्त होकर अनन्यचित्तसे इस मंत्रका जप करें। इस प्रकार जपकार्य पूरा करके विधानानुसार दशांश होम, दशांश तर्पण और दशांश अभिषेक करें, तदुपरान्त दशांश ब्राह्मण-भोजन करावें। पुष्पिणी-मकरन्द-द्वारा होम तथा तर्पण करें। इस प्रकारसे प्रयोग किया जाय तो सिद्धि होती है, अन्यथा होनेपर नहीं। इससे वाक्सिद्धि तथा निर्मल कवित्वशक्ति प्राप्त होती है और वह अर्थमें कुबेरके समान, विद्यामें बृहस्पति-तुल्य और जीवन कल्पान्त-पर्यन्त स्थायी होता है। अन्तमें वह मुक्तिलाभ करता है।

प्रयोगारम्भकाले च सुरा दुग्धमयी भवेत्।
लोहितं वा भवेद्देवि मांसं पुष्पमयं भवेत्।।
सुरापात्रं भवेत् शून्यं मांसपात्रं विशेषतः।
कलाकलान्तरश्चैव पुष्पं पुष्पान्तरं भवेत्।।
नवनीतं मांसतुल्यं मांसं पुष्पं भवेत् प्रिये।
एवं ज्ञात्वा साधकेन्द्रो जायते च क्रमेण तु।।



इसके प्रयोगारम्भकालमें सुरा ही दुग्धतुल्य और मांस पुष्पस्वरूप है। सुरा और मांस पात्र पीछे

शून्य हो जायँगे उसमें शेष कुछ न बचेगा। इसमें नवनीत ही मांसतुल्य और मांस ही पुष्प हो जाता है। साधकश्रेष्ठको इस प्रकार जानकर ही कार्य करना उचित है।

सौवर्णं राजतं चैव तथा मौक्तिकमेव च।
विद्रुमं पद्मरागं च तथैव वरवर्णिनि॥

प्रोक्तं मालाचतुष्कं च समभागेन मालिकाम्।
ग्रथयेत् पट्टसूत्रेण पुष्पिणी गृहवर्त्तिनी॥

लोहितेन वरारोहे सर्पाकारां सुशोभनाम्।
स्नापयेत् पंचगव्येन मकरन्देन पार्वति॥

तारं माया कूर्चयुग्मं माले माले पदं तथा।
वह्निकान्तां समुच्चार्य शतं जप्त्वाभिमन्त्रयेत्॥

स्नपयेत् पीठमध्ये तु शून्यागारे वरानने।
ततस्तां मालिकां देवि गृहीत्वा यत्नतः सुधीः॥

ज्ञात्वा सिद्धिस्तु निकटे महोत्सवमथाचरेत्।
षोडशाब्दां सुयुवतीं समानीय प्रयत्नतः॥

तामुद्वर्त्य स्वयं गन्धैः स्नापयेत् शुद्धवारिणा।
दिव्यालंकारशोभाभिर्दिव्यपुष्पैः सुगन्धिभिः॥

पूजयित्वा च मिष्टान्नैर्भोजयेत्तां वराननाम्।
आसवं पाययेत् यत्नान् निश्चयं तन्मयं पिबेत्॥

ततो मन्त्री रमयेत्तां रतिमिच्छति सा यदा।
तस्या हस्ते ततो मालां दत्वा तां याचयेद्बुधः॥

नीत्वा मालां तया दत्तां ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः।
तदा जपेदर्द्धरात्रौ साक्षात् भवति नान्यथा॥

सुवर्ण, रौप्य (चाँदी), मौक्तिक, विद्रुम और पद्मराग इनकी माला पट्टसूत्रसे गूँथकर उससे गृहवर्त्तिनी पुष्पिणी स्त्रीको ग्रथित करें। फिर पञ्चगव्य और मकरन्द-द्वारा स्नान करावें। इसके पश्चात् वह्निकान्ता (स्वाहा) उच्चारण करके अभिमन्त्रण करना और पीठके मध्य मालिकाको स्नान कराना चाहिए। इस प्रकारका आचरण करनेसे सिद्धिको निकटवर्त्ती समझें और महोत्सव करें। षोडशवर्षीया युवतीको यत्नपूर्वक लाकर शुद्ध जल और गन्ध-द्वारा स्वयं उसको स्नान करावें। फिर दिव्य अलंकार, सुगन्ध पुष्प और मिष्टान्नादि-द्वारा पूजा करके तन्मय होकर उसको आसव पिलावें और स्वयं भी पीवें। उस समय यदि वह षोडशी युवती रतिके लिये प्रार्थना करे तो उसके साथ रमण करें तथा उसके हाथमें माला देवें। पीछे उस मालाको उससे वापस लेकर ब्राह्मण-भोजन करावें। इसके पश्चात् आधी रातको जप करनेसे निश्चय ही इष्टका साक्षात् होगा, इसमें सन्देह नहीं।



तत्रापि प्रत्ययो नोचेत् कलामध्ये विशेद्बुधः।
पर्यंकस्य चतुःपार्श्वे पट्टसूत्रं मनोरमम्॥

बध्वा द्वाविंशतिं ग्रन्थिं रमां पुटितमूलकैः।
निविश्यैव स्वरक्षार्थं पाञ्चालीं सैन्धवीं तथा।।

वक्ष्यमाणक्रमेणैव वस्त्रोपरि निधापयेत्।
षोडशाब्दां परलतां गणिकां च विशेषतः।।

समानीय प्रयत्नेन दिव्यपुष्पैर्निवेदयेत्।
भोजयेन् मिष्टभोज्यानि क्षौमकं परिधापयेत्।।

लेपयेत् दिव्यगन्धेन भूषणैर्भूषयेत् स्वयम्।
रमयेत् परया भक्त्या साधकः सिद्धिहेतवे।।

जपस्यार्द्धजपेनैव सिद्धिर्भवति नान्यथा।
विना मद्यं महेशानि न सिध्यति कदाचन।।

तस्मादादौ प्रयत्नेन पीत्वा त्वां पाययेद्बुधः।।

पूर्वोक्त प्रकारसे यदि ज्ञानोत्पत्ति अर्थात् सिद्धि न हो तो इस प्रकारसे करनेपर सिद्धि होगी—

साधक कलाके बीच निवेशित हों, फिर पर्यंकके चारों ओर मनोहर पट्टसूत्रसे रमापुटित मूलक-द्वारा बाइस गाँठें बाँधकर अपनी रक्षाके लिये वक्ष्यमाणके नियमानुसार पांचाली और सैन्धवी वस्त्रके ऊपर स्थापित करें। फिर साधक यत्नके साथ षोडशी परलता या गणिकाको लाकर उसको दिव्य पुष्प देवें और मिष्ट भोजन खिलावें, रेशमी वस्त्र पहनावें तथा दिव्य गन्ध और भूषण-द्वारा विभूषित करें। साधक सिद्धिके लिये पराभक्तिके द्वारा उसके साथ रमण करें। इस प्रकार सब कार्य कर चुकनेके उपरान्त जपका अर्द्धभाग जपनेसे ही सिद्धि होती है। किन्तु इसमें मद्यके बिना कभी भी सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये पहले यत्नपूर्वक स्वयं मद्यपान करके और उसको पिलाकर पीछे जप करना चाहिए।

तत्रापि प्रत्ययो नोचेत् चरुहोमं प्रकल्पयेत्।
निशीथे निर्भयो देवि श्मशाने प्रान्तरे तथा।।

गन्धैः स्नानादिकं कृत्वा पादशौचादिपूर्वकम्।
घटमारोपयेत्तत्र सौवर्णं राजतं तथा।।

ताम्रं वा तन्महेशानि विभवानुक्रमेण तु।
कल्पयित्वा निशाभागे पूजयेत् परमेश्वरीम्।।

उपचारैर्यथाशक्तिर्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
देवीपूजां विधायैव पिष्टन्तु परिदापयेत्।।

चरौ निधाय यत्नेन चतुःपिष्टकवर्त्तुलम्।
ततश्चरुं पाचयेत्तु कुण्डमध्ये तु पूजयेत्।।



रक्तां घनां वलाकाञ्च नीलां कालीं कलावतीम्।
द्वारेषु पूजयेन्मन्त्री लोकपालान् प्रयत्नतः।।

ग्रहान् संपूजयेन्मन्त्री चतुष्कोणक्रमेण तु।
हविर्द्वारां हुनेन्मन्त्री यथाशक्त्या ततश्चरुम्।।

श्रावयेन् मूलमन्त्रेण मधुना सिद्धिहेतवे।
हुत्वा संच्छादयेन्मन्त्री ततो दक्षिणकालिकाम्।।

धूपदीपैश्च नैवेद्यै: प्रदक्षिणमथाचरेत्।
पिष्टवर्त्तुलसंख्यातं सुवर्णादि प्रजायते।।

एकेनैव प्रयोगेण यदि सिद्धिर्भवेत् प्रिये।
तथा होमो द्वितीयेन रौप्यं वापि सुरेश्वरि।।

तृतीयेन भवेत्ताम्रं लौहं तुर्येण च स्मृतम्।
एषामन्यतमां ज्ञात्वा साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।।

सिद्धायां कालिकायाञ्च नेन्द्रं दुर्लभमुच्यते।
गुरुमूलमिदं सर्वं तस्मादादौ समर्चयेत्।।

तस्य प्रसादमात्रेण सिद्धो भवति नान्यथा।।

पूर्वोक्त प्रकारसे यदि सिद्धि न हो तो साधकको चरुहोम करना चाहिए। साधक श्मशान या प्रान्तरमें जाकर निशीथ समयमें वहाँ स्नान करें। अनन्तर पादशौचादिपूर्वक विभवानुसार सुवर्ण, रजत या ताम्रमय घट स्थापन करके पूजा करें। देवी-पूजाके उपचारके विषयमें कृपणता नहीं करनी चाहिए। यथाशक्ति देवी-पूजा करके पिष्टक बनावें। वर्त्तुलाकर चतुरुपिष्टकको यत्नपूर्वक चरुमें रखकर चरुपाक करें और कुण्डके मध्य पूजा करें। साधकको उचित है कि रक्ता, घना, वलाका, नीला, काली, कलावती और द्वारसमूहके लोकपालोंकी पूजा करें। पीछे चतुष्कोणके क्रमसे ग्रहोंकी पूजा तथा यथाशक्ति हविर्द्वारा प्रक्षेप करें। मूलमन्त्र और मधुके द्वारा होम तथा दीप, धूप, नैवेद्य आदिके द्वारा पूजा करके प्रदक्षिणा करनी चाहिए। पिष्ट वर्त्तुल संख्याके अनुसार सुवर्णादि उत्पन्न होते हैं। एक प्रयोगसे यदि सिद्धि हो तो होम करना पड़ेगा। द्वितीय-द्वारा रौप्य, तृतीयसे ताम्र और चतुर्थसे लौह होता है। इनमें अन्यतम होनेपर उत्तम सिद्धि साधनी चाहिए।

इस प्रकारसे कालिका सिद्ध होनेपर इन्द्रत्व भी दुर्लभ नहीं है।

ये सभी सिद्धि गुरुमूलक हैं, गुरुके बिना किसी प्रकार भी सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये सर्वप्रथम गुरुकी अर्चना करें। साधकपर गुरुके प्रसन्न होते ही सिद्धि होती है अन्यथा नहीं।

तत्रापि प्रत्ययो नो चेत् प्रदक्षिणमथाचरेत्।
अमावास्यादिने चैव निशीथे गतसाध्वसः।।

श्मशाने प्रान्तरे वापि गत्वा देवीं प्रपूजयेत्।
मद्यमांसोपचारैश्च धूपदीपैर्मनोरमैः।।



नैवेद्यैः सामिषान्नैश्च तथैव वरवर्णिनि।
द्रव्यैर्लोहितवस्त्रेण स्वर्णाभरणभूषितैः।।

जपेन्मूलं क्रोधरुद्धं प्रदक्षिणमथाचरेत्।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमावनिशं गिरिसम्भवे।।

निशायामुत्तमं यावन्निशाशेषं महेश्वरि।
यदि भीतिर्भवेत्तस्य तदा दृढतरो भवेत्।।

दन्तादन्तिविधायैव मनसैवमनुस्मरेत्।
अवश्यं श्रूयते शब्दः शिखा च दृश्यते स्थले।।

यदि तत्र भवेद् देवि शब्दो गुणगुणो भवेत्।
ततः परलतासक्तः पुनः कार्यं तथैव च।।

तदा भवति चार्वंगि दैववाणी सुशोभना।
सिद्धिमावश्यकं ज्ञात्वा महोत्सवमथाचरेत्।।

इससे भी यदि सिद्धि न हो तो प्रदक्षिण आचरण करना चाहिए। साधकको चाहिए कि वे अमावास्याके दिन निशीथ रात्रिको भयरहित होकर श्मशान अथवा प्रान्तरमें जाकर वहाँ देवीकी मद्य, मांस, धूप, दीप और मनोरम उपचार, समिषान्न, रक्तवस्त्र और स्वर्णाभरणादि-द्वारा पूजा करें। फिर मूलमन्त्रका जप और दण्डवत् प्रदक्षिण करें।

जबतक निशा शेष न हो तबतक ही जपादिका करना प्रशस्त है। यदि साधकको उस समय भय उपस्थित हो तो उनको अत्यन्त दृढ और दन्तादन्ति होकर मन ही मन स्मरण करना चाहिए। उस समय अवश्य ही शब्द सुनाई पड़ेगा और उस स्थानपर शिखा (लपट, लौ) दिखाई देगी। यदि वहाँ गुन्गुन् शब्द हो तो परलतासे आसक्त होकर पुनः कार्य आरम्भ करें और उसके अनन्तर यदि सुशोभना दैववाणी हो तो सिद्धि उपस्थित जानकर महोत्सव करें।

तथापि प्रत्ययो नोचेत् भगयागमथाचरेत्।
कामिनीं युवतीं यत्नात् पुष्पिताञ्च विशेषतः।।

तामानीय प्रयत्नेन स्वं च भूषणमाचरेत्।
तामुद्वर्त्य स्वयं गन्धैर्भूषणैर्वसनैस्तथा।।

मिष्टान्नैर्भोजयित्वा च भक्त्या परमया शिवे।
तां विवस्त्रां विधायैव स्थापयेत् ऊर्ध्वतल्पगे।।

ततः पूजां विधायैव नानासंभारसंयुतैः।
तत्रैव रमयेद् यन्त्रं रक्तचन्दनयावकैः।।

भगनामां भगप्राणां भगदेहां भगस्तनीम्।
पूजयेदष्टपत्रेषु मध्ये देवीं प्रपूजयेत्।।

रक्तगन्धै रक्तमाल्यै रक्तवस्त्रैर्मनोरमैः।
पूजयेद् भक्तितो मन्त्री देवीदर्शनकाम्यया।।



एतस्मिन् समये देवि रतिमिच्छति सा यदा।
लतान्तु रमयेद्देवि यावद्धोमं करोति न।।

पुष्पिणीमकरन्देन ततो होमं समाचरेत्।
ॐ नमस्ते भगमालायै भगरूपधरे शुभे।।
भगरूपे महाभागे भोगमोक्षैकदायिनि।
भगवत्याः प्रसादेन मम सिद्धिर्भविष्यति।।
अवश्यं कथयेत् कान्ता नात्र कार्या विचारणा।
इति ते कथितं देवि गुह्याद्गुह्यतरं परम्।।
प्रकाशात् कार्यहानिः स्यात् तस्माद् यत्नेन गोपयेत्।।

इससे भी सिद्धि न हो तो साधकको भगयाग करना चाहिए। साधकको उचित है कि एक युवती पुष्पिणी कामिनीको यत्नपूर्वक लाकर स्वयं उसको गन्धादि-द्वारा भूषित करें। उसको मिष्टान्न भोजन कराकर तथा विवस्त्रा करके ऊर्ध्वतल्प-पर स्थापन करें। पीछे रक्तचन्दन और अलक्तक-द्वारा यन्त्र बनावें और नाना उपकरणोंसे पूजा करें। भगयागमें भग ही नाम है, भग ही प्राण है, भग ही देह है और भग ही स्तन हैं। अष्ट पत्रके मध्य देवीकी पूजा करें। पूजा करते समय रक्तगन्ध, रक्तवस्त्र, रक्तमाल्य आदि प्रदान करें। देवीके दर्शनकी कामना करके ही इस प्रकार पूजा करें। उस समय यदि वह रतिके लिये प्रार्थना करे तो जबतक होम न हो जाय तबतक लतामें रत रहना चाहिए। पीछे पुष्पिणी-मकरन्द-द्वारा होम करें। 'ॐ भगमालायै नमः', तुम भगरूपधारिणी हो, तुम महाभागा हो, तुम्हीं एकमात्र मोक्षदायिनी हो,' इत्यादि कहकर प्रणाम करें। तुम्हारे अनुग्रहसे मुझे सिद्धि प्राप्त हो इस प्रकारका आचरण करनेसे सिद्धि होती है। यह अत्यन्त गुह्यतम् है। कोई इसको प्रकट कर दे तो कार्यमें हानि होती है। इसलिये इसको सब भाँति यत्नसे गुप्त रखना चाहिए।

अत्राशक्तो महेशानि कलावतीं समाचरेत्।
कुंकुमं चन्दनं चन्द्रं एकीकृत्य तु पेषयेत्।।
जपेत् सहस्रं देवेशि देवीञ्चैव प्रपूजयेत्।
कामिनीं पूजयेद् भक्त्या तस्या मूर्धनि कारयेत्।।
तिलकं वश्यमात्रेण स्वयं शिरसि धारयेत्।
रमा वाणीर्भवानी च सर्वसम्मोहिनी तथा।।
ङेयुता परमेशानि वह्निकान्तावधिर्मनुः।
अनेन शतजपेन तिलकं मूर्ध्नि कारयेत्।।
कलां च पूजयेद्यत्नान् नानाभरणभूषिताम्।
पाययेत् सा स्वयं यत्नात् स्वयं पीत्वा च यत्नतः।।
जायते दैववाणी च ततो देवि न संशयः।
एवं भूत्वा वरारोहे ततो यत्नं समाचरेत्।।
अथवा देवदेवेशि नग्नीभूय विचक्षणः।
नग्नां परलतां पश्यन् जपेत् मन्त्रमनन्यधीः।।



यामोत्तरं समारभ्य यामद्वयमतन्द्रितः।
मद्यमांसोपचारैश्च पूजयित्वेष्टदेवताम्।।
रक्षार्थं खड्गपाणिस्तु स्वपार्श्वेऽपि नियोजयेत्।
गणनाथं क्षेत्रपालं बटुकं योगिनीं तथा।।
बलिभिः सामिषान्नैश्च यजेत् परमसुन्दरि।
घृतप्रदीपं प्रज्वाल्य ततो देवीं समर्चयेत्।।
ततः सहस्रं जपतो देवतादर्शनं भवेत्।
अथवा नियमी भूत्वा भूतलिप्यादिसंपुटम्।।
जपेत् प्रतिदिनं देवि सहस्रं सिद्धिहेतवे।।

यदि पूर्वोक्त कार्यमें साधक अशक्त हों तो उन्हें कलावती-आचरण करना चाहिए। कुंकुम, चन्दन और चन्द्र (कर्पूर)-को एकत्र करके पेषित करें तथा सहस्र जप करके देवीकी पूजा करें। अनन्तर कामिनी-पूजा करें। ङेयुता इत्यादि मन्त्र सौ बार जपकर उसके मस्तकपर तिलक लगा दें और स्वयं भी तिलक लगावें। यत्नपूर्वक नाना आभरणसे भूषित कलाकी पूजा करें। पीछे यत्नपूर्वक मद्य पीकर उसको भी पिलावें और उस समय दैववाणी होनेपर और भी यत्नके साथ जपादि आचरण करें। अथवा उस समय साधक स्वयं निर्वस्त्र होकर तथा उसको निर्वस्त्र करके, उसे देखते हुए अनन्यचित्तसे जप करें।

यामोत्तरसे प्रारम्भ करके यामद्वय अतन्द्रित भावसे मद्य और मांस आदि उपचार-द्वारा इष्टदेवीकी पूजा करें। आत्मरक्षाके लिये खड्गधारी होना तथा पार्श्वमें खड्ग रखना आवश्यक है।

तत्पश्चात् गणनाथ, क्षेत्रपाल, बटुक और योगिनी, इनका सामिषान्न-द्वारा यज्ञ करें तथा घृतप्रदीप प्रज्वलित करके देवीकी अर्चना करें। इस प्रकारसे सहस्र जप करनेपर देवताके दर्शन होते हैं। अथवा नियमी होकर भूतलिप्यादि-संपुट प्रतिदिन एक सहस्र जप करें। इससे भी सिद्धि होती है।

दिवारात्रौ संस्मरणं हविष्याशनमेव च।
कुमारीं पूजयेद् यत्नात् नानाभरणसंयुताम्।।
मासे पूर्णे वरारोहे निशीथे गतसाध्वसः।
महापूजां प्रकुर्वीत लतामण्डलमध्यगः।।
मद्यैर्मांसैश्च विविधैरन्यैश्च विविधैस्तथा।
संपूज्य विधिवद्भक्त्या सर्वदा तिमिरालये।।
सहस्रजपमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा।
साक्षादायाति सा देवी सत्यं सत्यं न संशयः।।
साक्षाद् याति वरारोहे भवेदिन्दुसमो नरः।
अञ्जनं पादुकासिद्धिः खड्गसिद्धिर्वरानने।।
अजरामरता देवी कामिनी-सिद्धिहेतवे।
तथा मधुमती सिद्धिर्जायते नात्र संशयः।।



देवचेटीशतशतं तस्य वश्या भवन्ति हि।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले स यत्र गन्तुमिच्छति।।
तत्रैव चेटिका सर्वा नयन्ति नात्र संशय:।
रम्भा वा घृताची वा यदि जप्यति साधक:।।
तदैव याति सा देवी नात्र कार्या विचारणा।
इच्छामृत्युर्भवेद्देवि किमन्यत् कथयामि ते।।

अथवा साधक हविष्याशी होकर दिवारात्र इष्टदेवीका स्मरण करें और नाना आभरणोंमें भूषित कुमारीकी पूजा करें। इस प्रकार एक मास करके, मासके पूर्ण दिनमें निशीथके समय निर्भयतासे लतामण्डलके मध्यगत होकर महापूजा करें। मद्य, मांस आदि विविध उपचारों-द्वारा विधिवत् पूजा करें। सहस्र जप करें, इससे निश्चय ही सिद्धि होगी। सिद्धि प्राप्त होनेके अनन्तर देवीका साक्षात् होगा। इस प्रकार पादुकासिद्धि, खड्गसिद्धि, मधुमती आदिकी सिद्धि निश्चयसे होगी। जिनको सिद्धि प्राप्त होती है सैकड़ों चेटिका देवता आदि उनके वशीभूत हो जाते हैं तथा स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें जहाँ जानेकी इच्छा हो, वहीं चेटिकाएँ उन्हें ले जाती हैं। साधक यदि रम्भा, घृताची आदिका जप करें तो वे स्वयं उपस्थित होंगी और उनकी इच्छामृत्यु होगी।

अथवा गणिकां गत्वा पूजयेद्भक्तिभावत:।
तया सह जपेन्मन्त्रं पिबेच्च निशिमासवम्।।
निवेद्य परया भक्त्या पाययेत्तां प्रयत्नत:।
एवं ज्ञात्वा विधानन्तु मासमेकं वरानने।।
प्रत्यहं होमयेद्विद्वान् नित्यं सद्विप्रभोजनम्।
मासपूर्णे साधकेन्द्रो निशीथे च लतायुत:।।
साक्षात् पूजाक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम्।
महातिमिरमध्यस्थो जपेन्मन्त्रमनन्यधी:।।
तत्क्षणाज्जायते सिद्धि: सत्यं देवि वदामि ते।।

अथवा साधक गणिकाके पास जाकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करें। उसके साथ सहस्र बार मन्त्र जपें और अत्यन्त उत्साहपूर्वक उसको मदिरा पिलाकर स्वयं भी पीवें। इस भाँति एक मासतक अनुष्ठान करें। प्रतिदिन होम और ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए। मासपूर्ण होनेपर साधक निशीथ रात्रिमें लतायुक्त होकर पूजाक्रम-द्वारा साक्षात् परमेश्वरीकी पूजा करें और महातिमिरमें अनन्यचित्तसे मन्त्र जपें। ऐसा करनेसे साक्षात् सिद्धि होगी।

अथवाऽपि वरारोहे प्रयोगविधिमाचरेत्।
नरमुण्डं समानीय मार्जारस्यापि पार्वति।।
गोमुण्डं सार्द्रमानीय भूमौ नि:क्षिप्य यत्नत:।
तत: पीठं समारोप्य देवीं ध्यात्वा तु साधक:।।



पूजयेदर्द्धरात्रादौ आसवादिसमन्वितः।
जपेत्तु परया भक्त्या सहस्रावधि साधकः।।
ततः साक्षात् भवेद्देवी नात्र कार्या विचारणा।।

अथवा साधकको चाहिए कि प्रयोग-विधिका अनुष्ठान करें। साधक नरमुण्ड, मार्जारमुण्ड और गोमुण्डको यत्नपूर्वक लाकर भूमिपर निःक्षेप करें। उसपर पीठ आरोपण करके देवीका ध्यान और अर्द्धरात्रिके समय पूजा करें और आसवादियुक्त होकर भक्तिके साथ सहस्र जप करें। इतनेसे ही देवी साक्षात् दर्शन देंगी और साधक भी सिद्धि लाभ करेंगे।

अथवा वनितां रम्यां गत्वा देवेशि यत्नतः।
पीत्वा तदधरं सम्यक् कर्पूरेण तु पूरयेत्।।
तद्योनौ कुंकुमञ्चैव तत्कर्णे क्षौद्रमेव च।
ततो भुक्त्वा तु तां कान्तां तन्मन्त्रं परमेश्वरि।।
तत् कुंकुमञ्च तत्क्षौद्रमेकीकृत्य प्रयत्नतः।
तदेव तिलकं कृत्वा निशीथे गतसाध्वसः।।
सहस्रन्तु जपेन् मन्त्री ततः साक्षात् भवेत्तदा।।

अथवा साधक रमने योग्य स्त्रीमें रत हो उसके अधरामृतका पानकर पीछे कपूरसे पूर्ण करें। योनिपर कुंकुम और कर्णमें मधु प्रदान करें। पीछे यत्नके साथ उन कुंकुम आदिको एकत्र कर उससे तिलक करें। तिलक लगाकर निशीथ रात्रिमें निर्भय हो सहस्र बार जष करें। ऐसा करनेसे देवी साक्षात् दर्शन देंगी।

अथवापि शरीरोत्थरुधिरेण वरानने।
यन्त्रं निर्माय यत्नेन तत्र देवीं समर्चयेत्।।
मद्यमांसोपचारैश्च अर्कपुष्पैर्वरानने।
सहस्रजपमात्रेण सिद्धो भवति नान्यथा।।

अथवा साधक अपने शरीरसे उत्थित रुधिरके द्वारा यन्त्र बनाकर मद्य और मांस तथा अर्कपुष्प-द्वारा देवीकी पूजा करें। फिर अनन्यचित्त होकर हज़ार जप करें इससे साधकको सिद्धि मिल जायगी।

अथवा परमेशानि गंगातीरे वसेत् सुधीः।
उपवासद्वयं कृत्वा कुर्यात् स्नानमतन्द्रितः।।
ततो देवीं समभ्यर्च्य धूपदीपैर्मनोरमैः।
हविष्यान्नैश्च नैवेद्यैः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः।।
भुक्त्वा पीत्वा स्त्रिया सार्द्धं निशीथे गतसाध्वसः।
जपेत् सहस्रं देवेशि ततः सिद्धिर्वरानने।।



अथवा साधक गंगाके किनारे जाकर दो उपवास करें, फिर अतन्द्रितभावसे स्नान करें तथा धूप, दीप, हविष्यान्न और नैवेद्य-द्वारा पूजा करके स्वयं हविष्यान्न भोजन करें।

भोजन और पान करके स्त्रीके साथ निशीथरात्रिमें निर्भय हो सहस्र जप करें। इससे साधकको सिद्धि होगी।

अथवा वटमूलस्थो दिग्वासा मुक्तकेशवान्।
लताभिर्वेष्टितो भूत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।।
ततः साक्षात् भवेद्देवी नात्र कार्या विचारणा।।

पूर्वोक्त उपायसे यदि सिद्धिलाभ न हो तो साधक नग्न और मुक्तकेश होकर वटवृक्षके तले लता-द्वारा वेष्टित होकर अनन्यचित्तसे मन्त्र जपें। इससे निश्चय ही देवीका साक्षात्कार होगा।

एतेनापि प्रयोगेन यदि साक्षान्न जायते।
ततो देवि! प्रवक्ष्यामि उपायं परमाद्भुतम्।।
एकेनैव प्रयोगेण यदि साक्षान्न जायते।
द्वितीयं वापि कुर्वीत तृतीयं वाथवा प्रिये।।
तृतीयेन न चेत् सिद्धिस्तत्रोपायं वदामि ते।
वस्त्रे शुक्ले तथा रक्ते पीते वा नीलवाससी।।
पुतलीं स्चयेद्देव्याः सर्वावयवसुन्दरीम्।
पूजयेत् क्रोधरूपेण रक्तवस्त्रैर्मनोहरैः।।
तत्र देवीं जपेन मन्त्रं समभ्यर्च्य सहस्रकम्।
रक्तचन्दनबीजेन तत्र कल्पितमालया।।
ततः शाल्मलिकाष्ठेन निम्बकाष्ठेन वा प्रिये।
वह्निं प्रज्वाल्य यत्नेन तत्र वह्निं प्रपूजयेत्।।
ततः पुत्तलिका-भाले लिखेन् मन्त्रं वरानने।
सिन्दूरपुत्तलीं देवि ततो वह्ना तु तापयेत्।।
ताडयेन् मूलमंत्रेण मूलमंत्रेण रक्षयेत्।
क्षालयेत् शुद्धदुग्धेन अथवा दधिवारिणा।।
ततो प्रजपेत् हुंकारं सहस्त्रं परमेश्वरि।
ततः साक्षाद् भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा।।

पहले जितने भी उपाय कहे गए हैं उनसे यदि देवीका साक्षात् न हो तो साधकोंके हितार्थ और भी एक परम अद्भुत उपाय बताया जाता है। यदि एक प्रयोगके द्वारा सिद्धि न हो तो द्वितीय और तृतीय उपाय जानना चाहिए।



पहले शुक्ल, रक्त, नील और पीत वस्त्रसे सम्पूर्ण अवयवसम्पन्न एक पुत्तलिका बनावें। मनोहर

रक्तवस्त्र-द्वारा क्रोधरूपसे उस मूर्त्तिकी पूजा करें। उसके पश्चात् यन्त्रमें रक्तचन्दन-लिखित बीजमन्त्र-द्वारा अभ्यर्चना करके सहस्र जप करें। तत्पश्चात् शाल्मली (सेमल) काष्ठ या निम्ब काष्ठके द्वारा अग्नि जलावें और पूजा करें। अनन्तर पुत्तलिकाके कपालपर मन्त्र लिखें और सिन्दूरकी पुत्तलिकाको अग्निमें तपावें। मूलमन्त्र-द्वारा ताडन और रक्षा करें। पीछे दुग्ध, दधि या जल-द्वारा धोएँ। पीछे सहस्त्र बार हुंकार मन्त्रका जप करें। इससे निश्चय ही देवीके साक्षात् दर्शन होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

अथवा ताडयेद् देवि नारसिंहेन मन्त्रत:
हविष्याशी दिवा भूत्वा ब्रह्मचारिसमो नर:।।

रात्रौ ताम्बूलपूरास्यो लतामंडलमध्यग:।
नारसिंहेन देवेशि पुटितन्तु मनुं जपेत्।।

ततो लक्षजपेनैव साक्षाद् भवति नान्यथा।
अवश्यं जायते साक्षान् ममैव वचनं यथा।।

अथवा नारसिंह मन्त्र-द्वारा देवीको ताडित करें। दिनमें हविष्याशी होकर ब्रह्मचारीके समान रहें। रात्रिको ताम्बूल चर्वण करके लतामण्डल मध्यवर्त्ती होकर नारसिंह मन्त्र पुटित करके जप करें। इस प्रकार एक लाख बार जप करनेसे देवी साक्षात् दर्शन देती हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

अथवाऽपि वरारोहे नौकालोहेन पार्वति।
शूलं निर्माय यत्नेन पटे देवीं तु कल्पयेत्।।

तां पूजयेत् प्रयत्नेन रक्तचन्दनपुष्पकै:।
पूजयित्वा प्रयत्नेन तस्यांगे पीठदेवताम्।।

आवाह्य विधिवद् भक्त्या जपेन्मंत्रमनन्यधी:।
शूलं संपूजयेद्यत्नात्तीक्ष्णं परमदुर्लभम्।।

ॐ महाशूलं नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यान्तकारिणे।
अस्त्रद्वयं समुच्चार्य तत: शूलेन वक्षसि।।

उद्यमे नैव सा काली आयाति च न संशय:।
अवश्यं जायते साक्षान् ममैव वचनं यथा।।

पूर्वोल्लिखित उपायसे यदि देवीका साक्षात् न हो तो नौका-लौह-द्वारा शूल बनावें और उसमें यत्नपूर्वक देवीकी कल्पना करें। रक्तचन्दन और रक्तपुष्प-द्वारा भक्तिके साथ उनकी और पीठदेवताओंकी पूजा करें। पीछे विधिपूर्वक अनन्यचित्त से मन्त्र जपें। अनन्तर शूलकी पूजा करें और ॐ महाशूल मन्त्रके द्वारा प्रणाम करें। इस प्रकारके प्रयोगसे काली निश्चय दर्शन देंगी।

अथवा कालिकाबीजं शतं संलिख्य यत्नत:।
पूर्वपत्रे कुंकुमेन मन्त्रं स्वर्णशलाकया।।

विलिख्य भुवि देवेशि तत्र कान्तां समानयेत्।
तद्गात्रे पूजयेद्देवीं नानाभरणसंयुताम्।।

निशीथे तु जपेन्मन्त्रमेकांते कांतया सह।



जपेन्मंत्रं सहस्रं तु ततः साक्षाद् भवेदध्रुवम्।।
इति ते कथितं देवि गुह्याद्गुह्यतरं परम्।
अप्रकाश्यमिदं देवि गोपयेन् मातृजारवत्।।

पूर्वकथित उपायसे साक्षात् न होनेपर कुंकुम और स्वर्णशलाकाके द्वारा सौ कालिकाबीज लिखें। लिखकर उसपर कान्ता बुलाकर बैठावें और उसके शरीरमें देवीकी पूजा करें। निर्जन स्थानमें निशीथ रात्रिको कान्ताके साथ अनन्यचित्त होकर हज़ार मन्त्र जप करें। ऐसा करनेसे निश्चय ही देवीका साक्षात् होगा। यह अतिशय गुह्यतम और अप्रकाश्य है यह मन्त्र मातृजारवत् गोपनीय है।

श्मशानकालिकायास्तु कलायामुपवेशनम्।
कलास्थाने महेशानि कुमारीयाग उच्यते।।

अष्टवर्षा तु या बाला द्वादशाधो महेश्वरि।
स्थापयेत्तुं चतुःपार्श्वे मिष्टभोजनभोजिता।।

पूजयेत् परया भक्त्या स्वं भुंजीत साधकः।
पाययेत् आसवं यत्नात् स्वयं चापि पिबेत्ततः।।

सकारं च मकार च लकारेण समन्वितम्।
जपेदष्टोत्तरशतं तासां कर्णे पृथक् पृथक्।।

तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन कृत्वा वक्षसि साधकः।
अंगन्यासयुतं देवि जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।।

एतस्मिन् समये देवी रतिमिच्छति सा यदा।
तदा तां रमयेत् मन्त्री पीडा न जायते यथा।।

शनैरधरपानं च शनैर्वक्षोजमर्दनम्।
शनैर्गुदनिवेशं च शनैरालिंगनं प्रिये।।

यद्यत्र जायते पीडा तदा सिद्धिर्विनाशिनी।
एवं प्रयोगेत्तु काली साक्षाद् भवति नान्यथा।।

इति ते कथितं देवि गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्भवेत्।।

तदा सिद्धिविलम्बे न निष्फलं नैव जायते।
अविश्वासो न कर्त्तव्यं आलस्यं नैव पार्वति।।

सर्वेषां मन्त्रवर्याणां सारमुद्धृत्य पार्वति।
दुग्धमध्ये यथा सर्पि काष्ठमध्ये यथानलः।।

तथा समुद्धृतः सारो देवि नास्त्यत्र संशयः।
स्वयंसिद्धा हि ते मन्त्राः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः।।

इति ते कथितं देवि गोपनीयं प्रयत्नतः।।



यह तन्त्रशास्त्र अत्यन्त गुह्यतम् है, विशेषत: गुरुके उपदेशके बिना इसकी कोई भी प्रक्रिया नहीं जानी जा सकती। साथ ही ये सब प्रक्रियाएँ बड़ी बीभत्स, असामाजिक, अनैतिक और अकरणीय हैं। इसलिये इसका विस्तृत वृत्तान्त लिखना अनुचित, अशिष्ट और दु:साध्य है।

इस प्रकारकी वीराचार पूजा और सिद्धि-प्रक्रियाएँ और भी बहुत प्रकारकी हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती। ये प्रक्रियाएँ करनेपर भी किसी किसीको तो जन्मभर सिद्धि नहीं होती। इसका कारण यह है कि कोई भक्तिहीन, कोई क्रियाहीन और कोई विधिहीन होकर पूजा करते हैं। सद्गुरुके उपदेशानुसार विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेपर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

इसका गुह्यतम वृत्तान्त सद्गुरुके बिना दूसरा कोई भी नहीं बता सकता। इसलिये इसको पढ़नेसे हृदयमें नाना प्रकारके भाव उदित होते हैं। किन्तु वास्तविक तत्त्वार्थका निरूपण गुरुपदेशके बिना किसी प्रकार भी नहीं हो सकता।

आज कोई भी गुरु इस प्रकारकी अशोभनीय और अनैतिक क्रियाएँ न तो सिखा सकता न सिखानी ही चाहिए। यदि ऐसी अनैतिक क्रियाओंसे सिद्धि मिलती भी हो तब भी उसके लिये प्रयत्न करना अत्यन्त निषिद्ध पापकर्म है।





: दशक यंत्र :

१	३	५	१५	१६	९५	९४	९३	९२	९१
११	१९	२०	२९	३०	७८	७७	७६	७५	९०
१२	२७	३३	३९	४१	६४	६५	६१	७४	८९
१७	३१	३८	५०	४३	५२	५७	६३	७०	८४
८३	६९	५९	५५	५४	४५	४८	४२	३२	१८
८७	७३	६६	५३	५६	४७	४६	३५	२८	१४
८८	७९	६७	४४	४९	५८	५१	३४	२२	१३
९७	८०	४०	६२	६०	३७	३६	६८	२१	४
९९	२६	८१	७२	७१	२३	२४	२५	८२	२
१०	९८	९६	८६	८५	६	७	८	९	१००

११



पंच-मकार और पंच-तत्त्व



पंचमकार

पञ्चमकार ही तन्त्रका प्रधान अंग है ।

मकारपंचकं देवि देवानामपि दुर्लभम्।
मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिमैथुनैरपि।।

स्त्रीभिः सार्द्ध महासाधुरर्चयेद् जगदम्बिकाम्।
अन्यथा च महानिन्दा गीयते पण्डितैः सुरैः।।

कायेन मनसा वाचा तस्मात्तत्त्वो परो भवेत्।
कालिका-तारिणी-दीक्षां गृहीत्वा मद्यसेवनम्।।

न करोति नरो यस्तु स कलौ पतितो भवेत्।
वैदिके तांत्रिके चैव जपहोमबहिष्कृतः।।

अब्राह्मण स एवोक्तः स एव हस्तिमूर्खकः।
शुनीमूत्रसमं तस्य तर्पणं यत् पितृष्वपि।।

कालीतारामनुप्राप्य वीराचारं करोति न ।
शूद्रत्वं तच्छरीरेण प्राप्नुयात् स न चान्यथा।।

या सुरा सर्वकार्येषु कथिता भुवि मुक्तिदा ।
तस्या नाम भवेद् देवि तीर्थपानं सुदुर्लभम्।।

शूद्राणां भक्षयोग्याणां यन्मांसं देवनिर्मितम्।
वेदमंत्रेण विधिवत् प्रोक्तो सा शुद्धिरुत्तमा ।।

भोक्ष्य योगाश्च कथिता ये मत्स्या च वरानने।
ते रहस्ये मया प्रोक्तो मीनाः सिद्धिप्रदायकाः।।

पृथुका तंडुला भ्रष्टा गोधूमचणकादयः।
तस्य नाम भवेद्देवि मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी।।

भगलिंगस्य योगेन मैथुनं यद् भवेत् प्रिये ।
तस्य नाम भवेद्देवि पंचमं परिकीर्त्तितम्।।

प्रथमस्तु भवेत् मद्यं मांसं चैव द्वितीयकम्।
मत्स्यं चैव तृतीयं स्यात् मुद्राश्चैव चतुर्थिका।।

पंचमं पंचमं विद्यात् पंचैते नामतः स्मृताः।।

पञ्च मकार ही तन्त्रके प्राणस्वरूप हैं। पञ्च मकारके बिना तान्त्रिकको किसी भी कार्यमें अधिकार नहीं है। पञ्च मकार देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारोंसे जगदम्बिकाकी पूजा की जाती है। इसके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता और तन्त्रवित् पण्डितगण निन्दा करते हैं। काली और ताराका मन्त्र ग्रहण करके जो मद्य सेवन नहीं करता, वह कलिमें पतित होता है, जप, होम आदि कार्योंमें अनधिकारी होता है। उस व्यक्तिका पितृ-तर्पण



कुत्तेके मूत्रके सदृश है। जो व्यक्ति काली और ताराका मन्त्र पाकर वीराचार नहीं करता, वह शूद्रत्वको प्राप्त होता है। सुरा सभी कार्योंमें उपयुक्त है तथा पृथिवीपर यह ही एकमात्र मुक्तिदायिनी है। इस सुराका नाम ही तीर्थ और पान है।

वैदिक आदि ग्रन्थोंमें जिन मांसोंको भक्ष्य कहा गया है, वे ही मांस विशुद्ध हैं। रहस्यमें जिन मीनोंको भक्ष्ययोग्य कहा है, वे मत्स्य सिद्धिप्रदायक हैं। पृथुक, चिउड़ा, गोधूम, चणक आदिको मुद्रा कहते हैं, यह मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी है। भग और लिंगके योगसे मैथुन होता है। यह मैथुनही पञ्चम है। मकारोंमें प्रथम मद्य, द्वितीय मांस, तृतीय मत्स्य, चतुर्थ मुद्रा, पंचम मैथुन है, ये पाँच द्रव्य ही पञ्च मकार हैं।

पञ्च मकारका अर्थ

मायामलादि शमनात् मोक्षमार्गनिरूपणात्।
अष्टदु:खादिविरहान्मत्स्येति परिकीर्त्तितम्।।

मांगल्यजननाद्देवी संविदानन्ददानत:।
सर्वदेवप्रियत्वाच्च मांस इत्यभिधीयते।।

पंचमं देवि सर्वेषु मम प्राणप्रियं भवेत्।
पंचमेन विना देवि चण्डीमन्त्रं कथं जपेत्।।

यदि पंचमकारेषु भ्रान्तिश्चेत् कुरुते प्रिये।
तस्य सिद्धि: कथं देवि चण्डीमन्त्रं कथं जपेत्।।

आनंदं परमं ब्रह्म मकारास्तस्य सूचका:।।

जिससे माया और मलादिका प्रशमन, मोक्षमार्गका निरूपण और आठ प्रकारके दुखोंका अभाव होता है, उसका नाम मत्स्य है। मांगल्य-जनन, संविदोंको आनन्ददायक और सब देवताओंका प्रिय होनेसे इसका नाम मांस पड़ा है। पञ्चमकार सब कार्योंमें मेरे प्राणोंके समान प्रिय है। पञ्चमकारके बिना चण्डीमन्त्रका जप नहीं हो सकता है। इसलिये उसके लिये सिद्धि भी असम्भव है। आनन्द ही परम ब्रह्म है और पञ्चमकार उसका सूचक है।

सुमन: सेवितत्वाच्च राजत्वात् सर्वदा प्रिये।
आनन्दजननाद्देवि सुरेति परिकीर्त्तिता।।

मुदं कुर्वंति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शिता व्याकुलेश्वरि।।

उत्तम पुरुष इसका सेवन करते हैं तथा राजत्व और आनन्द-जननका यह कारण है इसलिये इसका नाम सुरा है। इससे देवताओंका मन आनन्दित और द्रवीभूत होता है तथा इसके देखनेसे परमेश्वरी भी व्याकुल होती है, इसलिये इसका नाम मुद्रा है।



पञ्चमकारका फल महानिर्वाणतन्त्रके ग्यारहवें पटलमें इस प्रकार कहा है—

अष्टैश्वर्यं परं मोक्षं मद्यपानेन शैलजे।
मांसभक्षणमात्रेण साक्षान्नारायणो भवेत्।।

मत्स्यभक्षणमात्रेण काली प्रत्यक्षतामियात्।
मुद्रासेवनमात्रेण भूसुरो विष्णुरूपधृक्।।
मैथुनेन महायोगी मम तुल्यो न संशयः।।

मद्यपान करनेसे अष्टैश्वर्य और परामोक्ष तथा मांसके भक्षण मात्रसे साक्षात् नारायणत्व लाभ होता है। मत्स्य भक्षण करते समय ही कालीका दर्शन हो जाता है। मुद्राके सेवन मात्रसे विष्णुरूप प्राप्त होता है। मैथुन-द्वारा मेरे (शिवके) तुल्य हो जाता है, इसमें संशय नहीं।

पञ्च मकारके दानका फल—

द्रव्यं मधुः तथा मत्स्यं मांसं मुद्रा च मैथुनम्।
मकारपञ्चसंयुक्तं पूजयेत् भैरवेश्वरम्।।
कन्याकोटिप्रदानस्य हेमभारशतानि च।
फलमाप्नोति देवेशि कौलिके बिदुदानतः।।
पृथिवी हेमसम्पूर्णा दत्वा यत्फलमाप्नुयात्।
तत्पुण्यं कौलिके दत्वा तृतीयं प्रथमायुतम्।।
द्वितीयं प्रथमायुक्तं यो दद्यात् कुलयोगिने।
तृप्यन्ति मातरः सर्वाः योगिन्यो भैरवादयः।।
अश्वमेधादिकं पुण्यमन्नदानान्महर्षिणाम्।
तत्फलं लभते देवि कौलिके दत्तमुद्रया।।
गवां कोटिप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः।
तत्पुण्यं लभते देवि पञ्चमस्य प्रदानतः।।
पंचमेन विना द्रव्यं यः कुर्यात् साधकाधमः।
तत्सर्वं निष्फलं देवि सत्यं सत्यं न संशयः।।
चाण्डाली चर्मकारी च मातंगी मांसकारिणी।
मद्यकर्त्री च रजकी क्षौरकी धनवल्लभा।।
अष्टैताः कुलयोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः।।

मधु, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारोंसे भैरवेश्वरकी पूजा करें। कोटि कन्यादान करनेसे तथा भूमि और एक बोझ सोना दान करनेसे जो फल होता है, कौलिक कार्यमें इसकी एक बूँद दान करनेसे उतना ही पुण्य होता है। सुवर्ण संयुक्त पृथिवी दान देनेसे जो फल होता है, प्रथमयुक्त तृतीय द्रव्य या प्रथमयुक्त द्वितीय द्रव्य दान देनेसे भी वही फल होता है। माताएँ, योगिनी और भैरवादि सभी इससे तृप्त होते हैं। कोटि गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, पञ्च मकार प्रदान करनेसे भी मनुष्यको उतना ही पुण्य होता है। जो साधकाधम पञ्च मकारको छोड़कर अन्य द्रव्य कल्पित करता है उसको सब कुछ निष्फल है। इसको अत्यन्त सत्य मानो।



चाण्डाली, चमारिन, मल्लाहिन, मछुई, कलाली, धोबिन, नाईन और वेश्या ये आठ स्त्रियाँ

कुलयोगिनी हैं। ये ही समस्त सिद्धियोंको देनेवाली हैं।

पञ्च मकारका विषय वर्णित हुआ, किन्तु पञ्च मकारका शोधन किया जाता है।

संशोधनमनाचर्य स्त्रीषु मद्येषु साधकः।
आचर्यः सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति सुन्दरी।।

जो साधक पञ्च मकारका शोधन बिना किये मद्यादि व्यवहार करता है, उसके कार्यमें हानि होती है और उसपर देवी भी क्रुद्ध होती हैं तथा वह कभी भी सिद्धि लाभ नहीं कर पाता।

मांसादि शोधन

वक्ष्येहं परमेशानि मांसादेः शोधनं प्रिये।
पूर्ववत् मण्डलं कृत्वां पूजयेत् मण्डलोपरि।।

आधारशक्ंित्त कूर्मं च अनन्तं पृथिवीं तथा।
तन्मध्ये स्थापयेन् मांसं मत्स्यं मुद्रां च पार्वति।।

हुं बीजेन संमन्त्र्य फट्कारैः प्रोक्षणं चरेत्।
वारुणेन च धेन्वादिं दर्शयेत् साधकोत्तमः।।

ततो मायां वधूश्चैव श्रीबीजं क्रमशो जपेत्।
शुद्धिमन्त्रं पठैद्भक्त्या मूलमन्त्रं समुच्चरन्।।

पवित्रं कुरु देवेशि मांसं मत्स्यं कुलेश्वरि।
मुद्रां शस्योद्भवां दिव्यां पूजार्थं कुलनायिके।।

ततो हुं फट् वारुणञ्च तस्योपरि जपेत् प्रिये।
मूलमंत्रं च तन्मध्ये दशधा जपनञ्चरेत्।।

मांसादिका शोधन करना हो तो पहलेकी भाँति मण्डल बनाकर उसपर आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त और पृथिवीकी पूजा करें तथा उस मण्डलके मध्य मत्स्य, मांस और मुद्रा स्थापित करें। पीछे हुँ बीज मन्त्रको समन्त्रित करके फट् मन्त्रके द्वारा प्रोक्षण करें तथा धेनु आदि मुद्रा दिखावें। उसके अनन्तर मायाबीज, वधूबीज और श्रीबीजका क्रमशः जप करें। पीछे मूलमन्त्र उच्चारण करके भक्तिपूर्वक 'पवित्रं कुरु देवेशि' इस शुद्धिमन्त्रको पढ़ें और 'हुँ फट्' यह मन्त्र उसके ऊपर और दसबार मूलमन्त्र उसके भीतर जपें। इस प्रकारसे मत्स्य, मुद्रा और मांस शोधित होता है।

मद्यादि-शोधन

अपनी बाँईं ओर षट्कोणान्तर्गत त्रिकोण बिन्दु लिखकर वृत्तचतुरस्र-विधानपूर्वक सामान्यार्घ्योदकके द्वारा उसे अभ्युक्षित करके उसपर **'आधारशक्त्यै नमः'** इस मन्त्रके द्वारा पूजा करें।

शाप विमोचन



नमः मन्त्रके द्वारा आधार पात्रको प्रक्षालित करके उसे मण्डलके ऊपर रक्खें और **'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः'** इस मन्त्रके द्वारा पूजा करके हुं फट् मन्त्रके द्वारा कलश

प्रक्षालित करें जिसे रक्तवस्त्र और माल्यादिसे विभूषित करके आधारके ऊपर देवी मानकर संस्थापित करें। उसके पश्चात् **'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः'** मन्त्रसे आधारकी पूजा करके **'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः'** मन्त्रसे कलश और **'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः'** मन्त्रसे पूजा करें। तदनन्तर **'हुं फट्'** इस मन्त्रसे वीक्षण करें। अनन्तर अभ्युक्षण करके मूल मन्त्र-द्वारा तीन बार गन्ध ग्रहण करें। अनन्तर **'ॐ'** मन्त्रसे कुम्भमें पुष्प निक्षेप करें। **'ह्रें सौः'** इस मन्त्रसे त्रिकोण अंकित करें। **'ह्रें सौः ह्रें सौः नमः'** इस मन्त्रसे पूजा करके **'द्रँ की परमस्वामिनि परमाकाशशून्यवाहिनि चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि पात्रं विश विश स्वाहा'** मन्त्रसे घट पकड़ें और दस बार जप करें। **'ऐं ह्रीं क्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै च धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात्'** मन्त्रको पात्रके ऊपर जपें जिससे शापविमोचन होता है।

अन्य शापविमोचन मन्त्र

**अन्यच्च शृणु देवेशि यथा पानादिकर्मणि।
दोषो न जायते देवि तान् वै मन्त्रान् शृणुष्व मे॥**

**एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥**

**सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापद्विमुच्यताम्॥**

पूर्वोक्त तीन मन्त्रों-द्वारा सुराको अभिमन्त्रित करके कालिकाको प्रदान करें। उसके पश्चात् स्वयं भोजन करें। देवीका घट थामकर इस मन्त्रको तीन बार जपें—**'ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्महत्या-विमोचितायै सुधादेव्यै नमः'**। इसके जपनेसे ब्रह्मशाप विमोचित होता है।

शुक्रशाप-विमोचन

'ॐ शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापाद्विमोचितायै सुधादेव्यै नमः' मन्त्रको दस बार जपनेसे शुक्रका शाप विमोचित होता है।

कृष्णशाप-विमोचन

'ऐं ह्रीं श्रीं क्रां क्रौं क्रू क्रैं क्रौँ क्रँ कृष्णशापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा' मन्त्रको दस बार जपनेसे कृष्णशाप विमोचित होता है।

पञ्च तत्त्व

तान्त्रिकके लिये प्रत्येक कार्यमें जिस प्रकार पञ्चमकार साध्य हैं उसी प्रकार समस्त कार्योंमें पञ्चतत्वकी आवश्यकता होती है।



पूजयेत् बहुयत्नेन पंचतत्त्वेन कौलिकः।
एवं कृत्वा लभेत् सिद्धिं नान्यस्य दृष्टिगोचरे॥

शैवे शाक्ते गाणपत्ये सौरे चान्द्रे सुलोचने।
तत्त्वज्ञानमिदं प्रोक्तं वैष्णवे शृणु यत्नतः॥

गुरुतत्त्वं मन्त्रतत्त्वं मनस्तत्त्वं सुरेश्वरि।
देवतत्त्वं ध्यानतत्त्वं पंचतत्त्वं वरानने।।

कौलिकको चाहिए कि अति यत्नसे पञ्चतत्त्व-द्वारा पूजा करें। ऐसा करनेसे ही सिद्धि प्राप्त होगी। शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, इन सभी सम्प्रदायोंके लिये पञ्चतत्त्वका जानना आवश्यक है। गुरुतत्त्व, मन्त्रतत्त्व, मनस्तत्त्व, देवतत्त्व और ध्यानतत्त्व ये पाँच तत्त्व हैं।





: एकादश यंत्र :

१	२	३	४	५	१०६	१०८	१०९	११०	११२	१११
६	२१	२२	२३	२४	८९	९१	९२	९४	९३	११६
८	२५	३७	३८	३९	७६	७८	८०	७९	९७	११४
९	२७	४०	४९	५०	६७	६८	७१	८२	९५	११३
१०२	८६	७४	६६	६०	५९	६४	५६	४८	३६	२०
१०३	८७	७५	६९	६५	६१	५७	५३	४७	३५	१९
१०४	८८	७७	७०	५८	६३	६२	५२	४५	३४	१८
१०५	९०	८१	५१	७२	५५	५४	७३	४१	३२	१७
१०७	९६	४३	८४	८३	४६	४४	४२	८५	२६	१५
११५	२९	१००	९९	९८	३३	३१	३०	२८	१०१	७
११	१२०	११९	११८	११७	१६	१४	१३	१२	१०	१२१

१२



द्रव्यशुद्धि



ह ँ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्।।

इस मन्त्रको द्रव्यके ऊपर तीन बार पढ़ें। उसके पश्चात् द्रव्यमें आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीका मन्त्रके द्वारा ध्यान करें।

पहले पञ्चमकारका विषय वर्णित हुआ है। बहुतोंके मनमें धारणा हो सकती है कि पञ्चमकारका सेवन पुण्यप्रद है, किन्तु शोधन और साधनके बिना मद्य- पान करनेका निषेध है। इसीलिये कुलार्णवतन्त्रमें पञ्चमकारके शोधनका विषय निम्नलिखित रूपसे वर्णित हुआ है—

बहवः कौलिकं धर्मं मिथ्याज्ञानविडम्बकाः।
सुबुद्ध्या कल्पयन्तीत्थं पारम्पर्यविमोहिताः।।

मद्यपानेन मनुजा यदि सिद्धिं लभेत वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः।।

मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि।।

स्त्रीसम्भोगेन देवेशि यदि मोक्षं भवन्ति वै।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्युः स्त्रीनिषेवनात्।।

वृथा पानन्तु देवेशि सुरापानं तदुच्यते।
यन्महापातकं देवि वेदादिषु निरूपितम्।।

अनाघ्रेयमनालोच्यमस्पृश्यञ्चाप्यपेयकम्।
मद्यं मांसं पशूनान्तु कौलिकानां महाफलम्।।

अमेध्यानि द्विजातीनां मद्यान्येकादशैव तु।
द्वादशाख्यं महामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम्।।

सुरा वै मलमन्नानां पापात्मा मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।।

सुरादर्शनमात्रेण कुर्यात् सूर्यावलोकनम्।
तत्समाघ्राणमात्रेण प्राणायामत्रयं चरेत्।।

आजानुभ्यां भवेन्मग्नो जले चोपवसेदहः।
ऊर्ध्वनाभेस्त्रिरात्रन्तु मद्यस्य स्पर्शने विधिः।।

सुरापानेऽज्ञानकृते ज्वलन्तीं तां विनिक्षिपेत्।
मुखे तया विनिक्षिप्ते ततः शुद्धिमवाप्नुयात्।।



मत्स्यमांसादिदोषस्य प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः।
अविधानेन यो हन्यात् आत्मार्थं प्राणिनः प्रिये।।

निवसेन्नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः।
संम्वधानि दुराचारस्तिर्यग्योनिषु जायते।।

अनुमन्ता विश्वसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादिताष्टौ च पातकाः।।

धनेन च क्रेता हन्ति खादिता चोपभोगतः।
खातको खातबन्धाभ्यामित्येषस्त्रिविधो वधः।।

मांससन्दर्शनं कृत्वा सूर्यदर्शनमाचरेत्।
तस्मादविधिना मांसं मद्यञ्च नाचरेत् क्वचित्।।

विधिवत् सेव्यते देवि परमार्थं प्रसीदति।

(कुलार्णवतन्त्र)

बहुतसे मनुष्य मिथ्याज्ञानके द्वारा विडम्बित होकर मद्यादि पान करनेसे पुण्य होनेकी कल्पना किया करते हैं। यह उनका महाभ्रम है। मद्य पीनेसे ही यदि सिद्धि होती तो शराबी पामर भी सिद्धि लाभ कर लेते। मांस भक्षण करनेसे ही यदि कोई पुण्यवान् हो सकता तो सब मांसभक्षी मनुष्य पुण्यवान् हो जाते। स्त्रीसम्भोगसे ही यदि मुक्ति होती तो सभी लम्पटी अनायास मुक्त हो जाते। किन्तु ऐसा नहीं है, वृथा मद्य पीना तो मद्यपोंका मदिरा पीना है। वेद आदिमें मदिरा पीनेके जो दोष लिखे हैं, वृथा मद्य पान करनेसे वे सब महापाप लगते हैं। मदिरा तो अस्पृश्य, अनाघ्रेय और अपेय है। केवल कौलिक कार्यमें ही फलप्रद है।

सभी प्रकारका मद्य द्विजोंके लिये अपेय है। अन्नका मल ही मदिरा है, इसलिए द्विजोंको कभी भी मदिरा नहीं पीनी चाहिए। यदि किसी प्रकार मदिराको देख भी लें तो सूर्यका दर्शन करना उचित है। दैववश यदि सुरा सूँघ भी लें तो उन्हें प्राणायाममन्त्रत्रयका आचरण करना पड़ेगा। घुटनों पानीमें खड़े होकर एक दिन उपवास करनेसे मदिरा सूँघनेका पाप नष्ट होता है। दैववश यदि मद्यका स्पर्श हो जाय तो नाभि-पर्यन्त जलमें खड़े होकर तीन दिन उपवास करनेसे उसका पाप जाता है। कोई यदि अज्ञानसे सुरा पान कर लें तो वे अग्नि प्रज्वलित करके स्वयं उसमें निक्षिप्त होवें। ऐसा ही करनेसे अज्ञानसे सुरापानका पाप नष्ट होता है। अविधानसे अपनी प्रीतिके लिये जो लोग मत्स्य और मांसादिका हनन करते हैं वे हतपशुके रोमकी संख्याके वर्षोंतक नरकमें वास करते हैं तथा फिर तिर्यग् योनिमें जन्म लेते हैं। इस प्रकारकी पशुहत्यामें घातक, अनुमोदक, विश्वसिता, निहन्ता, खरीदनेवाले, बेचनेवाले, संस्कर्त्ता, उपहर्त्ता और खानेवाले ये सभी पापके भागी होते हैं। इसलिये मांसके देखते ही सूर्यका दर्शन करना चाहिए। किन्तु विधिवत् अर्थात् सद्गुरुके उपदेशानुसार पञ्चमकार सेवन करनेसे परमार्थतत्त्व लाभ होता है, अन्यथा सभी निष्फल और विशेष पापजनक है। अतएव तान्त्रिकोंको कोई भी कार्य अपनी इच्छाके अनुसार नहीं करना चाहिए।

शुद्ध शक्तिका फल



साधिता च जगद्धात्री यद्यद्ददति पार्वति।
तत्सर्वं सत्यतां याति सत्यं सत्यं न संशयः।।

नारी शोधिता होनेपर ही जगद्धात्रीके तुल्य होती है और वह नारी जो कहे वही सत्य होता है, इसमें अणुमात्र भी संशय नहीं।

शक्तिशोधन

इदानीं कथमिष्यामि नारीणां शोधनं प्रिये।
अग्रे वा दक्षिणे वापि संस्थाप्य मण्डलोपरि॥

भाले च मण्डलं कुर्यात् त्रैपुरं सिन्दुरेण च।
नयने कज्जलं दद्यान्मूलमन्त्रं जपेत् सुधीः॥

अन्यैश्च विविधैर्द्रव्यैर्भावयेत् शाक्तमन्त्रतः।
ताम्बूलं वदने दद्यादिष्टमूर्त्तिं विभाव्य च॥

ततः षडंगमन्त्रैश्च षडंगन्यासमाचरेत्।
मातृकार्णं ततोन्यस्य ऋष्यादिन्यासमाचरेत्॥

मूलेन व्यापकं कृत्वा मूर्ध्नि मूलं शतं जपेत्।
हृदये कामबीजं च बुधबीजं च संजपेत्॥

नाभौ श्री गुह्यदेशे च सर्वबीजं च पार्वति।
मौलौ च वाग्भवं कामं कुण्डलीं कुलकुण्डलीम्॥

शक्तिबीजं जपेन्मन्त्री सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
वामे मायां श्रावयेच्च कर्णे चैव महेश्वरी॥

एवं क्रमेण देवेशि नारीशुद्धिः प्रजायते॥

नारीशुद्धि करनी हो तो नारीको लाकर उसे अग्रभागमें या दक्षिणमें मण्डलके ऊपर स्थापित करें। उसके कपालपर सिन्दूर-द्वारा त्रैपुरमण्डल करे, नयनोंमें काजल लगा दें, फिर साधक मूल मन्त्र जपें, अन्य विविध द्रव्यों-द्वारा शक्तिमन्त्रसे उसको सम्बोधन करें, मुखमें ताम्बूल देवें और इष्टमन्त्रका ध्यान करके षडंगमन्त्र-द्वारा षडंगन्यास करें। मूल-द्वारा व्यापक करके मस्तकपर सौ बार मूलमन्त्रका, हृदयमें कामबीज और बुधबीजका, नाभिमें श्रीबीजका, गुह्यदेशमें सर्वबीजका, मौलिमें कामबीजका और कुण्डलीमें कुलकुण्डली शक्तिबीजका जप करें और वाम कर्णमें माया श्रवण करावें। उक्त रूपसे अनुष्ठान करनेसे ही नारीशुद्धि होती है।

नीचे लिखे अनुसार आनन्दभैरव शिवका ध्यान करें—

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥

अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम्।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम्॥

कपालखट्वांगधरं घंटाडमरुवादिनम्।
पाशांकुशधरं देवं गदामूसलधारणम्॥



खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डधृक्।
विचित्रं खेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिनम्।।
लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः।।

इस मन्त्रसे भैरवका ध्यान करके हसक्षमलवरयुं आनन्दभैरवाय वषट् मन्त्रके द्वारा आनन्दभैरवकी तीन बार पूजा करें। पीछे आनन्दभैरवीका यह ध्यान करें—

भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोट्यायुतप्रभाम्।
हिमकुन्देन्दुधवलां पंचवक्त्रां त्रिलोचनाम्।।
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम्।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम्।।

इस प्रकारसे आनन्दभैरवीका ध्यान करके हसक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वषट् मन्त्रसे पूजा करें तथा द्रव्यमें शक्तिचक्र लिखकर क्रमानुसार हं लं क्षं लिखें।

ऐसा करनेसे शिव और शक्तिका योग होता है, इसलिये द्रव्यमें अमृतत्त्वकी चिन्ता करके धेनुमुद्रा-द्वारा अमृती करें। वं वरुणबीजको और मूलमन्त्रको आठ बार जपकर देवतास्वरूप उस द्रव्यका ध्यान करें।

इस प्रकारसे द्रव्यशुद्धि होती है।

एतत्तु कारणं देवि सुरसंघनिषेवितम्।
अत एव तस्याः नाम सुरेति भुवनत्रये।।
अस्याः गन्धः केशवस्तु तेन गन्धेन कौलिकः।
पूजयेच्च परां देवीं कालिकां दक्षिणां शिवाम्।।

देव (सुर) इसका सेवन करते हैं इसलिये इसका नाम सुरा है। इस सुराकी गन्ध ही केशव है, उस गन्धके द्वारा कौलिक परा कालिका देवीकी पूजा करें।

मांसशोधन

ॐ प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। इस मन्त्रसे मांस शोधित होता है। (यजु. ५/२०)

मत्स्यशुद्धि

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।

ॐ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवां सः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्। इस मन्त्रके द्वारा मत्स्य-शुद्धि करें। (यजु. ६/५, ३४/४४)



मुद्राशुद्धि

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।।

गर्भं देहि सिनीवाली गर्भं देहि सरस्वती।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ।

(ऋग्. १०/१८४/१)

इस मन्त्रके द्वारा मुद्राशुद्धि करें। पहले जो विधान कहे गए हैं, उनसे पंचमकार शोधित होते हैं। किन्तु पंचमकार शोधित करनेके लिये सिद्ध गुरुकी परम आवश्यकता है। बिना सिद्ध गुरुके कोई भी साधक अपनी इच्छानुसार द्रव्यशुद्धि नहीं कर सकता। यदि करेगा तो उससे फलकी प्राप्ति नहीं होगी।





१३



चक्रानुष्ठान



सिद्ध तान्त्रिकगण चक्रानुष्ठान भी अवश्य किया करते हैं। यह व्यापार अति गुह्य है। इसका अनुष्ठान निशीथ रात्रिमें ही करना पड़ता है।

वीरचक्र

वीरचक्रं प्रवक्ष्यामि येन सिध्यन्ति साधकाः।
अनया पूजया देवि देहसिद्धिः प्रजायते।।

शक्ते यो न समग्रादि यत्प्रशस्तं निवेदयेत्।
भूचराणां खेचराणां तत्तन्मांसः सुसाधयः।।

मुद्रा सर्वाणि धान्यानि युक्तानि परमेश्वरि।
श्वेतपीतं च पुष्पाणि रक्तानि च विशेषतः।।

अष्टवीरं च षड्वीरं नववीरं तथा प्रिये।
कल्पयेद् वीरपन्थिश्च यथालब्धाश्च सुन्दरि।।

वीरेभ्यो दक्षिणां दद्यात् आचार्याय विशेषतः।
असंख्यपातकाश्चैव ब्रह्महत्यादिपातकम्।।

नाशयेत् तत्क्षणाद् देवि वीरचक्रप्रभावतः।
दक्षिणाविधिहीनं च तच्चक्रं निष्फलं भवेत्।।

अब उस वीरचक्रका विषय कहा जाता है जिसकी पूजाके प्रभावसे साधक शीघ्र ही सिद्धि लाभ करते हैं। इसमें समर्थ न होनेपर समस्त द्रव्य न देकर केवल प्रशस्त द्रव्य निवेदन करना चाहिए।

भूचर (पशु) और खेचर (पक्षी) आदिका मांस ही उत्तम सिद्धिप्रद है। सभी प्रकारके धान्यको मुद्रा कहते हैं। इसके लिये श्वेत, पीत और रक्त पुष्प लाना चाहिए। षड्वीर, अष्टवीर या नववीर इनमेंसे जो प्राप्त हो उसकी कल्पना करें। इस प्रकारकी कल्पना करनेसे वीरचक्र होता है। आचार्यको दक्षिणा देकर पीछे वीरोंको दक्षिणा देवें। असंख्य पातक और ब्रह्महत्यादि पातक वीरचक्रके प्रभावसे तत्क्षण दूर हो जाते हैं। यह चक्र यदि विधि और दक्षिणा-हीन हो तो वह निष्फल होता है।

राजचक्र

चतुर्वर्णा कुमार्यश्च सुरूपा सुमनोहरा।
यामिनी योगिनी चैव रजकी श्वपची तथा।।

कैवर्त्तकसमुत्पन्ना पंचशक्तिरुदाहृता।
एता प्रशस्ता सकला साधकेन नियोजिता।।

अर्पयेन्मधु मद्यं च शुद्धिश्छागलसम्भवा।
धर्मार्थकाममोक्षार्थं राजचक्रं विधीयते।।



षष्टिवर्षसहस्राणि देवलोके महीयते।।

अतिशय रूपवती सुमनोहरा चतुर्वर्णा कुमारी— ऐसी यामिनी (कलाली), योगिनी (जादूगरनी),

रजकी (धोबिन), चाण्डाली और कैवर्त्ती (मल्लाहिन)—ये पञ्चशक्ति हैं, ये पञ्चकन्या साधक-द्वारा नियोजित होनेपर प्रशस्ता होती हैं। पश्चात् इन्हें मधु, मद्य और मांस अर्पण करें। इस प्रकारसे राजचक्र होता है। इस राजचक्रके प्रभावसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति तथा देवलोकमें साठ सहस्र वर्ष वास होता है।

देवचक्र

देवचक्रं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैः क्रियते सदा।
शक्तयस्तत्र वक्ष्यामि दिव्यरूपा मनोरमा॥

राजवेश्या नागरी च गुप्तवेश्या तथा प्रिये।
देववेश्या ब्रह्मवेश्या शक्तयः पंचदेवताः॥

राजसेवापरा राजवेश्या गुप्ता च कौलजा।
देववेश्या नृत्यकरा ब्रह्मवेश्या च तीर्थगा॥

नागरी कस्यचित् कन्या रम्भा कामरजस्वला।
पंचैता शक्तयः देवि देवचक्रे नियोजयेत्॥

देवचक्रका विषय इस प्रकार बताया जाता है— देवता सर्वदा देवचक्रका अनुष्ठान किया करते हैं। इस देवचक्रमें राजवेश्या, नागरी, गुप्तवेश्या, देववेश्या और ब्रह्मवेश्या, ये पञ्चवेश्या ही पञ्चशक्तियाँ हैं। राजसेवापरायणा राजवेश्या, कौलजा गुप्तवेश्या, नृत्यकारिणी देववेश्या, तीर्थगामिनी ब्रह्मवेश्या और कोई भी रजस्वला कन्या नागरी कहलाती है, ये पाँचों वेश्याएँ हैं इनको देवचक्रमें नियोजित करें।

राजचक्रं राजदं स्यात् महाचक्रं समृद्धिदम।
देवचक्रे च सौभाग्यं वीरचक्रं च मोक्षदम्॥

(रुद्रयामल)

राजचक्रका अनुष्ठान करनेसे राज्यलाभ, महाचक्रसे समृद्धि, देवचक्रसे सौभाग्य और वीरचक्रसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

पञ्चचक्रे प्रशस्ता यास्ताः शृणुष्व वरानने।
चक्रं पञ्चविधं प्रोक्तं तत्र शक्ति प्रपूजयेत्॥

राजचक्रं महाचक्रं देवचक्रं तृतीयकम्।
वीरचक्रं चतुर्थं च पशुचक्रं च पंचमम्॥

पञ्चचक्रमें जो प्रशस्त हैं, उनका विषय इस प्रकार कहा जाता है। चक्र पाँच प्रकारके होते हैं, उनसे ही शक्तिकी पूजा करें। राजचक्र, महाचक्र, देवचक्र, वीरचक्र और पशुचक्र ही पाँच चक्र हैं।

पञ्चचक्रे यजेद्दिव्यो वीरश्च कुलसुन्दरि।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च पंचचक्रे प्रपूजयेत्॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वीरचक्रेण पूजयेत्।
योगिभिः पूज्यते देवि सर्वचक्रेषु कामिनि॥



माता च भगिनी चैव दुहिता च स्नुषा तथा।
गुरुपत्नी च पंचैता राजचक्रे प्रपूजयेत्।।
गौडी वाप्यथवा माध्वी सुरा शस्ता कुलेश्वरि।
शुद्धिश्छागद्भवा शस्ता तृतीया वेदसम्भवा ।।
मुद्रा गोधूमजा शस्ता स्वयम्भूकुसुमस्तथा।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं अनुकल्पं नियोजयेत्।।

वीरको पञ्चचक्रसे यज्ञ करना चाहिए। ब्रह्मचारी और गृहस्थ भी पञ्चचक्रसे पूजा कर सकते हैं। योगिगण सभी चक्रसे कामिनी-पूजा कर सकते हैं। माता, भगिनी, पुत्री, पुत्रवधू, गुरुपत्नी इन पाँचोंकी पूजा राजचक्रसे करनी चाहिए। गौडी, माध्वी या सुरा, मुद्रा, स्वयंभू कुसुम, कुम्भगोलोद्भव द्रव्य, इन सबका अनुकल्पमें प्रयोग किया जाता है।

रक्तंचैव तथा श्वेतमनुकल्पं च चन्दनम्।
वस्त्रालंकारभूषाद्यैर्गन्धमाल्यानुलेपनम्।।
पूजयेत् परया भक्त्या देवताभ्यो निवेदयेत्।
भक्ष्यं नानाविधं द्रव्यं नानावस्त्रसमन्वितम्।।
आसवं शुद्धिसंयुक्तं ताभ्यो दद्यात् पुनः पुनः।
प्रणमेत् प्रजपेन्मंत्रं दृष्ट्वा ताश्च सहस्त्रकम्।।
अंगं नैव स्पृशेत्तासां स्पृशेच्च्व नरकं व्रजेत्।
मधुमत्ता सदा तास्तु न शपन्ति सुसम्पदः।।
तत्तदैव भवेत् सर्वं सत्यं सत्यं न संशयः।
षष्टिवर्षसहस्त्राणि ब्रह्मलोके महीयते।।

रक्तचन्दन और अनुकल्पसे श्वेतचन्दनको वस्त्र, अलंकार आदिके द्वारा भूषित करें तथा परम भक्तिके साथ उसे देवताकी सेवामें उपस्थित करें। नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ, चित्र-विचित्र वस्त्र आदि तथा आसव शुद्ध करके उन्हें पुनः पुनः प्रदान करें। प्रणाम करके उनकी ओर अवलोकन पूर्वक हजार जप करें। उनका अंग स्पर्श न करें। यदि स्पर्श करेंगे तो रौरव नरकमें ही जाना पड़ेगा। वे मधुमत्तागण उसको शाप नहीं देतीं तथा वे साठ सहस्त्र वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोकमें वास करते हैं।

महाचक्र या राजचक्र

माता भग्नी स्नुषा कन्या वीरपत्नी कुलेश्वरी।
महाशक्तियजेदेताः पंचशक्ति पुनः पुनः।।
द्रव्यदाने तु संपूज्या न शक्तौ शिवयोजनम्।
योजयेत् सिद्धिहानिः स्यात् रौरवं नरकं व्रजेत्।।
महाव्याधिर्भवेद्देवि धनहानिः प्रजायते।
सदैव दुःखमाप्नोति सर्वं तस्य विनश्यति।।



आद्यं च गौडिकं प्रोक्तं द्वितीयं कुक्कुटोद्भवम्।
तृतीयं रोहितं प्रोक्तं चतुर्थं मांससम्भवम्॥

करवीरोद्भवं पुष्पं चंदनं रक्तचंदनम्।
पूजयेत् परया भक्त्या शिवलोके महीयते॥

षष्टिवर्षसहस्राणि तत्र देवीं प्रपूजयेत्।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां अमायां च कुजेऽहनि॥

राजचक्रे महाचक्रे भक्त्यार्थी-शक्तिः प्रपूजयेत्।
शुक्लपक्षे गुरोर्वारे चतुर्थी-सप्तमी तिथौ॥

महाचक्रे यजेद् भक्त्या सर्वकामार्थसिद्धये॥

माता, भगिनी, पुत्रवधू, कन्या और वीरपत्नी ये कुलेश्वरी और पञ्चशक्ति हैं। चक्रमें बार बार इनकी पूजा की जाती है। इनकी पूजा द्रव्यसे करें। इन शक्तियोंके प्रति कभी भी कामभाव नहीं होना चाहिए। ऐसा करनेसे सिद्धिहानि, रौरव नरकमें वास, महाव्याधि, धनहानि, सर्वदा दुःखभोग और सर्वनाश होता है। प्रथम गौडी, द्वितीय कुक्कुटोद्भव, तृतीय रोहित, चतुर्थ मांसजात, करवीर पुष्प, चंदन और रक्तचन्दन, इन सबसे देवीकी सभक्ति पूजा करनेसे शिवलोकको गमन होता है। वहाँ भक्त साठ हज़ार वर्षतक देवीकी पूजा किया करता है। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या अथवा मंगलवारको राजचक्र नामक महाचक्रसे भक्तिपूर्वक पञ्चशक्तिकी पूजा करें। सम्पूर्ण कामना और अर्थसिद्धिके लिये शुक्लपक्षमें बृहस्पतिवारको चतुर्थी या सप्तमी तिथिमें महाचक्रसे भक्तिपूर्वक यज्ञ करें।

माता, भगिनी आदि जिन पञ्चमहाशक्तियोंका विषय लिखा गया उन पाँचों शब्दोंको पारिभाषिक समझना चाहिए और उनका अर्थ जान लेना चाहिए। उनका विवरण देते हुए निरुत्तरतन्त्रके दसवें पटलमें लिखा है—

भूमीन्द्रकन्यका माता दुहिता रजकीसुता।
श्वपची च श्वसा ज्ञेया कापाली च स्नुषा स्मृता॥

योगिनी निजशक्तिः स्यात् पञ्चकन्याः प्रकीर्त्तिताः॥

माता कहनेसे राजकन्या, दुहिता कहनेसे धोबिनकी कन्या, बहन कहनेसे चाण्डाली, स्नुषा कहनेसे कापाली तथा अपनी शक्तिको योगिनी समझना चाहिंए— ये पाँच पञ्चकन्या कहलाती हैं।

देवचक्र

देवचक्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व वरवर्णिनि।
विदग्धा सर्वजातीनां पञ्चकन्याः प्रकीर्त्तिताः॥

गौडिकं फलजं रम्यं द्वितीयं पक्षिसंभवम्।
तृतीयं शालमत्स्यन्तु चतुर्थं धान्यसंभवम्॥

सुगन्धि गन्धपुष्पं च देवचक्रे नियोजयेत्।
देवचक्रे यजेत् शक्तिं देवलोके महीयते॥



षष्टिवर्षसहस्राणि देवकन्याः प्रपूजयेत्।
पंचकन्यां यजेच्चक्रे नातिरिक्तां कदाचन॥

लोभाद्वा कामतो वापि छलाद्वा वरवर्णिनि।
यदि स्यात् संगमस्तासां रौरवं नरकं व्रजेत्॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।
पितृभूमिं समागम्य वीरचक्रे प्रपूजयेत्॥

दिव्यवीरान्वितो मन्त्री यजेत् शक्तिः वलीयसीम्।

देवचक्रका विषय इस प्रकार कहा जाता है— सर्वजातिकी पाँच विदग्धा कन्याएँ, फलज रम्य गौडिक, द्वितीय पक्षिसम्भव, तृतीय शालिमत्स्य, चतुर्थ धान्यसम्भव और सुगन्धि गन्धपुष्पकेद्वारा देवचक्रमें यज्ञ करनेसे देवलोककी गति होती है। पञ्चकन्या-चक्रमें ही यज्ञ करें, कभी भी इसके अतिरिक्त यज्ञ न करें। लोभवश अथवा छल या कामके वशीभूत हो यदि कोई इनके साथ संगम करे तो वह रौरव नरकमें जाता है। दोनों पक्षोंकी अष्टमी और चतुर्दशीको पितृभूमि (श्मशान)में जाकर वीरचक्रमें पूजा करनी चाहिए।

वीरचक्र

सिद्धमन्त्री भवेद् वीरो न वीरो मद्यपानतः।
अभिषिक्तो भवेद् वीरो अभिषिक्ता च कौलिकी॥

एवं च वीरशक्तिं च वीरचक्रे नियोजयेत्।
नाभिषिक्तो वसेच्चक्रे नाभिषिक्ता च कौलिकी॥

वसेच्च रौरवं याति सत्यं सत्यं न संशयः।
एवं क्रमं विना देवि वीरचक्रे वसेद् यदि॥

सिद्धिहानिं सिद्धिहानिं रौरवं नरकं ब्रजेत्।
सर्वमद्यं सर्वशुद्धिं सर्वमीनं कुलेश्वरि॥

सर्वमुद्रां सर्वपुष्पं स्वयम्भूकुसुमं तथा।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं नानारससमन्वितम्॥

प्रदद्यात् साधको श्रेष्ठो वीरचक्रे पुनः पुनः।
स्वशक्तिं पूजयेत्तत्र तदुच्छिष्टं पिबेत् प्रिये॥

चर्व्यं च ज्येष्ठतो ग्राह्यं कनिष्ठाय निवेदयेत्।
एकासने न भुञ्जीत भोजनं नैकभाजने॥

करस्पर्शं मुखस्पर्शं न कर्त्तव्यं कदाचन।
एवं क्रमेण देवेशि वीरचक्रं समाचरेत्॥

आनीय हीनजां देवीं शक्तिमन्त्रेण शोधयेत्।
संशोध्य हीनजां पूजा वीरशक्तिं निवेदयेत्॥



मधुसक्ताय वीराय यो दद्याद् हीनजां सुताम्।
वक्त्रकोटिसहस्रेण तस्य पुण्यं न गीयते॥

वीराय शक्तिदानं तु वीरचक्रे विधीयते।
चक्रभिन्ने चरेद्दानं रौरवं नरकं व्रजेत्॥

कारयेद् गोपयेद्वापि न निन्देन्न निरीक्षयेत्।
कामं क्रोधं च मात्सर्यं विकारं लोभमेव च॥

कुत्सा निन्दा दुरालापं गोपयेदष्टकं प्रिये।
मन्त्रं मुद्रामक्षमालां योनिं च वीरसंगमम्॥

मंडलं च घटं पीठं सिद्धिद्रव्याणि गोपयेत्।
पण्डितं वीरसन्तानं क्षेत्रं देवीं च योगिनीम्॥

कुलाचारं गुरुदूतीं मनसाऽपि न निन्दयेत्।
मातृयोनिं पशुक्रीडां नग्नां स्त्रीमुन्नतस्तनीम्॥

कान्तेन क्षोभितां कांतां कामतो नावलोकयेत्।
देवीं गुरुं सुधां विद्यां श्रेष्ठां शक्तिं क्रियात्मजाम्॥

योगिनीं भैरवीतत्त्वं अष्टतत्त्वं प्रपूजयेत्॥

मन्त्र सिद्ध होनेसे ही वीर होता है, मद्य बिना पीए वीर नहीं होता। यथाविधि अभिषिक्त होनेपर ही वीर कौलिकी होता है। वीरचक्रमें इस प्रकारसे वीर और शक्तियोंको भी नियुक्त किया जाता है।

वीर और कौलिकीको अभिषिक्त बिना हुए चक्रपर बैठकर यज्ञ नहीं करना चाहिए। यदि करें, तो उनहें रौरव नरकमें जाना पड़ेगा। इस क्रमके अतिरिक्त वीरचक्रपर कभी भी नहीं बैठना चाहिए। इस क्रमके बिना वीरचक्रपर बैठनेसे पद पदपर उसकी सिद्धि-हानि होती है और रौरव नरकमें जाना पड़ता है। सब प्रकारकी मदिरा, मत्स्य, मुद्रा, पुष्प, स्वयम्भूकुसुम, कुण्डगोलोद्भव द्रव्य साधकको पुनः पुनः वीरचक्रपर चढ़ानी चाहिंए तथा अपनी शक्तिकी पूजा करनी चाहिए। भक्ष्य द्रव्य ज्येष्ठादि क्रमसे कनिष्ठको निवेदन करें। परस्पर स्पर्श न करें, एक आसनपर और एक पात्रमें भोजन न करें, हीनजा देवीको लाकर शक्ति-मन्त्र द्वारा शोधित करें, वीर हीनजाकी पूजा और उनका शोधन करके शक्ति निवेदन करें। मधुसक्त वीरको हीनजा कन्या प्रदान करनेका इतना पुण्य होता है कि वह कोटि मुखसे भी नहीं गाया जा सकता।

वीरचक्रका आचरण करनेके लिये वीरको शक्तिदान करना पड़ता है। वीरचक्रके बिना यदि शक्तिदान किया जाय, तो दाता रौरव नरकमें जाता है। यह कार्य अत्यन्त गुप्त भावसे करना चाहिए अर्थात् काम, क्रोध, मात्सर्य, विकार, लोभ, कुत्सा, निन्दा, दुरालाप, इन आठों दोषोंको न आने दे।



मन्त्र, मुद्रा, अक्षरमाला, योनि, वीरसंगम, मण्डल, घट, पीठ और सिद्धिद्रव्य सबको गुप्त रक्खें। पण्डित, वीर, सन्तान, क्षेत्र, देवी, योगिनी, कुलाचार और गुरुदूती इनकी मनमें भी निन्दा न करें।

मातृयोनि, पशुक्रीड़ा, नग्न स्त्री, उन्नतस्तनी, कान्त-क्षोभिता और कान्ता, इनको कामभावसे

अवलोकन न करें। देवी, गुरु, सुधा, विद्या, श्रेष्ठशक्ति, योगिनी,भैरवीतत्त्व और अष्टतत्त्वकी पूजा करें।

पशुचक्र

विमाता दुहिता भग्नी स्नुषा पत्नी च पंचमी।
पशुचक्रे यजेद्धीमान् पशुवत्तोषणं चरेत्।।
गन्धं पुष्पं च माल्यं च वस्त्राद्याभरणानि च।
सिन्दूरागुरुकस्तूरीं नानापुष्पाणि सुन्दरि।।
भक्ष्यं नानाविधं द्रव्यं फलं नानाविधं प्रिये।
एतद्द्रव्यगणं यस्तु भक्त्या ताभ्यो निवेदयेत्।।
षष्टिवर्षसहस्राणि क्षितौ राजा भवेद्ध्रुवम्।
वीरचक्रे मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः।।
अमावस्यां चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।
श्मशानेन गते नार्चेत् सूचितं न प्रकाशितम्।।

माता, दुहिता, भगिनी, पुत्रवधू और पत्नी, ये पाँच शक्तियाँ समन्विता होकर पशुचक्रमें यज्ञ करें। इसमें पशुवत् तुष्ट आचरण करें, गन्ध, पुष्प, माल्य, वस्त्रादि, आभरण, सिन्दूर, अगुरु, कस्तूरी, नाना प्रकारके पुष्प और फल ये सब द्रव्य भक्तिपूर्वक उनको अर्पण करें। इस तरह पशुचक्रमें यज्ञ करनेवाला साठ हज़ार वर्षतक पृथिवीपर राजा होता है। पशुचक्रमें मन्त्रसिद्धि अवश्य होगी, इसमें सन्देह नहीं। दोनों पक्षकी अमावस्या और चतुर्दशीको श्मशानमें जाकर ऐसा आचरण करें तथा कभी भी किसीके आगे प्रकट न करें।

न निंदेत् न हसेत् वापि चक्रमध्ये मदाकुलान्।
एतच्चक्रगतां वार्त्तां बहिर्नैव प्रकाशयेत्।।
तेभ्यो भोजनं कुर्वीत नाहितं च समाचरेत्।
भक्त्या संरक्षयेदेतान् गोपयेच्च प्रयत्नतः।।

(प्राणतोषिणी)

चक्रमें मदिरासक्त व्यक्तियोंको देखकर न उनपर हँसे और न निन्दा करें। इस चक्रकी बात बाहर प्रकट न करें, उनके पास बैठकर भोजन करें, अहित आचरणसे विरत रहें, भक्तिपूर्वक उनकी रक्षा करें और यत्नपूर्वक यह वृतान्त गुप्त रक्खें।





१४



वीरसाधन



पुरश्चरणसंपन्नो वीरसिद्धिं समाचरेत्।
सम्यक् परिश्रमेणापि नैव सिद्धिं समास्थिता॥

जायते तत्र कर्त्तव्या साधकैर्वीरसाधना।
पुत्रदारधनस्नेहलोभमोह— विवर्जितः॥

मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम्।
प्रतिज्ञामीदृशीं कृत्वा बलिद्रव्याणि चिन्तयेत्॥

यस्य मन्त्रस्य यद्द्रव्यं तत्तद्रव्यञ्च साधकैः।
शवलक्षणं देवेशि शृणु पर्वतनन्दिनि॥

सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसाधने।
ब्राह्मणो गोमयं त्यक्त्वा साधयेद् वीरसाधनम्॥

महाशवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधाने वीरसाधने।
ब्राह्मणस्तु स्त्रियान् त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम्॥

क्षुद्राः प्रयोगकर्त्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धये।
ऊर्ध्वं द्विवर्षात् यदि वा पंचधा तरुणं यदि॥

सप्तमाष्टममासीयं गर्भदं यदि वा शवम्।
चांडालं चाभिभूतं च शीघ्रं सिद्धिफलप्रदम्॥

यष्टिप्रभृतिभिर्विद्धं अन्यं वा विजने मृतम्।
शवमानीय कर्त्तव्यं नो हरेत् स्वेच्छया मृतम्॥

स्त्रीरमणपतितञ्चास्पृश्यं वर्ज्यं हि तच्छवम्।
कुष्ठादिरोगसंयुक्तं वृद्धभिन्नं शवं हरेत्॥

न दुर्भिक्षं मृतं वापि न पर्युषितमेव वा।
स्त्रीजनसदृशं रूपं सर्वदा परिवर्जयेत्॥

शून्यागारे नदीतीरे बिल्वमूले चतुष्पथे।
श्मशाने वा विशेषेण नीत्वा चोद्धृत्य भूषयेत्॥

शून्यगारे अरण्या वा नीत्वा चैव विभूषयेत्।
संस्थाप्य कुशशय्यायां पुरुषं दिव्यरूपिणम्॥

आनीय स्थापयेदादौ न्यासजालं समाचरेत्।
पीठमन्त्रं समालिख्य गंधपुष्पादिभिस्ततः॥



अभ्यर्च्य चासनं दत्वा रक्षां मंत्रेण कारयेत्।
ततः शवास्ये विधिवत् देवताप्ययनं चरेत्॥

भुवनेशी फडन्ताः स्थः कथिता मानवोत्तमा।
ततः शवं क्षालयित्वा स्थापयेच्च प्रयत्नतः॥

यदि यत्नेन तिष्ठेन्न भैरव्याच्च भयं भवेत्।
एलालवंगकर्पूरजातिखादिरकार्द्रकैः।।

ताम्बूलं तन्मुखे दद्यात् शवं कुर्यादधोमुखम्।
स्थापयित्वा च तत्पृष्ठे चंदनेन विलेपयेत्।।

बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्रं विधाय च।
मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम्।।

ततश्चैलेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत्।
पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम्।।

संस्थाप्य शवमभ्यर्च्य तत्र चारोहणं भवेत्।
कुशान् पदतले दत्वा शवकेशान् प्रसार्य च।।

दृढं निबध्य झुटिकां तं च देवस्वरूपिणम्।
तस्य देहं सुसंपूज्य पठेदुत्थाय सम्मुखे।।

ॐ भीमभीरुभयाभावभव्यलोचनभावुकः।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप।।

इति पादतले तस्य त्रिकोणं यन्त्रमालिखेत्।।

साधक पुरश्चरण-सिद्ध होकर वीरसिद्धि या शवसाधना करें। सम्यक् परिश्रमके बिना सिद्धि नहीं होती, ऐसा स्थिर करके साधक वीरसाधनामें प्रवृत्त होवें। वीर-साधन करना हो तो पुत्र, पत्नी और धनादिसे स्नेह, मोह, लोभ आदि त्याग दें। मन्त्रका साधन अथवा शरीर-पतन, दोमें एक होगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके साधनमें प्रवृत्त होवें और बलिद्रव्य आहरण करें। जिस जिस मन्त्रमें जिस जिस द्रव्यकी आवश्यकता हो, साधक उन्हीं द्रव्योंका आहरण करें।

इस वीरसाधनका प्रधान उपकरण शव है, जिसका विषय पहले कहते हैं। सभी जीवहीन जन्तुओंके शव वीरसाधनके उपयुक्त हैं किन्तु शवोंमें कुछ (शवसाधनमें) प्रशस्त भी हैं। ब्राह्मणको गोमय त्यागकर शवसाधन करना चाहिए। प्रधान वीरसाधनमें महाशव ही एकमात्र प्रशस्त है। इस वीरसाधनमें स्त्रीत्याग करके साधना करनी होगी। प्रयोगकर्त्ताओंके लिये क्षुद्र शव ही प्रशस्त और सकल सिद्धिका निमित्त है। दो वर्षसे ऊपर पञ्चमवर्ष-पर्यन्त अथवा तरुण और सप्तम या अष्टम-मासीय गर्भज चाण्डालका शव ही प्रशस्त है। ऐसे शव-द्वारा आराधना करनेसे शीघ्र फल होता है।

यष्टि आदिके द्वारा अर्थात् जो चाण्डाल शूल, खड्ग, लाठी या वज्रके आघातसे अथवा सर्पदंशनसे मरा हो अथवा पानीमें डूबकर या सन्मुख युद्धमें पलायन पराङ्मुख होकर मरा हो, वह यदि सुन्दरकान्तिविशिष्ट, शौर्यवान् और तरुणवयस्क हो तो शवसाधनार्थ उसीको लाना चाहिए।

स्त्री-रमण-द्वारा पतित और कुष्ठादि महापातक रोगग्रस्त शवका परित्याग करना उचित है। स्वेच्छापूर्वक मरे हुए व्यक्तिका और वृद्धका शव ग्रहण नहीं करना चाहिए। दुर्भिक्षसे मरे हुए व्यक्तिका शव अथवा बासी मुर्दा भी शवसाधनके लिये अनुपयुक्त है। स्त्रियों-जैसे रूपवालेका शवभी वर्जनीय है।



नाना प्रकारके साधनोंमें शवसाधन वीराचारियोंका प्रधान साधन है। इसलिये इसका स्थान विशेष होना आवश्यक है। शून्य गृहमें, नदी-तीरपर, पर्वतपर, निर्जन स्थानमें, बिल्ववृक्षके तले अथवा श्मशान या उसके समीपवर्त्ती वनस्थलमें साधना करनी चाहिए। अष्टमी या चतुर्दशी अथवा कृष्णपक्षीय मंगलवारकी द्विप्रहर रात्रि ही शवसाधनाका उपयुक्त समय है। श्मशानादि स्थलमें शवको लाकर कुश-शय्यापर स्थापन करें और फिर न्यास करना प्रारम्भ करें। पहले पीठमन्त्र लिखकर गन्ध-पुष्पादिके द्वारा अर्चना करें। पीछे आसन प्रदान करके मन्त्र-द्वारा रक्षा करें। उसके पश्चात् शवके मुखपर विधिपूर्वक देवताओंका आप्यायन (तुष्टि) आवरण डालें, भवनेशी और अन्तमें फट्का प्रयोग करें। उसके पश्चात् शवको प्रक्षालित करके यदि यत्नपूर्वक स्थापित न हो तो भैरवीका भय होता है। एला, लवंग, कर्पूर, जातीफल, खदिर और आद्रक-द्वारा शवको अधोमुख करें तथा उसके मुखमें ताम्बूल देवें। उसकी पीठपर चन्दन विलेपित करें। पीछे बाहुमूलसे कटिदेश-तक चतुरस्र मण्डल करके बीचमें चतुद्वरियुक्त अष्टदल पद्म बनावें। उसके पश्चात् चैलेय, अजिन, कम्बलान्तरित करके न्यास करें और निकटमें पूजा-द्रव्य रख देवें। कुछ दूरीपर एक उत्तर साधकको रखना चाहिए। शवको संस्थापन करके अर्चना करें और उसपर आरोहण करें। कुछ कुश उसके पैरोंके नीचे डाल देना चाहिए। शवके केश प्रसारित करके उसकी चोटी बाँध देवें। उसके शरीरको देवरूप मानकर पूजें और उत्थित होकर भीम-भीरु-भयाभाव, इस मन्त्रका पाठ करें। उसके पैरोंके तले त्रिकोणयन्त्र भी लिख देना चाहिए।

तेनोत्थातुं न शक्नोति शवश्च निश्चलो भवेत्।
उपविश्य पुनस्तत्र बाहू निःसार्य पादयोः॥

हस्तयोः कुशमास्तीर्य पादो तत्र निधापयेत्।
ओष्ठौ तु सम्पुटी कृत्वा स्थिरचित्तं स्थिरेन्द्रियः॥

सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनीजपमथाचरेत्।
चलासनाद् भयं नास्ति भये जाते भवेत्तु तम्॥

यत्प्रार्थयसि देवेशि दातव्यं कुंजरादिकम्।
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे॥

इत्युक्त्वा संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत्।
ततश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं लीलया न वै॥

ततः सत्यं कारयित्वा वरं तु प्रार्थयेन्नरः।
यदि सत्यं न कुर्याच्च वरं वा न प्रयच्छति॥

तदा पुनर्जपेद्धीमान् एकाग्रयतमानसः।
सत्ये कृते वरं लब्ध्वा संत्यजेत्तु जपादिकम्॥

फलं जातमिदं ज्ञात्वा झुटिकां मोचयेत्ततः।
शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेत् पादबन्धनम्॥

पादचक्रं मोचयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत्।
शवं जले च गर्त्ते वा निःक्षिप्य स्नानमाचरेत्॥



ततश्च स्वगृहं गत्वा बलिं दत्वा दिनान्तरे।
पूजयित्वा ततो देवीं याचितोऽहं बलिप्रियम्॥
तेन गृह्णन्तु सर्वे च मया दत्तमिदं बलिम्।
परेऽह्नि नित्यमाचार्य: पञ्चगव्यं पिबेत्तत:॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पंचविंशतिसंख्यकान्।
सप्तपंचविहीनं वा क्रमाच्चैव दशावधि॥
तत: स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमे स्थले।
यदि न स्यात् विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत्॥
तेन चेन्निर्धनं न स्यात् तदा देवी प्रकुप्यति।
त्रिरात्रं वा षड्रात्रं वा नवरात्रं च गोपयेत्॥
स्त्री-शय्या यदि गच्छेत्तु तदा व्याधिं विनिर्दिशेत्।
गीतं श्रुत्वा च बधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात्॥
यदि वक्ति दिवा वाक्यं तदास्य मूकतां व्रजेत्।
पंचदशदिनं यावद् देहे देवस्य संस्थिति:॥
नो स्वीकुर्याद् गन्धपुष्पे बहिर्याति यदा भवेत्।
तदा वस्त्रं परित्यज्य गृह्णीयाद्वसनान्तरम्॥
गोब्राह्मणविनिन्दां च न कुर्याच्च कदाचन।
देवगोब्राह्मणादींश्च संस्पृशेत् प्रत्यहं शुचि:॥
प्रातर्नित्यक्रियान्ते च बिल्वपत्रोदकं पिबेत्।
तत: स्नात्वा च गंगायां प्राप्ते षोडशवासरे॥
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य तर्पणान्ते नम: प्रदम्।
एवं शतत्रयादूर्ध्वं देवं वै तर्पयेज्जले॥
स्नानतर्पणशून्यं तु न स्याद्देवस्य तर्पणम्।
इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति साधक:॥
इति भुक्त्वा वरान् भोगान् अन्ते याति हरे: पदम्॥

(नीलतन्त्र)

शवके पैरोंके तले त्रिकोणयन्त्र लिखनेके पश्चात् उत्थान करनेको शक्त होवें तो शव भी निश्चल हो जायगा। पुन: उसपर उपवेशन करके पाद-द्वारा दोनों बाहुओंको निकालें और उसपर कुशा बिछाकर पैरोंको स्थापित करें, ओठोंको संपुट करके स्थिरचित्त और स्थिरेन्द्रिय होवें। इस प्रकार अनन्यचित्तसे हृदयमें देवीका ध्यान करके जप करें। इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे यदि आसन चञ्चल होवे तो डरना नहीं चाहिए। भय होनेपर उसकी पूजा करें और कहें कि हे देवेशि! तुम जो चाहती हो दिनके अन्त होनेपर मैं तुम्हें वही दूँगा। तुम अपना नाम प्रकट करो। संस्कृतमें उसको यह बात



कहकर निर्भयतासे पुन: जप करें। उसके बाद यदि वह मधुरवाक्य न कहें, तो साधकको उचित है कि सत्य कराकर उनसे वरकी प्रार्थना करे। यदि वह सत्य न करें या वर न दें, तो साधक पुनः अनन्यचित्तसे जप करना प्रारम्भ कर दें। पुनः ऐसा होनेपर जब वह सत्य करें और वर दें, तब वर लेकर साधक जप करना छोड़ दें। उसके पश्चात् फल प्राप्त हो गया यह समझकर चोटी खोल दें। पीछे शवको प्रक्षालित करके संस्थापनपूर्वक पादबन्धन मोचन करावें और पादचक्र मोचन कराकर पूजा द्रव्य जलमें निक्षेप करें। उसके अनन्तर शवको पानी या गड़हेमें फेंककर स्नान करके घर लौट जायँ।

दिनके अन्तमें साधक देवीकी पूजा करके बलिप्रदान करें और प्रार्थना करें कि— हे देवि! मेरे द्वारा प्रदत्त बलिको ग्रहण कीजिए। दूसरे दिन पञ्चगव्य पान करके पच्चीस ब्राह्मणोंको जिमावें। तदनन्तर स्नान और भोजन करके उत्तम स्थानमें वास करें। साधक यदि ब्राह्मण-भोजन न करावे तो वह निर्धन होता है और यदि निर्धन न भी हो तो देवी उसपर कुपित होती हैं। ३ दिन, ६ दिन, ७ दिनतक उसको गुप्त रखना चाहिए। साधक यदि स्त्रीकी शय्यापर गमन करें तो उसको व्याधि होती है तथा गीत सुननेसे बहरा, नाच देखनेसे अन्धा और दिनको बोलनेसे गूँगा होता है। इस प्रकार पन्द्रह दिन बिताने चाहिएँ क्योंकि पन्द्रह दिनतक शरीरमें देवताका संस्थान रहता है। इन पन्द्रह दिनोंमें गन्दे वस्त्रोंका व्यवहार नहीं करना चाहिए, बाहर ज़ाना हो तो वस्त्र बदलकर जावें। गऊ और ब्राह्मणकी कभी निन्दा न करें। देवता, गऊ और ब्राह्मणका प्रतिदिन स्पर्श करें। प्रात:काल नित्य क्रिया करनेके उपरान्त बिल्वपत्रोदक पान करें। पश्चात् सोलहवें दिन गंगा-स्नान करके स्वाहान्त मूल उच्चारणपूर्वक तर्पण करें और तर्पण कर चुकनेपर नमः पदका प्रयोग करें।

इस प्रकारसे तीन सौसे अधिक बार जलमें देवतर्पण करें। स्नान करके ऐसा तर्पण न करनेसे देवतर्पण नहीं होगा। साधकको ऐसा आचरण करनेपर अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होगी। इस प्रकार सिद्धिलाभ करनेसे इस संसारमें विविध भोग और अन्तमें स्वर्गमें गमन होता है। किन्तु बिना सिद्ध गुरुको साथ लिए कोई साधना कभी नहीं करनी चाहिए अन्यथा भयंकर परिणाम भोगना पड़ता है।





१५



सृष्टितत्त्व



तन्त्र-विज्ञानको समझनेके लिये सृष्टितत्त्वका ज्ञान भी परमावश्यक है क्योंकि उसे जाने बिना तन्त्रका आधिदैविक स्वरूप नहीं जाना जा सकता।

तन्त्रके मतसे सृष्टितत्त्व—

निराकारं निर्गुणं च स्तुतिनिन्दाविवर्जितम्।
सुनित्यं सर्वकर्त्तारं वर्णातीतं सुनिश्चलम्।।

संज्ञाविरहितं शान्तं किमाकारं प्रतिष्ठितम्।
तस्मादुत्पत्तिर्देवेश किमाकारेण जायते।।

शंकर उवाच

श्रृणु देवि परं तत्त्वं वर्णातीतां च वैखरीं।
गुणालयां गुणातीतां स्तुतिनिन्दादिवर्जिताम्।।

आकाररहितां नित्यां रोगशोकादिवर्जिताम्।
पूजां योगं च देवेशि स्वयमुत्पत्तिकारणम्।।

येन रूपेण ब्रह्माण्डा जायन्ते श्रृणु तत् शिवे।
आकाशाज्जायते वायुर्वायोरुत्पद्यते रविः।।

रवेरुत्पद्यते तोयं तोयादुत्पद्यते मही।
पंचभूतेषु ब्रह्माण्डा भवेयुः पर्वतात्मजे।।

ब्रह्माण्डस्थापनार्थाय कूर्मपृष्ठे ह्यनन्तकः।
तन्मूर्ध्नि बालुकाकारा ब्रह्माण्डा बहवः स्थिताः।।

कारण्य-वारिमध्ये तु कूर्मश्चरति नित्यशः।
अहमेव त्रिशूलेन पालयामि पुनः पुनः।।

हे देवेशि! निराकार, निर्गुण, स्तुतिनिन्दाविवर्जित, वर्णातीत, सुनिश्चल, संज्ञाविरहित यह किस आकारमें प्रतिष्ठित है और कहाँसे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा उत्पत्ति किस आकारमें हुई? यह सब कहकर मेरा संशय दूर कीजिए। महादेवने पार्वतीके प्रश्नके उत्तरमें कहा— हे पार्वति! श्रेष्ठ तत्त्वका मैं वर्णन करता हूँ और जिस प्रकारसे इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है उसकी कथा भी कहता हूँ, तुम ध्यानसे सुनो।

गुणालया, गुणातीता, स्तुति और निन्दाविवर्जिता शक्ति स्वयं ही उत्पत्तिका कारण है, उसके पश्चात् जिस प्रकार ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है, वह कहता हूँ। पहले आकाशसे वायु, वायुसे रवि, रविसे जल, जलसे मही या पृथिवी उत्पन्न हुई है। ये पाँच पञ्चभूत हैं। इन्हीं पञ्चभूतोंसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है। कूर्म-पृष्ठ-पर ब्रह्माण्ड संस्थापित है तथा अनन्तके मस्तकपर बालुकाकार अनेक ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं। कारण-वारिमें कूर्म विचरण करते हैं, मैं त्रिशूलद्वारा पुनः पुनः उसका पालन करता रहता हूँ।



चण्डिकोवाच

कथं वा लभते जन्म कथं मृत्युर्भवेत् प्रभो।
तत्प्रकारं महादेव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत:।।

शंकर उवाच

इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते।
जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देहान्तरं व्रजेत्।।

संप्राप्य चोत्तमं देहं देहं त्यजति पूर्वकम्।
इति श्रुत्वा च सा चण्डी पप्रच्छ परमेश्वरम्।।

चण्डिकोवाच

प्राप्तं चोत्तरदेहस्तु पिंडदानादिकं कथम्।

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मायादेहं तदैव हि।
मायादेहं परमेशानि वायुरूपेण चान्यथा।।

वायुरूपो यतो देह आकाशस्थो निराश्रय:।
ततश्च पिण्डदानेन वायु: स्थिरतरो भवेत्।।

प्रथमे मस्तकं देवि जायते च क्रमावधि।
ततो यमपुरं गत्वा धर्माधर्मादिकं च यत्।।

तद्भुक्त्वा चापरे किंचित् यदा कर्म न विद्यते।
तदाज्ञया तदा जीव: प्रययौ ब्रह्मशासनम्।।

तस्मात् कर्मानुसारेण यदिस्याद्दुर्लभां तनुम्।
महाविद्यां भाग्यवशात् यदि प्राप्नोसि सद्गुरुम्।।

तत्त्वज्ञानं महेशानि यदि भाग्यवशाल्लभेत्।
तदेव परमं मोक्षं यावद् ब्रह्माण्डं तिष्ठति।।

ब्राह्मणस्य महामोक्षं सायुज्यं क्षत्रियस्य च।
सारूप्यं चोरुजातस्य शूद्रस्य सहलौकिकम्।।

महाविद्याप्रसादेन पुनरागमनं न हि।
बृहद्ब्रह्माण्ड नाशे तु सर्वमोक्षं यदा शिव।।

तदा सर्वस्य निर्वाणं भवत्येव न संशय:।।

चण्डिकोवाच

बृहद्ब्रह्माण्डवाह्ये तु किं पुन: परमेश्वर।
तत्सव श्रोतुमिच्छामि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति।।



शिव उवाच

ब्रह्माण्डस्य वाह्य देहो ब्रह्माण्डो बहवः स्थिताः।
अनन्तस्य प्रमाणत्तु किं वक्तुं शक्यते मतः॥
स एव निर्मिर्त सर्वं सैव सर्वे महेश्वरि॥

मनुष्य कैसे तो जन्म लेते हैं और कैसे उनकी मृत्यु होती है इस विषयको सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा हुई है। हे शिव! आप इसका यथार्थ विवरण कहिए। महादेव पार्वतीसे कहते हैं— हे शिवे! मनुष्य इस जगत्में जो कर्म करते हैं अर्थात् पाप और पुण्यका जैसा अनुष्ठान करते हैं, उन्हीं कर्मोंके अनुसार परलोक में स्वर्ग-नरकादि भोग करते हैं। जोंक जैसे तृणसे तृणान्तरको गमन करती है उसी प्रकार जीव भी देहसे देहान्तरको गमन करता रहता है। जैसे जोंक एक तृणका बिना आश्रय लिए पहला तृण नहीं छोड़ सकती, उसी प्रकार जीव भी एक शरीरका बिना आश्रय लिए पहला शरीर नहीं त्यागता। पार्वतीने महादेवकी इस बातको सुनकर कहा— यदि जीव दूसरी एक देहको ग्रहण बिना किए पूर्वदेहको नहीं छोड़ते, तो मृत व्यक्तिका पिण्डादि ग्रहण कैसे होता है? आप अनुग्रहपूर्वक मेरे इस संशयको भी दूर कीजिए। महादेव बोले— हे शिवे! मृत्युके समय मायादेह होती है। मायारूप देह वायुस्वरूप है। यह मायादेह आकाश-स्थित होकर निराश्रय भावसे रहती है। जबतक पिण्डदान नहीं दिया जाता तब तक वह इसी तरह निराश्रय रहती है।

उसके पश्चात् मृत व्यक्तिको पिण्डदान दिए जानेपर वह वायु स्थिर होता है और क्रमसे मस्तक उत्पन्न होकर अन्यान्य अवयव सब उत्पन्न होते हैं। पीछे यमपुरको जाकर पाप और पुण्य जो कुछ होता है, उसको भोगता है। पाप और पुण्य रहनेसे स्वर्ग और नरक भोगता है। उनका भोग हो जानेपर जब कोई कर्म शेष नहीं रह जाते, तब जीव यमकी आज्ञाके अनुसार ब्रह्मशासनको गमन करता है। पीछे कर्मानुसार उत्तमा आदि तनुलाभ करता है।

किन्तु यदि कोई भाग्यक्रमसे सद्गुरु, महाविद्या या तत्त्वज्ञान प्राप्त कर ले, तो वह जबतक इस ब्रह्माण्डमें रहता है, तबतक मोक्ष लाभ करता है। इनमें ब्राह्मण महामोक्ष, क्षत्रिय सायुज्य, वैश्य सारूप्य और शूद्र सालोक्य पाते हैं। महाविद्याके प्रभावसे पुनरागमन नहीं होता। हे शिवे! जिस समय इस बृहत् ब्रह्माण्डका नाम होगा, उस समय सभी जीव मुक्त होवेंगे। इस ब्रह्माण्डकी वाह्य-देह और ब्रह्माण्ड अनेक हैं, ब्रह्माण्डभी अनन्त हैं। इस अनन्तका प्रभाव कहनेको क्या कोई समर्थ है?

प्रकृत्या जायते पुंसां प्रकृत्या सृज्यते जगत्।
तोयात्तुबुद्बुदं देवि यथा तोये विलीयते॥

प्रकृत्या जायते सर्वं प्रकृत्या सृज्यते जगत्।
तोयात्तुबुद्बुदं देवि यथा तोये विलीयते॥

तस्मात् प्रकृतियोगेन जायते नान्यथा क्वचित्।
ब्रह्मा विष्णु शिवो देवि प्रकृत्या जायते ध्रुवम्॥
तथा प्रलयकालेतु प्रकृत्या लुप्यते पुनः॥

(निर्वाणतन्त्र)



प्रकृतिसे ही समस्त पुरुष जन्मग्रहण करते हैं, प्रकृतिसे ही जगत्‌की उत्पत्ति है। जैसे जलसे बुद्‌बुदे होते और फिर विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिसे ही सब उत्पन्न होते और उसीमें लय हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए हैं तथा प्रकृतिमें ही लीन हो जायँगे। प्रलयकालके उपस्थित होनेपर यह ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें ही विलुप्त हो जायगा।





: द्वादश यंत्र :

१	२	३	१६	१७	१८	१३८	१३७	१३६	१३५	१३४	१३३
१३	२३	२५	२७	३७	३८	११७	११६	११५	११४	११३	१३२
१४	३३	४१	४२	५१	५२	१००	९९	९८	९७	११२	१३१
१५	३४	४९	५५	६१	६३	८६	८७	८३	९६	१११	१३०
२१	३९	५३	६०	७२	६५	७४	७९	८५	९२	१०६	१२४
१२३	१०५	९१	८१	७७	७६	६७	७०	६४	५४	४०	२२
१२५	१०९	९५	८८	७५	७८	६९	६८	५७	५०	३६	२०
१२६	११०	१०१	८९	६६	७१	८०	७३	५६	४४	३५	१९
१३९	११९	१०२	६२	८४	८२	५९	५८	९०	४३	२६	६
१४०	१२१	४८	१०३	९४	९३	४५	४६	४७	१०४	२४	५
१४१	३२	१२०	११८	१०८	१०७	२८	२९	३०	३१	१२२	४
१२	१४३	१४२	१२९	१२८	१२७	७	८	९	१०	११	१४४

१६



तन्त्रके मतसे तत्त्वज्ञान



पञ्चभूतोंमें एक एक भूतके पाँच पाँच २५ गुण हैं। अस्थि, मांस, नख, त्वक्, लोभ, ये पाँच पृथिवीके गुण हैं। शुक्र, शोणित, मज्जा, मल और मूत्र, ये पाँच जलके गुण हैं। निद्रा, क्षुधा, तृष्णा, क्लान्ति और आलस्य, ये पाँच तेज़के गुण हैं। धारण, चालन, क्षेपण, संकोच और प्रसव, ये पाँच वायुके गुण हैं। काम, क्रोध, मोह, लज्जा और लोभ, ये पाँच आकाशके गुण हैं। समुदायमें पञ्चभूतके पन्द्रह गुण हैं। यह-पञ्चभूत-मही जलमें, जल रविमें, रवि वायुमें और वायु आकाशमें विलीन होता है।

इन पञ्चतत्त्वके बाद और भी तत्त्व हैं— स्पर्शन, रसन, ध्राण, चक्षु, और श्रोत्र, ये पाँच इन्द्रियाँ हैं और मन साधन इन्द्रिय है। यह ब्रह्माण्डलक्षण देहके मध्य अवस्थित है। साथ ही सप्तधातु, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये सभी शरीरके मध्य अवस्थित हैं। शुक्र, शोणित, मज्जा, मेद, मांस, अस्थि और त्वक् ही सप्तधातु हैं।

शरीर ही आत्मा है, अन्तरात्मा है। मन और परमात्मा शून्यमय हैं। इस परमात्मामें ही मन विलीन होता है। रक्तधातु माता, शुक्रधातु पिता और शून्यधातु प्राण, इन्हींमें गर्भपिण्ड उत्पन्न होती है।

अव्यक्तसे प्राण, प्राणसे मन और मनसे वाक्की उत्पत्ति होती है तथा मन वाक्के साथ विलीन होता है। सूर्य, चन्द्र, वायु और मन ये कहाँ अवस्थान करते हैं? तालुमूलमें चन्द्र, नाभिमूलमें दिवाकर, सूर्यके आगे वायु और चन्द्रके आगे मन तथा सूर्यके आगे चित्त और चन्द्रके आगे जीवन अवस्थित है।

किस स्थानमें शक्ति, शिव अवस्थान करते हैं? काल कहाँ रहता है और जरा क्यों आती है? पातालमें शक्ति अवस्थित है, ब्रह्माण्डमें शिव वास करते हैं, अन्तरिक्षमें कालकी अवस्थिति है और इस कालसे ही जराकी उत्पत्ति होती है।

कौन तो आहारकी आकांक्षा करता है, कौन पानभोजनादि करता है, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था किसकी होती है और कौन प्रतिबुद्ध होता है? प्राण आहारकी आकांक्षा करते है, हुताशन पानभोजनादि करता है तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिमें वायु ही प्रतिबुद्ध होता है।

कौन तो कर्म करता है, कौन पातकमें लिप्त होता है तथा पापका आचरण करनेवाला कौन है और पापोंसे मुक्त कौन होता है? मन पाप-कार्य करता है, मन ही पापमें लिप्त होता है, मन ही तन्मना होकर पुण्य और पाप उपार्जन करता है।

जीव किस प्रकारसे शिव होता है? भ्रान्तियुक्त होनेपर उसको जीव कहते हैं, वह जब भ्रान्तिमुक्त हो जाता है तब उसे शिव कहते हैं। तामस व्यक्ति इस तीर्थके लिये इसी तरह भ्रमण करते रहते हैं। वे अज्ञानान्ध होकर आत्मतीर्थसे परिचित नहीं होते। आत्मतीर्थके बिना जाने मोक्ष कैसे हो सकता है?



वेद भी वेद नहीं हैं, अर्थात् चार वेदोंको वेद नहीं कहा जा सकता। सनातन ब्रह्म ही वेद हैं। चार वेद और समस्त शास्त्रोंका अध्ययन करके योगी उनका सार संग्रह करते हैं, किन्तु पण्डितगण तक्र पीया करते हैं। तप तपस्या नहीं है, ब्रह्मचर्य ही तपस्या है जो ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ऊर्ध्वरेता होते हैं, वे ही तपस्वी हैं।

होम आदि भी होम नहीं हैं। ब्रह्माग्निमें प्राणोंका समर्पण करना ही होम है। मोक्ष लाभ करनेके लिये पाप-पुण्य दोनोंका ही त्याग करना पड़ता है।

जबतक ज्ञान नहीं उत्पन्न होता तभीतक वर्णाविभाग रहता है। ज्ञान उत्पन्न होने- पर वर्णादि विभाग नहीं रहते। चञ्चल चित्तमें शक्ति अवस्थान करती है और स्थिर चित्तमें शिव। स्थिरचित्त हो सकनेपर ही देहधारी होनेपर भी सिद्धि होती है। (ज्ञानसंकलिनीतन्त्र)

शूद्र-लिखित पटलादिका पढ़ना निषिद्ध है—

विप्रो वा क्षत्रियो वापि वैश्यो वा नगनन्दिनि।
पतयन्नरके घोरे शूद्रस्य लिखनात् प्रिये।।
तस्मात्तु शूद्रलिखितं पटलं न जपेत् सुधीः।
शूद्रेण लिखितं देवि पटलं यस्तु पठ्यते।।
यं यं नरकमाप्नोति तं तं प्राप्नोति मानवः।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य यदि शूद्रके द्वारा लिखित पटलादि पढ़ें तो उसको घोर नरकमें जाना पड़ता है। इसलिये शूद्र-लिखित स्तव-कवच आदि नहीं पढ़ना चाहिए।

तन्त्रोंमें इस प्रकार की अनेक बातें जानने योग्य हैं। वास्तवमें इस समय भारतवर्षमें सर्वत्र विशेषत: बंगाल में जो क्रियाकाण्ड और पूजापद्धति प्रचलित हैं, वे सभी तान्त्रिक हैं।

हिन्दू तन्त्रोंका विषय जैसा लिखा गया है, बौद्ध तन्त्रोंमें भी उसी प्रकारका विवरण देखनेमें आता है। हिन्दू तन्त्रोक्त शिव-दुर्गा आदिके नाम ही मानो वज्रसत्त्व, वज्रडाकिनी आदि नामोंमें रुपान्तरित हुए हैं। बौद्ध तन्त्रोंमें भी चण्डी, तारा, वाराही, महाविद्या, योगिनी, डाकिनी, भैरव, भैरवी आदिकी उपासना प्रचलित है। शिवोक्त तन्त्रोंमें जिस प्रकार अद्भुत देवमूर्त्तियोंकी कल्पना की गई है, बौद्ध तन्त्रोंमें भी उसी प्रकार हेरुकादि देवदेवीकी मूर्त्तियोंका वर्णन पाया जाता है।

वज्रताराकी पूजा

बौद्धतन्त्रके मतसे वज्रसत्त्व और वज्रताराकी पूजा ही प्रधान है। हिन्दू तान्त्रिकगण जिस प्रकार दक्षिणावर्त्तके क्रमसे न्यास करते हैं, बौद्ध तांत्रिकगण वामावर्त्तसे उसी प्रकार न्यास किया करते हैं।

वामावर्त्तविवर्त्तेन पूजान्यासप्रदक्षिणम्।
यो हि जानाति तत्वज्ञस्तस्येदं चक्रदर्शनम्।।

(अभिधानोत्तरहृदय तीसरा पटल)

बौद्ध तान्त्रिकोंका भी कहना है, कि साधनका कोई नियम नहीं, जब इच्छा हो हर एक अवस्थामें साधन किया जा सकता है।

न तिथिं न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते।
शुचिर्वा चाप्यशुचिर्वा न शौचन्नोदकक्रिया।।
कालवेलाविनिर्मुक्तं शौचाचारं विवर्जयेत्।
तन्त्रमन्त्रप्रयोगज्ञः सर्वसत्त्वार्थतत्परः।।



गिरिगह्वरकुञ्जेषु नदीतीरेषु संगमे।
महोदधितटे रम्ये एकवृक्षे शिवालये।।
मातृगृहे श्मशाने वा उद्याने विविधोत्तमे।
विहारचैत्यालये च गृहे वाथ चतुष्पथे।।
साधयेत् साधको योगं सर्वकामफलप्रदम्।।

(अभिधानोत्तर)

बौद्ध तान्त्रिकभी मालामन्त्र, मातृका कवच, हृदयादिको अतिगुह्य मानते हैं। बौद्ध तन्त्रोंमें उन गुह्य विषयोंको अधिकारीके अतिरिक्त अन्य किसीको प्रकट करनेका भी निषेध है।

आचारयोगिनीतन्त्राः योगतन्त्राश्च विस्तराः।
क्रियाभेदक्रमेणैव सर्वतन्त्रेष्वभिज्ञया।।
आगमैः सिद्धिशास्त्राणि स्वतन्त्रैर्जातकैस्तथा।
अनुत्तरपदा वाचः प्रज्ञावारमितादयः।।
बाह्यशास्त्रपरिज्ञानमाचारं विविधोत्तमम्।
योगभावनया युक्तं नैष्ठिकं पदविन्यसेत्।।
सर्वाहारविहारं तु निर्विशं केन चेतसा।
शताक्षरेण सर्वेषां मन्त्राणां दृढभावना।।
मालामन्त्रं योगनित्यं सर्वकामार्थसाधनम्।
उत्तमे वापि चोत्तरं योगिनीजालसंवरम्।।
मंत्रोद्धारश्च कवचो हृदये हृदयेन तु।
लिपिमण्डलविन्यासं वीरयोगि नितद्भवम्।।
सर्वेषामेव मन्त्राणां उत्तमो मातृकोत्तमम्।
गुह्याद्गुह्यतरं रम्यं सर्वज्ञानसमुच्चयम्।।
आलयः सर्वधर्माणां मातृकाख्यजपाद्भवाम्।
एतत्तत्त्वन्न कथयन् सिद्धिहानिर्भविष्यति।।
भावनैषाञ्च परमाकाशसिद्धिरनुत्तमा।
भावयेजन्मजन्मानि वज्रसत्त्वत्त्वमाप्नुयात्।।
अप्रकाश्यमिदं स्त्र्वं गोपनीयं प्रयत्नतः।।

(अभिधानोत्तरं चार पटल)



बौद्धमत-प्रतिपाद्य बौद्धशास्त्रोंमें पञ्चमकारकी निन्दा है और उनको ग्रहण करनेका निषेध है। किन्तु बौद्धतान्त्रिक उसमें अन्यथा किया करते हैं। पञ्चमकारकी सेवा बौद्धतन्त्रका एक प्रधान अंग है। जिस मद्य और मांसको ग्रहण करना बौद्ध शास्त्रोंमें विशेषरूपसे निषिद्ध बतलाया गया है, बौद्धतन्त्रोंमें उसीकी सुख्याति पाई जाती है।

नित्यं महामांसभोजी मदिराश्रवघूर्णितम्।
महामांसं पीत्वा मद्यं प्रिया सह परिभोज्य।।
स्वच्छचित्तो मृतांगारे भावयेद्वीरनायकम्।।

(अभिधान. चार पटल)

बौद्धतन्त्रोंमें पशु और वीर इन दो भावोंका उल्लेख है। जो वास्तविक सिद्ध तान्त्रिक हैं, बौद्धतन्त्रोंमें उन्हींको वीरनायक कहा गया है। बौद्ध तान्त्रिकगण भी इस जगत्को वामोद्भव मानते हैं। बौद्धतन्त्रोंमें चक्रपूजा, वीरयज्ञ, भगपूजा आदिका विषय भी वर्णित है। वर्त्तमान सात्त्विक बौद्धगण प्राय: जातिभेदको नहीं मानते, किंतु बौद्ध तान्त्रिकगण चतुर्वर्णका विशेष रूपसे विचार करते हैं।

तान्त्रिक विषयने जिस प्रकार भारतीय हिन्दुओंके हृदयपर अधिकार कर लिया है, उसी प्रकार बौद्ध तान्त्रिक विषय भी तिब्बत और चीनके बहुसंख्यक बौद्धोंमें पर्यवसित हुआ है। पद्मकर्प नामक तिब्बतवासी एक लामाने (ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें) कहा है—''जो यथार्थ तन्त्र-तत्त्वसे परिचित नहीं है, वह मोक्षमार्गमें राह भूले पथिककी भाँति है, इसमें सन्देह नहीं। वह भगवान् वज्रसत्त्वके निर्दिष्ट मार्गसे बहुत दूर विचरण करता है।''





: त्रयोदश यंत्र :

१	२	३	४	५	६	१५१	१५३	१५४	१५५	१५६	१५८	१५७
७	२५	२६	२७	२८	२९	१३०	१३२	१३३	१३४	१३६	१३५	१६३
९	३०	४५	४६	४७	४८	११३	११५	११६	११८	११७	१४०	१६१
१०	३२	४९	६१	६२	६३	१००	१०२	१०४	१०३	१२१	१३८	१६०
११	३३	५१	६४	७३	७४	९१	९२	९५	१०६	११९	१३७	१५९
१४६	१२६	११०	९८	९०	८४	८३	८८	८०	७२	६०	४४	२४
१४७	१२७	१११	९९	९३	८९	८५	८१	७७	७१	५९	४३	२३
१४८	१२८	११२	१०१	९४	८२	८७	८६	७६	६९	५८	४२	२२
१४९	१२९	११४	१०५	७५	९६	७९	७८	९७	६५	५६	४१	२१
१५०	१३१	१२०	६७	१०८	१०७	७०	६८	६६	१०९	५०	३९	२०
१५२	१३९	५३	१२४	१२३	१२२	५७	५५	५४	५२	१२५	३१	१८
१६२	३५	१४४	१४३	१४२	१४१	४०	३८	३७	३६	३४	१४५	८
१३	१६८	१६७	१६६	१६५	१६४	१९	१७	१६	१५	१४	१२	१६९

१७



तान्त्रिक तन्त्र



तान्त्रिक तन्त्र अर्थात् तन्त्र-विज्ञानके अनुसार किस तन्त्र या शक्तिका अनुष्ठान होता है और तन्त्रकी क्या व्यवस्था है यह स्पष्ट जान लेना चाहिए।

स्त्रीरूपां वा स्मरेद् देवीं पुंरूपां वा स्मरेत् प्रिये।
स्मरेद्वा निष्कलं ब्रह्म सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥

नेयं योषिन्न च पुमान् न षण्ढो न जडः स्मृतः।
तथापि कल्पवल्लीवत् स्त्रीशब्देन च युज्यते॥

साधकानां हितार्थाय ह्यरूपा रूपधारिणी॥

वह सच्चिदानन्दरूपिणी देवी चाहे स्त्रीरूपमें हो या पुरुषरूप में चाहे निष्कल ब्रह्मभावमें ही हो, उसका स्मरण करना चाहिए। वास्तवमें वह न तो स्त्री है, न पुरुष और न षण्ढ अथवा जड ही है। तथापि कल्पलता जैसे स्त्रीवाचक है, उसी प्रकार उनमें भी स्त्री शब्दका प्रयोग करना चाहिए। उनका रूप नहीं है, वह साधकके मंगलके लिये रूपधारिणी हैं।

प्रपञ्चसारमें लिखा है—

तामेतां कुण्डलीत्येके सन्तो हृद्ययनां विदुः।
सा रौति सततं देवी भृंगीसंगीतकध्वनिम्॥

वह महाशक्ति कुलकुण्डलिनी योगीन्द्रोंके हृदयको आश्रय बनाकर रहती हैं तथा वह ही जीवके मूलाधारमें निरत होकर भ्रमरसंगीतवत् गुनगुन ध्वनि किया करती हैं। शारदातिलकमें कहा गया है—

योगिनां हृदयाम्भोजे नृत्यन्ती नृत्यमञ्जसा।
आधारे सर्वभूतानां स्फुरन्ती विद्युदाकृतिः॥

शंखावर्त्तक्रमाद्देवी सर्वमावृत्य तिष्ठति।
कुंडलीभूतसर्पाणामंगश्रियमुपेयुषी॥

सर्ववेदमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा।
सर्वतत्त्वमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा विभुः॥

त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी॥

वे योगियोंके हृदयकमलमें अपने रूपका प्रकाश करके अपने आनन्दमें नृत्य करती रहती हैं। वे सर्वभूतके आधारपर विद्युतकी गतिसे घूमती रहती हैं, वे सार्द्ध-त्रिवलयाकारमें सबका आश्रय लेकर अवस्थान करती हैं। वह देवी कुण्डलीभूत सर्पोंकी अंगधारिणी, सर्ववेदमयी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वतत्त्वमयी, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, त्रिलोक-जननी और शब्दब्रह्मस्वरूपिणी हैं।

कुलार्णवतन्त्रमें लिखा है—



यः शिवः सर्वगः सूक्ष्मो निष्कलश्चोन्मनाव्ययः।
व्योमाकारो ह्यजोऽनन्तः स कथं पूज्यते प्रिये॥

अत एव गुरुः साक्षाद् गुरुरूपः समाश्रितः।
भक्त्या संपूजयेद् देवि! भुक्तिं मुक्तिं प्रयच्छति॥

शिवोऽहमाकृतिर्देवि! नरदृग्गोचरा न हि।
तस्माच्चगुरुरूपेण शिष्यान् रक्षामि सर्वदा।।

मनुष्यचर्मणा नद्धः साक्षात् परशिवः स्वयम्।
स्वशिष्यानुग्रहार्थाय गूढं पर्यटति क्षितौ।।

सद्भक्तरक्षणार्थाय निरहंकारमाकृतिः।
शिवः कृपानिधिर्लोके संसारीबहिर्चेष्टितः।।

जो शिव अर्थात् ईश्वर सर्वज्ञ, निष्कल, उन्मना, अव्यय, व्योमाकार, अज और अनन्त हैं, उनकी पूजा कैसे की जायगी? इसीलिये परम गुह्य स्वयं शिवने मानव गुरु रूपका आश्रय लिया है। देवि! उस परमगुरुकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे साधक मोक्ष प्राप्त करता है। देवि! यद्यपि मैं स्थूल रूप ग्रहण करके इस शिवमूर्त्तिमें हूँ, तथापि यह तेजोमय मूर्त्ति मनुष्यके नयन-गोचर होनेके योग्य नहीं है इसलिये नरलोकमें गुरुरूपका अवलम्बन करके मैं शिष्य-कुलकी सर्वदा रक्षा करता रहता हूँ। मनुष्य-चर्मसे आवृत होकर साक्षात् परमशिव सुशिष्य-वर्गपर अनुग्रह करनेके लिये गूढ रूपसे पृथिवीपर भ्रमण करते हैं।

इसीलिये तान्त्रिक गुरुओंका इतना आदर देखनेमें आता है और सबसे पहले उनकी ही पूजा होती है।

तन्त्रके मतसे कन्या-पुरुषका जन्मवृत्तान्त

कथं वा जायते पुत्रः शुक्रस्य कुत्र वा स्थितिः।
पद्ममध्ये गते शुक्रे सन्ततिस्तेन जायते।।
पुरुषस्य च यच्छुक्रं शुक्रं वा चाधिकं भवेत्।
तदा कन्या भवेद्देवि विपरीतात् पुमान् भवेत्।।
उभयोस्तुल्यशुक्रेण क्लीवं भवति निश्चितम्।।

(मातृकाभेदतन्त्र)

स्त्री और पुरुषके सहयोगसे पुत्र-कन्यादिकी उत्पत्ति होती है। पुरुषके सहवाससे स्त्रीके गर्भपद्ममें शुक्र अवस्थित होता है, इस प्रकारसे पुरुषका वीर्य अधिक होनेपर कन्या, स्त्रीका रज अधिक होनेपर पुत्र तथा रज और वीर्य समान होनेपर क्लीव (नपुंसक)-की उत्पत्ति होती है।

इस मतका आयुर्वेद आदिसे विरोध पाया जाता है।

बृहद्ब्रह्माण्डतत्त्व

महानिर्वाणतन्त्रमें बृहद्ब्रह्माण्डका स्वरूप इस प्रकार निरूपित हुआ है—

पहले मेरुपर्वत है, जहाँ समस्त देवताओंका वास है। इसके मध्य देशमें महाधीरा नदी प्रवाहित है। इस सुमेरुके ऊर्ध्वदेशमें सत्यलोक और अधोभागमें रसातल है। इस प्रकार मेरुके मध्य चौदह लोक और सात पाताल विद्यमान हैं। उसके ऊर्ध्वमें ब्रह्मपद्म है। उस चतुर्दशदल पद्मके नीचे बीज



कोषमें मनोहर वलयाकार सप्त समुद्रवेष्टित क्षितिचक्र अवस्थित है। उस क्षितिचक्रके बीचमें चतुष्कोण और मनोहर जम्बूद्वीप है जिसके चारों ओर नीलाचल, मन्दर, चन्द्रशेखर, हिमालय, सुबेल, मलय और भस्माचल पर्वत हैं। इन सब पर्वतोंके शिखरोंसे तृणगुल्मलताकीर्ण नाना प्रकारके पर्वत निकले हैं।

उक्त पद्मके ऊर्ध्वभागमें षट्पत्र और चतुर्द्वारभूषित भीम नामका पद्म है जिसके बीचके राजकोषमें मनोहर सिन्दूरवर्ण भुवर्लोक है। यहाँ लक्ष्मी और सरस्वतीके सहित विष्णु वास करते हैं। इसीका अपर नाम वैकुण्ठ है। वैकुण्ठके दक्षिणमें गोलोक है जहाँ राधिका देवी और द्विभुज मुरलीधर श्रीकृष्ण अवस्थान करते हैं। इसके भीतर और बाहर ज्योतिर्मण्डल है जहाँ इन्द्रादि देवता रहते हैं।

बीज कोषके बाहर जलमण्डल है। वहाँ गंगादि नदियाँ प्रवाहित हैं। इस पद्मके ऊर्ध्वदेशमें दशपत्रवाला नीलवर्ण व्योमरूप और जलयुक्त दुर्लभ महापद्म है जिसका अपर नाम स्वर्गलोक है। वहीं रुद्रालय है जहाँ भद्रकाली आदि वास करती हैं। इस पद्मके ऊर्ध्वदेशमें द्वादशपत्र-शोभित शुभ्रवर्ण सुन्दर पद्म है जो महर्लोक कहलाता है। यहाँ ईश्वरकी बाँईं ओर महाविद्याएँ अवस्थान करती है। इस महर्लोकका माहात्म्य गोलोकसे भी सौगुना है। इसके ऊपर षोडषपत्र-युक्त मोहान्धकारनाशक निर्मल पद्म है जो यमलोक कहलाता है। यहाँ बाँईं ओर गौरी और दाहिनी ओर सदाशिव विराजमान हैं। इस पद्मके ऊपर पत्रद्वयसमन्वित ज्ञानपद्म है जो तपोलोक कहलाता है। यहाँ शिवकी बाँईं ओर सदानन्दरूपिणी सिद्धकाली अवस्थान करती हैं।

तपोलोकं गोलोकस्य चतुर्लक्षगुणं शिवे।
ब्रह्मलोकेषु ये देवा वैकुंठे ये सुरादयः॥

तपसापि न लभ्येत तपोलोकमतः शिवे।
तपोलोकसमो नास्ति लोकमध्ये सुलोचने॥

सालोक्यं महर्लोकं स्यात् सारूप्यं जनलोकके।
सायुज्यं तपोलोकेषु निर्वाणं हि तदूर्ध्वगे॥

अतो ब्रह्मादयो देवास्तपोलोकार्थिनः सदा।
तस्य लोकस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते॥

गोलोकको अपेक्षा तपोलोक चार लाख गुना प्रधान है। ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ-स्थित देवगण भी तपस्याके द्वारा इस तपोलोकको नहीं पाते। इस तपोलोकके समान दूसरा कोई लोक नहीं है। महर्लोकमें सालोक्य, जनलोकमें सारूप्य और तपोलोकमें सायुज्य-लाभ होता है। इसके उपरान्त ही निर्वाण है। ब्रह्मादि सभी देवता इस तपोलोकको प्रार्थना किया करते हैं। इस लोकका माहात्म्य वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ।

किमाकारंतु ब्रह्माण्डं तन्मे ब्रूहि महेश्वर।
सृष्टिप्रकारं तन्मध्ये किमाकारं हि तत्त्ववित्॥



शंकर उवाच

जन्तोराकारब्रह्माण्डं नानाविग्रह पार्वति॥

ब्रह्माण्डं विग्रहं प्रोक्तं स्थूलक्षुद्रादिकं हि तत्।
मेरुः पर्वतस्तन्मध्ये तथा सप्तकुलाचलाः॥

मूलादिमस्तकान्तं वै सुमेरुर्नाम पर्वतः।
स्थितं मेरोरधोभागेद्वयंगुल्याश्चोर्ध्वदेशतः॥

भूर्लोकादि महेशानि सप्तवर्गक्रमेण हि।
द्वयंगुल्याः सप्तपातालास्तिष्ठन्ति परमेश्वरि॥

सत्यलोके निराकारा महाज्योतिः स्वरूपिणी।
माययाच्छादितात्मानं चणकाकाररूपिणी॥

हस्तपादादिरहिता चन्द्रसूर्याग्निरुपिणी।
मायावल्कलसंत्यज्या द्विधा भिन्ना यदोन्मुखी॥

शिवशक्तिविभागेन जायते सृष्टिकल्पना।
प्रथमो जायते पुत्रो ब्रह्मसंज्ञो हि पार्वति॥

ब्रह्माण्डका आकार कैसा है और सृष्टि किस प्रकार होती है? पार्वतीने महादेवसे ऐसा प्रश्न किया। उत्तरमें महादेवने कहा— हे पार्वति! नाना विग्रहविशिष्ट जन्तुका आकार ही ब्रह्माण्ड कहलाता है। उसमें मेरुपर्वत और सप्तकुलाचल (महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षपर्वत, विन्ध्य और पारियात्र ये सात कुल पर्वत) हैं। मूल आदिसे लेकर मस्तक-पर्यन्त सुमेरु पर्वत है। मेरुके ऊर्ध्वदेशमें भूर्लोकादि सप्तस्वर्ग और अधोभागमें सप्त पाताल हैं। सत्यलोकमें आकाररहित महाज्योतिःस्वरूपिणी महाशक्तिने मायाके द्वारा अपनेको आच्छादित कर रक्खा है। यह महाशक्ति चणकाकाररूपिणी तथा हस्तपादादिरहिता और चन्द्रसूर्याग्निस्वरूपिणी हैं। यह महाशक्ति मायारूप वल्कलका परित्याग करके स्वयं अपनेको दो भागोंमें विभक्त करती हैं। उस समय शिव और शक्ति विभागमें पहले सृष्टिकी कल्पना होती है तथा उसी समय प्रथम पुत्र लाभ होता है जिसका नाम है ब्रह्मा।

शृणु पुत्र महावीर विवाहं कुरु यत्नतः।
एतच्छुत्वा ततो ब्रह्मा उवाच सादरं प्रिये॥

त्वां विना जननी नास्ति शक्तिं मे देहि सुन्दरीम्।
तच्छुत्वा जगतां माता स्वदेहान्मोहिनीं ददौ॥

द्वितीया सा महाविद्या सावित्री परमा कला।
अस्याः संगं समासाद्य वेदविस्तारणं कुरु॥

अनायासं सृष्टिकर्त्ता भव त्वं महिमण्डले॥

इस प्रकार ब्रह्माके उत्पन्न होनेपर महाशक्तिने उनसे कहा— हे महावीर! तुम विवाह करो। ब्रह्माने इसके उत्तरमें शक्तिसे कहा— आपके अतिरिक्त मेरी और कोई भी जननी नहीं है, मैं विवाह नहीं करूँगा। आप मुझे शक्ति प्रदान करें। इसपर महाशक्तिने अपने शरीरसे मोहिनी शक्ति उत्पन्न करके ब्रह्माको दी और कहा— यह शक्ति द्वितीय महाविद्या और परम कला है। इसका नाम है सावित्री। तुम इसका संग करके वेदविस्तार करो। इस महीमण्डलपर तुम अनायास ही सृष्टिकर्त्ता हो जाओगे।



द्वितीयो जायते पुत्रो विष्णुः सत्त्वगुणाश्रयः।
शृणु पुत्र महावीर! विवाहं कुरु यत्नतः॥

तव दर्शनमात्रेण निष्कामी जायते पुमान्।
कथं करोमि हे मातः मोहिनीं देहि मे शिवे॥

देहाच्छक्तिश्च निर्गत्य ददौ तस्मै च कालिका।
श्रीवैष्णवीं महाविद्यां श्रीविद्यां परमेश्वरीम्॥

तामाश्रित्य महाविष्णुः पालयत्यखिलं जगत्।
तृतीयो जायते पुत्रो महायोगी सदाशिवः॥

तं दृष्ट्वा सा महाकाली तुष्टियुक्ताभवन् मुदा।
शृणु पुत्र महायोगिन् मद्वाक्यं हृदये कुरु॥

त्वां विना पुरुषो को वा मां विना कापि मोहिनी।
अतस्त्वं परमानन्द विवाहं कुरु मे शिव॥

शिव उवाच

यदुक्तं मयि हे मातस्त्वां विना नास्ति मोहिनी।
सत्यमेतज्जगन्मातः मां विना पुरुषो न च॥

अस्मिन् देहे संस्थिते च न करोमि विवाहकम्।
कुरु देहान्तरं मातः करुणा यदि वर्त्तते॥

तत्क्षणे सा महाकाली ददौ भुवनसुन्दरीम्।
तामाश्रित्य महायोगी संहरत्यखिलं जगत्॥

शम्भोरष्टविभागश्च शक्तिश्चाष्टविधा भवेत्।
कालिकाद्या महाविद्या ह्यनेन परमेश्वरि॥

इति ते कथितं कान्ते यथा ब्रह्मनिरूपणम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन विद्योत्पत्तिर्यथा प्रिये॥

उनके बाद द्वितीय पुत्र हुए जिनका नाम विष्णु है। ये अत्यन्त सत्त्वगुणप्रधान हैं। इन विष्णुके उत्पन्न होनेपर महामायाने उनसे कहा— हे पुत्र! तुम विवाह करो। विष्णुने कहा— माता आपके दर्शनसे ही मनुष्य निष्काम हो जाता है। मैं कैसे विवाह करूँ? आप मुझे मोहिनी शक्ति प्रदान करें। इसपर महाकालीने अपने शरीरसे शक्ति निकालकर उनको दी और कहा— इस शक्तिका नाम वैष्णवी और श्रीविद्या है। तुम इस शक्तिका आश्रय लेकर जगत्‌का पालन करना। विष्णु इसमें प्रवृत्त हुए। पश्चात् तृतीय पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम था सदाशिव। ये महायोगी थे। इनको देखकर महाकाली अत्यन्त प्रफुल्लित हुईं। उन्होंने सदाशिवसे कहा— हे पुत्र! मैं तुमसे जो कुछ कहती हूँ, तुम इसका अनुष्ठान करो। तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष नहीं है और न मेरे सिवा अन्य कोई स्त्री है इसलिये तुम मेरे साथ विवाह करो। महादेवने उत्तर दिया— हे मातः आपके अतिरिक्त अन्य स्त्री अथवा मेरे अतिरिक्त अन्य पुरुष नहीं, यह तो सत्य है, किन्तु जबतक आपकी यह देह रहेगी, तबतक मैं आपसे



विवाह नहीं कर सकूँगा। यदि मुझपर आपकी करुणा है तो आप इस देहको छोड़कर अन्य शरीर धारण कीजिए। इसपर महाशक्तिने भुवनसुन्दरीका रूप धारण किया। भुवनसुन्दरी और महाशक्ति एक ही हैं। महायोगी शिवने इन भुवनसुन्दरीका आश्रय लेकर अखिल जगत्‌का संहार किया। शिवके आठ विभाग हैं। महाशक्ति भी काली, तारा आदिके भेदसे आठ भागोंमें विभक्त हैं। हे पार्वती! इसीको ब्रह्मका स्वरूप समझो। यह अत्यन्त गोपनीय है।

चण्डिकोवाच

त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं नाथ परं ब्रह्मनिरूपणम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षितौ सृष्टिर्यथा भवेत्॥

शिव उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिः प्रजायते।
सत्यलोके महाकाली महारुद्रेण संयुता॥

चणकाकृतिविस्तारा चन्द्रसूर्यादिरूपिका।
अनादिरूपसंयुक्ता तदंशा जीवसंज्ञकाः॥

ज्वलदग्नेर्यथा देवी स्फुरन्ति विस्फुलिंगकाः।
तस्याश्च्युतं परं ब्रह्म यदा भूमौ पतत्यपि॥

तदैव सहसा देवि शक्त्या युक्तो भवत्यपि।
स्थावरादिषु कीटेषु पशुपक्षिषु शैलजे॥

चतुरशीतिलक्षं वै जन्म चाप्नोति सोऽव्ययः।
ततो लभेत् परेशानि मानुष्यां दुर्लभां तनुम्॥

यतो मानुषदेहत्तु धर्माधर्माधिपश्च सः।
ततोऽपि लभते जन्म पुनर्मृत्युमवाप्नुयात्॥

जायन्ते च मृयन्ते च कर्मपाशनियन्त्रिताः।
चतुरशीतिसहस्रेषु नानायोनिषु शैलजे॥

चण्डिकाने कहा— हे देवदेव! तुम्हारे प्रसादसे मुझे परब्रह्मतत्त्व ज्ञात हुआ। अब इस क्षितितलपर किस प्रकार सृष्टि होती है यह जानना चाहती हूँ। महादेवने कहा— हे देवि! सत्यलोकमें महारुद्र-द्वारा महाकाली संपुटित हुईं। यह महाकाली चन्द्रसूर्याग्नि-रूपविशिष्टा, अनादि-रूपसंयुक्ता और चणककी भाँति आकृतिविशिष्टा हैं। समस्त जीव इन महाकालीके अंशमात्र हैं। जिस प्रकार ज्वलदग्निके विस्फुलिंग स्फुरित तो होते हैं किन्तु वे अग्निसे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार जीव भी महाकालीसे भिन्न न होकर उनके अंशमात्र हैं। महाकालीसे च्युत होकर जिस समय परब्रह्म भूमिपर पड़े उसी समय वे शक्तियुक्त हुए और स्थावरादि कीट और पशुपक्षी आदि चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लिया। उसके पश्चात् उन्होंने दुर्लभ मनुष्यत्व प्राप्त किया। यह मनुष्य शरीर ही धर्म और अधर्मका आकार है। इस धर्माधर्मके द्वारा मनुष्य एक बार जन्म लेकर फिर मरता है। इस तरह मानव-समूह कर्म-पाश-द्वारा नियन्त्रित होकर नाना प्रकारकी योनियोंमें परिभ्रमण करता रहता है।



: चतुर्दश यंत्र :

१	२	३	४	२१	२२	२४	१८९	१८८	१८७	१८६	१८५	१८४	१८३
१५	२७	२८	२९	४२	४३	४४	१६४	१६३	१६२	१६१	१६०	१५९	१८२
१६	३९	४९	५१	५३	६३	६४	१४३	१४२	१४१	१४०	१३९	१५८	१८१
१७	४०	५९	६७	६८	७७	७८	१२६	१२५	१२४	१२३	१३८	१५७	१८०
१८	४१	६०	७५	८१	८७	८९	११२	११३	१०९	१२२	१३७	१५६	१७९
२५	४७	६५	७९	८६	९८	९१	१००	१०५	१११	११८	१३२	१५०	१७२
१७१	१४९	१३१	११७	१०७	१०३	१०२	९३	९६	९०	८०	६६	४८	२६
१७४	१५१	१३५	१२१	११४	१०१	१०४	९५	९४	८३	७६	६२	४६	२३
१७७	१५२	१३६	१२७	११५	९२	९७	१०६	९९	८२	७०	६१	४५	२०
१७८	१६५	१४५	१२८	८८	११०	१०८	८५	८४	११६	६९	५२	३२	१९
१९०	१६६	१४७	७४	१२९	१२०	११९	७१	७२	७३	१३०	५०	३१	७
१९१	१६७	५८	१४६	१४४	१३४	१३३	५४	५५	५६	५७	१४८	३०	६
१९२	३८	१६९	१६८	१५५	१५४	१५३	३३	३४	३५	३६	३७	१७०	५
१४	१९५	१९४	१९३	१७६	१७५	१७३	८	९	१०	११	१२	१३	१९६

१८



महाविद्याएँ



शाक्त तान्त्रिक लोग जिन दस देवियोंकी उपासना करते हैं वे ही दस महाविद्याएँ कहलाती हैं। चामुण्डा-तन्त्रमें उन्हें गिनाते हुए कहा गया है-

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ताव च तथा धूमावती स्मृता।।
वगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दशमहाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः।।

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, वगला, मातंगी और कमलात्मिका, ये दस महाविद्याएँ ही सिद्धविद्या कहलाती हैं।

काली

दस महाविद्याओंमेंसे कालीकी उत्पत्तिकी कथा महाभागवतमें यह दी गई है कि जब अपने पिता दक्षके यज्ञमें जानेको सती बहुत मचल उठीं और शिवजीने उन्हें जानेकी अनुमति नहीं दी तब सती बड़ा भयंकर काला रूप बनाकर, बाल बिखराए, जीभ लपलपाए, चार भुजाएँ बनाए, गर्जन करती हुईं, गलेमें मुण्डमाला डाले और माथेपर चन्द्रमा धारण किए शिवजीके आगे जा खड़ी हुईं। यह भयानक रूप देखकर तो शिवजी भाग चले पर तभी उस भंयकर काली मूर्त्तिने दस रूप बनाकर उनका मार्ग रोक लिया। जब उन्हें किधर भी जानेका मार्ग न मिला तब वे आँखें मूँदकर बैठ गए।

जब उन्होंने आँखें खोलीं तब देखा कि खिले हुए कमल-जैसे मुखड़ेवाली, हँसती हुई, बड़ी बड़ी आँखोंवाली और चार भुजाओंवाली एक सुन्दरी देवी आई खड़ी हैं। शिवजीने उनसे पूछा-देवि! तुम कौन हो और मेरी प्यारी धर्मपत्नी कहाँ है?

देवीने कहा— मैं ही तो तुम्हारी धर्मपत्नी सती हूँ।

तब शिवजीने पूछा कि यदि तुम सचमुच सती हो तो दसों दिशाओंमें मेरा मार्ग रोककर आ खड़ी होनेवाली वे देवियाँ कौन थीं?

सतीने कहा— वे दसों मेरी ही तो मूर्त्तियाँ थीं। फिर शिवजीके पूछनेपर सतीने उनका नाम बताते हुए कहा कि इनके नाम हैं— काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरसुन्दरी, वगलामुखी, धूमावती और मातंगी।

यह सुनकर शिवजीने कहा— अच्छा, यदि तुम अपने पिताके यज्ञमें जाना ही चाहती हो तो तुम्हें कौन रोकनेवाला है। इतनेमें सब दसों देवियाँ सतीके भीतर समा गईं और वे सिंहपर चढ़कर अपने पिताका यज्ञ देखने चल दीं।

तन्त्र-ग्रन्थोंमें महाविद्याओंकी उत्पत्तिके विषयमें लिखा है कि गौरी होनेपर भी कलियुगमें जब देवीका रंग काला पड़ गया तब उनका नाम नीलसरस्वती पड़ गया। वे सब प्राणियोंको तारती रहतीं, उनका उद्धार करती रहती हैं इसलिये उन्हें तारा कहा जाता है। वे चौदहों भुवनोंका पालन करनेके कारण भुवनेश्वरी कहलाती हैं। वे सबको श्री (लक्ष्मी, धन, वैभव, ऐश्वर्य) देती रहती हैं इसलिये उनका नाम श्री है। वे त्रिगुणातीत (सत्त्व, रजस, तमस् गुणोंसे अतीत) हैं इसलिये उन्हें षोडशी कहते हैं। वे सबके दुःख दूर करके सबकी रक्षा करतीं और भैरवकी माया हैं इसलिये उन्हें भैरवी कहते



हैं। वे अपना मस्तक काटे लिए रहती हैं, मोहिनी और मोक्ष देनेवाली हैं इसलिये वे छिन्नमस्ता कहलाती हैं। उन्होंने ही शुंभ-निशुंभके सेनापति धूम्रलोचनको मार डाला था और उनका रंग भी धूएँ-जैसा है इसलिये वे धूमावती कहलाती हैं। वे वगला इसलिये कहलाती है कि उनके नामके 'व' अक्षरका अर्थ है वारुणी देवी, 'ग'का अर्थ है सिद्धि-देनेवाली और 'ल'का अर्थ है चैतन्यरूपिणी पृथ्वी। उन्होंने मतंग नामके असुरको मारा था और वे सबकी विपदाएँ दूर करती रहती हैं इसलिये उनका नाम मातंगी पड़ा। वे सदा वैकुण्ठमें रहती हैं इसलिये उनका नाम कमला पड़ा।

नारद-पांचरात्र (३१३)में इन महाविद्याओंकी उत्पत्तिके विषयमें कहा गया है कि सतीने दक्षके यज्ञमें अपना शरीर छोड़कर जब हिमालयराजके घर मेनाकी कोखसे जन्म लिया तब उनका नाम काली रक्खा गया।

स्वतन्त्र-तंत्रके अनुसार जब पार्वतीजीने उज्जयिनीमें महारात्रि (प्रलयकी रात्रि)-के दिन कालीका रूप बनाया था तब उनका नाम काली पड़ा।

नारद पांचरात्रमें ही कहा गया है कि दक्षकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होनेवाली देवीका नाम सती, कैवल्य या मोक्ष देनेवाली होनेके कारण एकजटा, सबको तारने के कारण तारा, सबको वाणीकी शक्ति देनेके कारण नीलसरस्वती और उग्र होनेके कारण उग्रा है।

उसी प्रसंगमें स्वतन्त्र-तन्त्रमें लिखा है कि कालरात्रि (प्रलयकी रात्रि)के दिन इन्होंने उग्र (भंयकर) आपत्तिसे लोगोंका तारण (उद्धार) किया था इसलिये इनका नाम उग्रतारा पड़ा। मेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर नील सरोवरमें गिरनेसे उनका रंग नीला हो गया था जिससे उनका नाम नीलसरस्वती पड़ गया।

षोडशी

षोडशीकी उत्पत्तिके विषयमें नारदपांचरात्रमें लिखा है कि एक बार इन्द्रकी भेजी हुई अप्सराओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर शिवजीने उनसे कहा कि तुम कालीके पास भी चली जाना। जब अप्सराएँ लौट गईं तब शिवजीके मुँहँसे यह सब सुनकर काली अपना काला रूप छोड़कर गौरी हो गईं और चली गईं। जब शिवजीने देखा कि काली नहीं है तब वे चुपचाप वहीं रहने लगे।

जब नारदजीने वहाँ आकर उनसे पूछा कि काली कहाँ गईं तब शिवजीने कहा कि न जाने वह कहाँ छोड़कर चली गईं। पर नारदजीने ध्यान लगाकर देखा कि वे सुमेरुके उत्तरमें जा बसी हैं। झट नारदजी जब वहाँ पहुंचे तब देवीने पूछा-कहो, शिवजी मेरे बिना कैसे दिन काट रहे हैं? नारदजी तो मेल मिलानेकी सब रीतियाँ जानते थे। उन्होंने कहा— क्या बताऊँ, वे तो बड़े राग-रंगकी तैयारीमें लगे हैं। आप ज़ाकर रोकिए नहीं तो न जाने क्या हो जाय। सुनते ही देवी सोलह बरसकी छबीली नवेली बनकर शिवजीके पास कड़कती हुई पहुँचं गईं। पर वहाँ जाकर वे नारदजीकी चाल समझ गईं। शिवजीने कहा—तुम इतना सुन्दर रूप बनाकर आई हो इसलिये स्वर्गमें तुम्हें सब सुन्दरी, मर्त्यलोकमें पञ्चमी और पाताललोकमें त्रिपुरसुन्दरी कहेंगे। यहाँ आकर मेरे हृदयमें अपनी छाया देखकर जो तुम डर गई थीं तो तुम त्रिपुरभैरवी कहलाओगी और कृपामयी होनेसे तुम भुवनेश्वरी, राजराजेश्वरी, उग्रतारिणी, दिक्करवासिनी, ललितकान्ता, मंगल-चण्डिका, कौशिकी, देवदूती, भुवनेश्वरी, त्रिपुरा, जयदुर्गा, वनदुर्गा, त्रिकंटकी, कात्यायनी, महिषघ्नी, दुर्गा, वनदेवता, श्रीरामदेवता, वज्रप्रस्तारिणी, शूलिनी, गृहदेवी, मेधा, राधा, कालिका आदि कहलाओगी।



छिन्नमस्ता

छिन्नमस्ताकी उत्पत्तिके विषयमें नारदपांचरात्रमें लिखा है कि एक बार मन्दाकिनीमें स्नान करके देवी पार्वती काली हो गईं। उस समय उनके साथकी डाकिनी और वर्णिनी नाम की दो सहचारियोंने कहा— अब तो देवि! बड़ी भूख सताए डाल रही है, पेटमें चूहे चकरडंड लगा रहे हैं। देवीने कहा— चलो, घर चलकर कुछ जुगाड़ किए देती हूँ। जब बहुत देर होनेपर भी कुछ खानेको न मिला और वे फिर भूख भूख चिल्लाती रहीं तब देवीने अपने नखोंसे अपना सिर काटकर अपने बाँएँ हाथपर ले लिया और लहूकी जो तीन धाराएँ निकलीं उनमेंसे दो तो उन्होंने अपनी दो सहचारियोंके मुँहँसे लगा दीं और एक अपने मुँहँमें डाल ली। तबसे उनका नाम छिन्नमस्ता पड़ गया। स्वतन्त्रतन्त्रमें भी लगभग यही वर्णन है।

मातंगी

मातंगीकी उत्पत्तिके विषयमें नारद-पाञ्चरात्रमें कहा गया है कि जब पार्वतीसे शिवजीने कहा कि दक्षके यज्ञमें जाना तो मैं भी चाहता था पर बिना बुलाए जाना ठीक नहीं होता तब पार्वतीने कहा— अच्छा, मेरे जानेके पश्चात् आप भी आ जाइएगा। इतनेमें सतीकी माताका भेजा हुआ दूत क्रौंच भी उन्हें बुलाने आ गया जिसके साथ शिवजीने पार्वतीको हिमालयराजके यहाँ भेज दिया जहाँ पार्वतीजीकी माता मेना उत्सव मना रही थीं।

थोड़ी देरमें शिवजी भी शंख बेचनेवालेका रूप बनाकर वहाँ जा पहुँचे और वहाँ पार्वतीको छोड़कर सबको उन्होंने एक एक शंख दे दिया। जब पार्वतीने शंख मांगा तब शँख बेचनेवालेका बाना बनाए हुए शिवजीने कहा कि शंख तो मैं दे दूँगा पर इसका मोल यह है कि तुम्हें मेरे साथ रहना पड़ेगा। अब तो पार्वती बिगड़ खड़ी हुईं कि ऐसी अपमानजनक बात तुम्हारे मुँहँसे निकली कैसे? पर झट ध्यान लगाते ही उन्होंने देखा कि ये तो साक्षात् महेश्वर हैं। तब तो वे लजा गईं और हँसकर बोलीं— अच्छा जाओ, कुछ दिनोंमें मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगी।

थोड़े दिनों पीछे पार्वती किरातिनीका वेष बनाकर अपनी सखियोंके साथ वहाँ जा पहुँची जहाँ शिवजी बैठे संध्या कर रहे थे। शिवजीके पूछनेपर देवीने कहा— मैं हूँ तो चांडालिनी पर देवी बननेके लिये यहाँ तप करने चली आई हूँ। शिवजीने कहा— मैं शिव हूँ। मैं अभी तुम्हें देवी बनाए देता हूँ। यह कहकर शिवजीने हाथ पकड़कर उसे अपनी गोदमें खींच बैठाया। जब देवीने कहा अब वर दीजिए, तब शिवजीने कहा कि तुम्हारे संसर्गसे मैं भी चांडाल हो गया हूँ इसलिये तुम भी चांडालिनी हो गई हो, पर सब लोग तुम्हारे इस मातंगी (चांडालिनी) रूपकी भी पूजा किया करेंगे। जैसे सिद्धविद्या, महाविद्या, त्रिपुरभैरवी, काली, तारा, भुवनेश्वरी, तुम्हारे रूप हैं वैसे ही भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, वगला आदि सिद्धविद्याएँ भी तुम्हारे ही रूप होंगे।

स्वतन्त्रतन्त्रमें लिखा है कि नारदके पूछनेपर विष्णुजीने उनसे कहा कि एक बार जब मैं (विष्णु) शिवजीके यहाँ पहुँचा तब देखा कि शिवजी बहुतसे नीच जातिके लोगोंसे घिरे बैठे हैं और वहाँ सब एक दूसरेका जूठा खा-पी रहे हैं। पार्वतीजीने भी आकर कहा -मुझे भी यह जूठा (उच्छिष्ट) प्रसाद दो। वह जूठा प्रसाद खानेसे पार्वतीजीका नाम उच्छिष्ट मातंगी पड़ गया।



उसी तन्त्रमें आगे चलकर कथा दी गई है कि एक कदम्बके जंगलमें सब भूतों (प्राणियों)-को

वशमें करनेके लिये मतंग ऋषि तप कर रहे थे। वहीं देवी सुन्दरीके नेत्रोंसे जो तेज निकला वही पहले श्रीकालिका या अम्बिकाके रूपमें परिणत हो गया और फिर वही जब काले रंगकी हो गईं तब उनका नाम राजमातंगिनी पड़ गया।

धूमावती

धूमावतीकी उत्पत्तिके विषयमें नारद-पांचरात्रमें लिखा है कि एक बार पार्वतीजीने शिवजीसे कहा कि मुझे बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो। जब शिवजी टाल-मटोल करते रहे तब देवीने आव देखा न ताव, झट शिवजीको ही अपने मुँहमें पकड़ धरा। रखनेको तो उन्होंने शिवजीको मुँहमें रख लिया पर तभी उनके शरीरसे धुँआँ निकलने लगा था इसलिये लोग उन्हें धूमावती कहने लगे।

स्वतन्त्रतन्त्रमें लिखा है कि जब सतीने दक्षके यज्ञमें अपना शरीर योगाग्निसे जला लिया तब उनके शरीरसे धुँआँ निकलने लगा था इसलिये उनका नाम धूमावती पड़ गया।

वगलामुखी

वगलामुखीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें स्वतन्त्रतन्त्रमें लिखा है कि एक बार सत्ययुगमें ऐसा भयंकर बवंडर उठ खड़ा हुआ कि जान पड़ता था वह सारे जीवों और पेड़-पौधोंका नाश कर डालेगा। यह देखकर विष्णुजीको बड़ी चिन्ता हुई। तब उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर त्रिपुराम्बिका प्रकट हो गईं और वे वगलाम्बिका सौराष्ट्रके हरिद्रा नामवाले पीले पानीके सरोवरमें उतरकर जलक्रीडा करने लगीं। वहीं देवीने उस सरोवरके पीले जलमें ब्रह्मशास्त्र-विद्यासे उत्पन्न विष्णुका तेज मंगलवारको चतुर्दशीके दिन स्थापित कर दिया जिससे वह रात्रि वीररात्रि कहलाती है। उसी वीररात्रिके दिन आधी रातको पीले सरोवरवाली वे देवी उत्पन्न हुईं जिन्हें वगलामुखी कहते हैं। वे विष्णुके तेजसे उत्पन्न हुई थीं।

महालक्ष्मी (कमला)

पहले जब ब्रह्माने सृष्टि उत्पन्न करनेके लिये घोर तपस्या की तब उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर चैत्र शुक्ला नवमीको तारिणी उत्पन्न हो गईं जिन्हें सर्वशक्तिमयी और क्रोधरात्रि भी कहते हैं। वे ही पहले समुद्र-मंथनसे निकली थीं और वे ही विष्णुके हृदयमें विराजमान हैं। उन्होंने भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको कोलासुरको मारा था। उसी दिन महामातंगिनी भी उत्पन्न हुई थीं। फाल्गुनकी एकादशीको या जिस दिन मंगलवार या शुक्रवारको एकादशी तिथि पड़ती हो उसी तिथिको महालक्ष्मीका जन्म हुआ था। प्रत्येक महाविद्याके अपने अपने अलग भैरव हैं।

तारा

नारदपाञ्चरात्रमें लिखा है—ज़ो दक्ष गृहमें उत्पन्न हुई थीं उनका नाम सती है, कैवल्यदायिनी होनेके कारण उनका नाम एकजटा है। वे ही सब भूतोंका तारण करती हैं इसीसे उनका नाम तारा पड़ा है अथवा लीलाक्रमसे वाग्दान करती हैं इसीसे इनका नाम नीलसरस्वती और उग्रत्वके कारण उग्रतारिणी नाम पड़ा है।



स्वतन्त्रतन्त्रमें लिखा है— कालरात्रिके दिन दो प्रहर रातको इन्होंने उग्र आपदसे तारण किया था, इसीसे इनका नाम उग्रतारा पड़ा। मेरुके पश्चिम कूलमें चोल नामक एक महाह्रद है। इस ह्रदमें माता नीलसरस्वतीने जन्म ग्रहण किया और यहाँ वे तीन युगोंतक जप करती रहीं। ऊर्ध्व वक्त्रसे तेजोराशिके

चोल ह्रदमें गिरनेके कारण इनका वर्ण नीला हो गया था, इसीसे वे नीलसरस्वती नामसे प्रसिद्ध हैं।

भैरवी, भुवनेश्वरी

जिस समय शंकर रमणीय कैलास शिखरपर वास कर रहे थे, उस समय इन्द्रने उनका स्तव करनेके लिये अप्सराओंको भेजा था। इसपर महादेव सन्तुष्ट होकर बोले— पुरुषका अतिथि पुरुष है, स्त्रीकी अतिथि स्त्री है। इस कारण तुम लोग कालीके निकट जाओ। इतना कहकर महादेव तो रमणीयपुर चले गए और अप्सराएँ भी परम दुर्लभ प्रीति प्राप्त करके वापस चली आईं। महादेवने यह वृत्तान्त कालीसे कहा। इसपर काली बहुत चिन्ता करने लगीं और कालीरूपका परित्याग करके शुद्ध गौरी हो गईं। महादेव भी काली काली कहकर चिल्लाने लगे। महादेवने अन्तःपुरमें जाकर जब कालीको नहीं देखा तब वे वहीं रहने लगे। किसी समय नारदजी वहाँ जा पहुँचे। महादेवने नारदके शरीरको बाँएँ हाथसे स्पर्श करके उनका सत्कार किया और अनेक प्रकारकी बातचीत की। नारदने महादेवसे पूछा— कालविनाशिनी काली आपको छोड़कर कहाँ चली गई हैं? महादेवने कहा— काली हमें छोड़कर अन्तर्हित हो गई हैं। यह सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने ध्यानचक्षुसे देखा कि सुमेरुके उत्तरपार्श्वमें महादेवी अवस्थान कर रही हैं। इसपर नारद महामायाके पास गंए और उन्हें प्रणाम करके वहीं रहने लगे। महादेवीने नारदसे पूछा— महादेव मेरे बिना किस प्रकार रहते हैं। उनका कुशल संवाद हमें बताओ। इसपर नारदजीने कहा— हे गिरिसुते! देवदेव महादेव परम विहारके लिये उद्योग कर रहे हैं, आप उन्हें चलकर रोकिए। यह सुनकर देवी बहुत बिगड़ीं और उनकी आँखें लाल लाल हो गईं। तब देवीने दूसरा रूप धारण किया। उन्होंने जैसा सौन्दर्य धारण किया, वैसा तीनों लोकोंमें कहीं भी न था। ऐसा अतुलनीय रूप धारण करके वे जहाँ भगवान् महेश्वर रहते थे, वहीं उपस्थित हुईं। महादेवी ने शम्भुके हृदयमें अपनी छाया देखकर बहुत क्रोधित होकर कहा— हे कृतघ्न! तुम मेरे साथ प्रतिज्ञारूपी पाशसे बँधे हुए हो, तो फिर क्यों उसे उल्लंघन करते हो? तुमने विवाह करके मुझे अपने हृदयमें स्थान दिया है। महादेव कालीकी ऐसी क्रोधभरी बातें सुनकर कुछ मुसकुराकर बोले— हे कल्याणी! मैं कृतघ्न नहीं हूँ और न मैंने प्रतिज्ञाका ही उल्लघंन किया है। मेरे हृदयमें जो देखती हो वह तुम्हारी ही छाया है, इसमें सन्देह नहीं। पीछे कालीको जब ज्ञात हुआ कि यह उन्हींकी छाया है तब वे कुछ शान्त हुईं और महादेवजीसे बोलीं— वह छाया किसकी है? हमें बताइए।

यह सुनकर महादेवजीने कहा— हे शिवे! तुमने त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ रूप धारण किया था। इसीसे स्वर्ग और पातालमें क्रमशः सुन्दरी, पञ्चमी और त्रिपुरसुन्दरी नामसे प्रसिद्ध होगी और सर्वदा षोडशवर्षीया होकर षोडशी नाम भी धारण करोगी। आज मेरे हृदयमें अपनी छाया देखकर तुम डर गई थीं इसीसे तीनों लोकोंमें तुम्हारा नाम त्रिपुरभैरवी होगा। भगवतीकी कृपामयी सुस्थचित्ताकी जो अवस्था है उसे तुम भुवनेश्वरी और राजराजेश्वरी समझो। यह कृपामयी अवस्था उग्रतारिणी, दिक्कवासिनी, ललितकान्ता, मंगलचण्डिका कौशिकी, देवदूती आदि नामोंसे प्रसिद्ध होंगी। उनका एक नाम भुवनेश्वरी भी होगा जिनके अनेक भेद होंगे। त्रिपुरा, जयदुर्गा, वनदुर्गा, त्रिकंटकी, कात्यायनी, महिषघ्नी, दुर्गा, वनदेवता, श्रीरामदेवता, वज्रप्रस्तारिणी, शूलिनी, गृहदेवा, मेधा, राधा, कालिका आदि।



इन सब महाविद्याओंके रूपोंका ध्यान, उनके यन्त्र और मन्त्र परिशिष्टमें दे दिए गए हैं। केवल

जपमन्त्र दिए गए हैं, गुह्य मन्त्र केवल सिद्ध गुरु ही जानता है और वही दे सकता है। सकाम साधनावालोंको स्वयं जपमन्त्र करना चाहिए। केवल निष्काम साधनावाले ही अर्थात् लोक-कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले और सब प्रकारकी शक्ति प्राप्त करनेवाले साधक ही अपने सिद्ध गुरुकी देखरेखमें गुह्य-मन्त्रका जप और गुह्य साधना करते हैं।

प्रत्येक साधकको यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि किसी भी महाविद्याका जप स्वयं करना चाहिए, किसी भी दूसरेसे नहीं कराना चाहिए। प्रायः बहुतसे लोग किसी पंडितसे श्रीविद्या या वगलामुखीका जप कराते हैं। इससे कोई फल नहीं होता इसलिये इन सब महाविद्याओंका जप और अनुष्ठान स्वयं ही करना चाहिए।





૧	૨	૩	૪	૫	૬	૭	૨૦૪	૨૦૬	૨૦૭	૨૦૮	૨૦૯	૨૧૦	૨૧૨	૨૧૧
૮	૨૯	૩૦	૩૧	૩૨	૩૩	૩૪	૧૭૯	૧૮૧	૧૮૨	૧૮૩	૧૮૪	૧૮૬	૧૮૫	૨૧૮
૧૦	૩૫	૫૩	૫૪	૫૫	૫૬	૫૭	૧૫૮	૧૬૦	૧૬૧	૧૬૨	૧૬૪	૧૬૩	૧૯૧	૨૧૬
૧૧	૩૭	૫૮	૭૩	૭૪	૭૫	૭૬	૧૪૧	૧૪૩	૧૪૪	૧૪૬	૧૪૫	૧૬૮	૧૮૯	૨૧૫
૧૨	૩૮	૬૦	૭૭	૮૯	૯૦	૯૧	૧૨૮	૧૩૦	૧૩૨	૧૩૧	૧૪૯	૧૬૬	૧૮૮	૨૧૪
૧૩	૩૯	૬૧	૭૯	૯૨	૧૦૧	૧૦૨	૧૧૯	૧૨૦	૧૨૩	૧૩૪	૧૪૭	૧૬૫	૧૮૭	૨૧૩
૧૯૮	૧૭૪	૧૫૪	૧૩૮	૧૨૬	૧૧૮	૧૧૨	૧૧૧	૧૧૬	૧૦૮	૧૦૦	૮૮	૭૨	૫૨	૨૮
૧૯૯	૧૭૫	૧૫૫	૧૩૯	૧૨૭	૧૨૧	૧૧૭	૧૧૩	૧૦૯	૧૦૫	૯૯	૮૭	૭૧	૫૧	૨૭
૨૦૦	૧૭૬	૧૫૬	૧૪૦	૧૨૯	૧૨૨	૧૧૦	૧૧૫	૧૧૪	૧૦૪	૯૭	૮૬	૭૦	૫૦	૨૬
૨૦૧	૧૭૭	૧૫૭	૧૪૨	૧૩૩	૧૦૩	૧૨૪	૧૦૭	૧૦૬	૧૨૫	૯૩	૮૪	૬૯	૪૯	૨૫
૨૦૨	૧૭૮	૧૫૯	૧૪૮	૯૫	૧૩૬	૧૩૫	૯૮	૯૬	૯૪	૧૩૭	૭૮	૬૭	૪૮	૨૪
૨૦૩	૧૮૦	૧૬૭	૮૧	૧૫૨	૧૫૧	૧૫૦	૮૫	૮૩	૮૨	૮૦	૧૫૩	૫૯	૪૬	૨૩
૨૦૫	૧૯૦	૬૩	૧૭૨	૧૭૧	૧૭૦	૧૬૯	૬૮	૬૬	૬૫	૬૪	૬૨	૧૭૩	૩૬	૨૧
૨૧૭	૪૧	૧૯૬	૧૯૫	૧૯૪	૧૯૩	૧૯૨	૪૭	૪૫	૪૪	૪૩	૪૨	૪૦	૧૯૭	૯
૧૫	૨૨૪	૨૨૩	૨૨૨	૨૨૧	૨૨૦	૨૧૯	૨૨	૨૦	૧૯	૧૮	૧૭	૧૬	૧૪	૨૨૫

१८



दसों महाविद्याओंकी साधना



महाविद्याओंकी साधना दो भावोंसे होती है। जो सकाम साधना करते हैं उनकी साधना-पद्धति भिन्न होती है और जो निष्काम साधना करते हैं उनकी साधना पूर्णत: भिन्न होती है। सकाम साधक विद्या, भूमि, भवन, यान, स्त्री, पुत्र, पशु, पद, शत्रुनाश आदि लौकिक इच्छाओंकी पूर्तिके लिये साधना करते हैं। ऐसे साधकोंको भी किसी सिद्ध गुरुके पास ही जाकर दीक्षा लेनी चाहिए। उनके आदेशानुसार साधनाके लिये यम, नियम, प्राणायाम, आसन और प्रत्याहारकी साधना करनी पड़ती है। जब सिद्ध गुरु यह समझ लेता है कि साधकका मन पूर्णत: एकाग्र हो गया है, तब वह सकाम साधकको तीन बार दाहिने कानमें जप मन्त्र देता है और साथ ही जपका समय, आसन और विधान सब बता देता है। सकाम साधककी साधनामें प्राय: विघ्न नहीं आते फिर भी सिद्ध गुरुकी देख-रेखमें ही साधना करनी चाहिए।

दस महाविद्याओंमें सबसे सरल साधना षोडशीकी ही है क्योंकि षोडशी ही त्रिपुरभैरवी, भुवनेश्वरी आदि अनेक नामोंसे प्रसिद्ध हैं। षोडशीकी साधना करनेसे अन्य सब महाविद्याएँ भी शीघ्र सिद्ध हो जाती हैं। तन्त्रशास्त्रवाले मानते हैं कि षोडशी चालीस दिनमें ही सिद्ध हो जाती हैं और उग्रताराको छोड़कर अन्य सब महाविद्याएँ चालीस चालीस दिनमें ही सिद्ध हो जाती हैं। सब प्रकारके भौतिक सुखोंके लिये सकाम साधक षोडशीकी ही उपासना और साधना करते हैं।

त्रिपुरसुन्दरीको ही श्रीविद्या भी कहते हैं। जो साधक अधिक धन चाहता हो उसे त्रिपुरसुन्दरी या श्रीविद्याकी ही उपासना करनी चाहिए। किन्तु जिसने कभी कोई मादक पदार्थ सेवन न किया हो उसे ही श्रीविद्या सिद्ध होती है। श्रीविद्या सिद्ध करनेके लिये एकाग्र चित्तसे श्रीयन्त्रकी पूजा करनी चाहिए। यह पूजा प्रात:काल सूर्योदयसे प्रारम्भ करके तीन घड़ीतक (७२ मिनटतक) करनी चाहिए। उसके पश्चात् श्रीसूक्तकी निम्नांकित पन्द्रह ऋचाओंको पढ़ते हुए एक एक ऋचाके साथ 'ॐ श्रियै स्वाहा' कहकर आज्य (पिघले हुए घी)-की आहुति देनी चाहिए।

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥

कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामाद्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनेमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतांत वां वृणोमि॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्व:।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या आन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मी:॥



उपैतु0 मां देवसख: कीर्त्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्त्तिमृद्धिं ददातु मे॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।

मनसः काममाकूतीं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्॥

जिस सकाम साधकको श्रीविद्या सिद्ध हो जाती है उसे कभी किसी प्रकारकी कमी नहीं होती। वह स्वस्थ और सुखी होकर पूर्णायु प्राप्त करता है। किन्तु यह साधना स्वयं करनी चाहिए। किसी दूसरेसे नहीं करानी चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कोई भी यह विद्या सिद्ध कर सकते हैं यदि उनका उपनयन संस्कार विधिवत् हुआ हो क्योंकि जो उपनीत नहीं होता उसे यह विद्या सिद्ध नहीं होती।

निष्काम साधना

बहुतसे साधक केवल लोक-कल्याणके लिये महाविद्याओंकी साधना करके लोक-कल्याण करते रहते थे। इन साधकोंको बड़ी कठोर साधना करनी पड़ती थी। प्रारम्भमें जप-मन्त्र सिद्ध होनेपर निष्काम साधकके गुरु जब यह देख लेते थे कि साधकको जप-सिद्धि प्राप्त हो गई है तब वे गुह्य मन्त्र देते थे। तन्त्र-साधनामें गुह्य मन्त्र केवल गुरु ही जानता है और वह ही निष्काम साधकको गुह्य मन्त्रकी दीक्षा देता है। ये गुह्य मन्त्र कहीं लिखे नहीं मिलते, केवल गुरु ही विभिन्न महाविद्याओंके गुह्य मन्त्र जानता है और जब वह गुह्य मन्त्र साधकको मिल जाता है तब साधक केवल फुसफुसाकर अर्थात् केवल होठही होठसे मन्त्रका जप करता है, कभी भी उच्च स्वरसे गुह्य मन्त्रका पाठ नहीं करता। यद्यपि जप-मन्त्रके लिये भी यही नियम है तथापि जप-मन्त्र तो किसीको दिया जा सकता है किन्तु गुह्य मन्त्र न दिया जा सकता है न सुनाया जा सकता।



गुह्य मन्त्रका जप रात्रिके तृतीय प्रहरसे प्रारम्भ करके चतुर्थ प्रहरतक गुरुकी देखरेखमें ही किया जाता है अर्थात् रात बारह बजेसे तीन बजेतक इस गुह्य मन्त्रका जप किसी ऐसे एकान्त स्थानमें किया जाता है जहाँ किसी प्रकारका, किसी प्राणीका स्वर न सुनाई पड़े। गुह्य मन्त्रकी साधनाका कोई समय

निश्चित नहीं है, कभी दो मासमें ही सिद्ध हो जाता है, कभी दो बरसमें भी नहीं होता। गुह्य साधनाकी दशामें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित होते हैं, बहुतसी डरावनी मूर्त्तियाँ दिखाई देती हैं, भयानक शब्द सुनाई पड़ते हैं, बिजली चमकती है और अनेक भयंकर मूर्त्तियाँ अस्त्र-शस्त्र लेकर डराती-धमकाती और प्रहार करनेकी मुद्राएँ प्रस्तुत करती हैं इसलिये सिद्ध गुरुका निकट होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इन सब विघ्न-बाधाओंको साधक नहीं दूर कर सकता, गुरु ही दूर कर सकता है। यदि गुरु थोड़े समयके लिये भी हट जाय तो साधकके लिये प्राण संकट भी उपस्थित हो सकता है। किन्तु साधना पूर्ण हो जानेपर उसे ऐसी दिव्य शक्तियाँ मिल जाती हैं कि वह दूसरोंके कल्याणके लिये तो कुछ भी कर सकता है किन्तु अपने लिये कुछ नहीं कर सकता। उसे उसके योगक्षेम और जीवन-निर्वाहके लिये सब सामग्री स्वत: मिलती रहती है।

इस सम्बन्धमें एक बड़ी विचित्र बात यह है कि निष्फल साधक घूमकर गुरुकी खोज नहीं करता, गुरु ही साधकको खोज निकालता है। यदि जप साधनाके पश्चात् साधकके मनमें अहंकार उत्पन्न हो जाय तब तो वह गुह्य साधनाका अधिकारी भी नहीं रह जाता इसलिये गुह्य साधकको परम विनीत होकर अपने गुरुके सब आदेशोंका मूर्त्तिवत पालन करना चाहिए और कभी तर्क नहीं करना चाहिए।

वगलामुखीकी साधना

प्राय: मुकदमेबाज लोग अपने विपक्षीको हराने या उसे हानि पहुँचानेके लिये वगलामुखीका जप कराते हैं। वगलामुखीके जपके लिये हल्दीकी माला, पीले वस्त्र और पीले फूलोंसे वगलामुखीकी पूजा की जाती है और एक मिट्टीका छोटासा बैल बनाकर उसे एक धागेसे नाँधकर वह धागा आसनके नीचे दबाकर जप करना होता है, किन्तु यह जप भी किसी अन्यसे न कराकर स्वयं करना चाहिए, तभी उसका फल होता है। किन्तु यदि विपक्षी भी वगलामुखीका जप कर रहा हो तब किसीको फल नहीं मिलता। वगलामुखी बड़ी सशक्त देवी हैं। इनके लिये भी रात्रिके द्वितीय प्रहरसे मध्य रात्रितक जप करना चाहिए। इनकी जपसाधनामें प्राय: बाधा नहीं होती फिर भी सिद्ध गुरुके आदेशानुसार उनकी देखरेखमें ही और उनसे मन्त्र लेकर ही जप करना चाहिए। यह जप सकाम साधनाके लिये होता है। इसके फल स्वरूप शत्रुकी हानि होती है। इसके ३६ अक्षरवाले मन्त्रमें 'सर्व दुष्टानां'के बदले 'मम शत्रूणां' कहना चाहिए।

तारा या उग्रतारा

तारा या उग्रताराकी साधना सबसे अधिक कठिन, श्रमसाध्य, समय-साध्य और कष्ट-साध्य है। बौद्ध तान्त्रिक प्राय: ताराकी ही उपासना करते हैं। तान्त्रिकोंका विश्वास है कि ताराकी साधना केवल सिद्ध गुरुकी कृपासे ही सम्भव है और ताराकी साधनामें बहुत समय भी लगता है यहाँतक कि दस दस, पन्द्रह पन्द्रह बरस लग जाते हैं किन्तु जिसे तारा सिद्ध हो जाती हैं उसके चरणोंमें आठों सिद्धियाँ और नवोंनिधियाँ आ लोटती हैं।

ताराकी जप-साधनाके पश्चात् जब गुरु यह समझ लेता है कि शिष्यको गुह्य मन्त्र दे देना चाहिए तब वह निष्काम साधकको पुष्य नक्षत्रमें अर्धरात्रिके समय कानमें गुह्य मन्त्रकी दीक्षा देकर उससे इक्कीस बार दुहरवाता है। साधक भी द्वितीय तृतीय प्रहरतक (नौसे तीन बजेतक) गुरुकी देखरेखमें ही गुह्य मन्त्रका जप करता है। इसमें भी अनेक प्रकारके भयंकर और कष्टकर विघ्न उपस्थित होते



हैं किन्तु गुरुके पास रहनेके कारण उनका प्रभाव नहीं होता। यह साधना सिद्ध हो जानेपर तारा देवी प्रत्यक्ष आकर सामने खड़ी हो जाती हैं और साधकके सिरपर हाथ रखकर उसे सर्वसमर्थ बना देती हैं। ताराकी साधना कर चुकनेवाला साधक स्वयं सिद्ध हो जाता है और उसे दीक्षा देनेका भी अधिकार हो जाता है। ऐसे साधकके लिये चमत्कार दिखाना वर्जित है। उसे केवल लोक-कल्याणके लिये ही अपनी शक्तिका प्रयोग करना चाहिए। वह महामारी रोक सकता है, देशपर आक्रमण करनेवालोंको नष्ट कर सकता है, सब प्रकारके भूत-प्रेत-पिशाच आदिकी बाधाएँ दूर कर सकता है, केवल दृष्टि मात्रसे रोग दूर कर सकता है और सब प्रकारके लोक-मंगलके कार्य कर सकता है। तान्त्रिकोंके सम्पूर्ण इतिहासमें केवल दो व्यक्ति ताराको सिद्ध कर पाए जिनमें एक तिब्बतमें था दूसरा सिक्किममें। परन्तु उन्हें शरीर छोड़े हुए कई शताब्दियाँ बीत गईं। उनमेंसे एक तो तीन सौ बावन बरसतक जीवित रहा और दूसरा चार सौ दस बरसतक। ऐसे साधकोंकी इच्छा मृत्यु होती है अर्थात् जब वे स्वयं चाहते हैं तभी संसारसे जाते हैं उससे पूर्व नहीं। मृत्यु भी उनके वशमें होती है।

जैसे हठयोगकी साधना अत्यन्त दुष्कर है वैसे ही तन्त्रकी गुह्य साधना भी अत्यन्त कष्ट-साध्य और दुष्कर है किन्तु एक बार जो किसी भी महाविद्याको साध लेता है उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं रह जाता।

महाविद्याओंके विभिन्न रूप और साधना

काली

चण्ड नामक असुरके वधके समय असुरोंसे लड़ते लड़ते क्रोधके कारण भगवतीका मुख कृष्णवर्ण हो गया था। उसी समय उनके ललाटसे करालवंदना, असि (तलवार), पाश आदि अस्त्र हाथमें लिए हुए कालिका देवीका आविर्भाव हुआ।
(मार्कण्डेय पु., ८७/५)

कालिका पुराणमें उनका रूप इस प्रकार वर्णित है— नीले कमलकी भाँति उनका श्यामवर्ण है। चार हाथ हैं। दोनों दाँएँ हाथोंमें खट्वांग (खाटका पावा) और चन्द्रहास (तलवार), दोनों बाँएँ हाथोंमें ढाल तथा पाश हैं, गलेमें मुण्डमाला पड़ी हुई है। कमरमें बाघकी खाल लिपटी हुई है, अंग दुबला है, लंबे लंबे दाँतोंपर लपलपाती हुई लाल जीभ अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ती है और आँखें लाल हैं। ऐसी काली देवी भीमनाद कर रही हैं। वाहन कबन्ध है। मुँहँ फैला हुआ और कान मोटे हैं। ये देवी तारा और चामुण्डा नामसे भी अभिहित होती हैं। उनकी आठ योगिनियोंके नाम हैं— त्रिपुरा, भीषणा, चण्डी, कर्त्री, हंत्री, विधातृका, कराला और शूलिनी। उक्त योगिनियाँ भी देवीके साथ ही पूजित और अनुध्यात होती हैं। सब देवीगणमें उन्हींकी पूजा करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

(कालिका पु. ६ अ.)

निम्नांकित दस महाविद्याओंमें काली प्रथम महाविद्या हैं— काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, वगला, मातंगी और कमला। इन्हें सिद्धविद्या भी कहते हैं। सतीने दक्षके यज्ञमें जानेके लिये बार बार शिवजीसे अनुमति माँगी, किन्तु महादेवने किसी प्रकार जब अनुमति नहीं दी, तब सतीने उक्त दसमूर्त्तियाँ बनाकर शिवजीको डराकर उनकी अनुमति ग्रहण कर ली।



काली मूर्त्तिका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

काली करालवदना, भयंकरी, मुक्तकेशी, चतुर्भुजविशिष्टा और मुण्डमालाभूषित हैं। उनके नीचेके बाँएँ हाथमें सद्य: कार्त्तिमुण्ड एवं ऊपरके वाम हस्तमें खड्ग, ऊपरके दक्षिण हस्तमें अभय चिह्न तथा नीचेके दक्षिण हस्तमें वरदान-भंगिमा है। वे महामेघकी भाँति श्यामवर्णा हैं। उनके गलेमें मुण्डमाला है जिससे रक्तधारा प्रवाहित हो रही है। उनके दोनों कानोंमें कर्ण-आभूषणके स्थानपर दो शव लटके हुए हैं। वह भीमदर्शना, करालमुखी, पीनोन्नतस्तनी, शवगण-हस्तसमूहनिर्मित मेखलाधारिणी और हास्यमुखी हैं। उनके दोनों ओठोंसे रक्तधारा निकल रही है इसलिये इन्हें स्फुरितमुखी भी कहते हैं। काली भयंकर शब्द करनेवाली, भयंकर मूर्त्ति, श्मशानवासिनी, सूर्यके समान विशिष्ट नेत्रोंवाली, लम्बे दाँतोंवाली, दाँएँ अंगपर लटकते बालों वाली, शवरूपी महादेवके हृदयमें स्थित भयंकर शब्द करनेवाली, शिवगण-परिवेष्टिता, महाकालके साथ विपरीत संगममें आसक्ता और सुखप्रसन्नवदना हैं। सर्वकामार्थसिद्धिदायिनी कालीका ध्यान इसी प्रकार करना चाहिए।

महाकाली, दक्षिणाकाली, भद्रकाली, श्मशानकाली, गुह्यकाली और रक्षाकाली आदि नामोंके अनुसार कालीकी मूर्त्तिके विविध भेद हैं। देवी मूल प्रकृति है। स्वल्पबुद्धि और दुर्बल मानवोंके उपासना-कार्यमें सुविधा करनेके लिये तन्त्र आदि शास्त्रोंमें उक्त प्रकृतिके काली, तारा आदि नाम और रूप कल्पित हुए हैं। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा भी है—

उपासकानां कार्याय पुरैव कथितं प्रिये।
गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्या: प्रकल्पितम्॥

(महानिर्वाण, १३ उल्लास)

उपासकोंके कार्यके लिये ही गुणक्रियाके अनुसार देवीका रूप कल्पित होता है।

आद्य शक्तिकी प्रधान मूर्त्ति काली हैं। शाक्तोंमें प्राय: केवल दस प्रतिशत ही काली मूर्त्तिके उपासक हैं। भगवतीकी जितनी मूर्त्तियाँ हैं उनमें दुर्गा और काली मूर्त्तिका ही बहुत प्रचार है। यह बताना कठिन नहीं है कि किस समय उक्त मूर्त्तिकी कल्पना की गई। अनेक पाश्चात्य पण्डितों और कुछ प्राच्य विद्वानोंके मतानुसार काली भारतमें अदिवासी अनार्योंकी देवी रहीं, प्राचीन पुराणोंमें भगवतीकी उक्त मूर्त्तिके अनेकानेक वर्णन मिलते हैं, किन्तु यह निश्चय है कि तान्त्रिक युगमें ही उक्त मूर्त्तिकी उपासनाके अनेक प्रकारसे विधि-नियम बने। तंत्रके अतिरिक्त पुराण आदिमें भी भगवतीकी काली मूर्त्तिकी उत्पत्ति, पूजा, ध्यान आदिके विवरण मिलते हैं।

कालिकाकी मूर्त्तिकी उत्पत्तिकी कथा चण्डीपुराणमें दो स्थानोंपर कही गई है। प्रथम तो तब है जब महिषासुरके वधके पश्चात् शुम्भ-निशुम्भके अत्याचारसे उत्पीडित होकर देवता लोग देवीका स्तवन करते रहे थे। तभी भगवतीने जाह्नवी-स्नानके लिये जाते समय उनके निकट जाकर पूछा कि तुम लोग यहाँ क्यों आए हो? देवताओंके उत्तर देनेसे पहले ही भगवतीके शरीरसे शिवा अम्बिकाने निकलकर कहा— दैत्यपति शुंभ से निराकृत और उसके भाई निशुम्भसे पराजित होकर देवता हमारा स्तवन कर रहे हैं। अम्बिका क्योंकि भगवतीके शरीरकोष-से निकली थीं इसलिए वे कौषिकीके नामसे विख्यात हुईं और हिमाचलपर रहने लगीं। कौषिकीकी उत्पत्तिके पश्चात् भगवतीने भी अपना गौर वर्ण छोड़कर कृष्ण वर्ण धारण कर लिया था इसलिये वे कालिका कहलाने लगी और हिमाचलपर ही रहने लगीं।



दूसरी कथा यह है कि जब कौषिकीकी हुंकारसे शुम्भका सेनापति धूम्रलोचन भस्मीभूत हो गया तब शुम्भने चण्ड-मुण्ड नामके दो सेनापतियोंको सेनाके साथ देवी कौषिकीको पकड़ लानेके लिये भेजा। चण्ड-मुण्ड जब बड़े घमण्डके साथ देवीके पास पहुँचे तब वे ठठाकर हँस पड़ीं। जब चन्ड और मुण्ड उन्हें पकड़नेके लिये आगे बढ़े तब देवीके क्रोधसे उनका मुख काला पड़ गया। तभी उनकी कुटिल भृकुटी और ललाटसे एक देवी निकल खड़ी हुईं जो असुरोंपर टूट पड़ीं। वही देवी काली हैं। उनका रूप चण्डीतन्त्रमें इस प्रकार बताया गया है—

काली, करालवदना (लम्बितमुण्डहस्ता) असिपाशधारिणी, विचित्रखट्वाङ्गधरा, नरमुण्डमाला-शोभिता, व्याघ्रचर्मपरिधाना, शुष्कमांसा, अतिभयानक मूर्त्ति, अतिविस्तृत-मुखमण्डला, लोलरसना, भीषणा, गाढरक्तनयना और हुंकार शब्दसे दिङ्मण्डलको गुँजा देने वाली हैं। कालीने युद्धमें चण्ड-मुण्डको मारकर कौषिकीको उनके दोनों मुण्ड उपहारमें देकर कहा— हमने चण्ड और मुण्ड नामक दो महापशु मारे हैं, अब युद्धयज्ञमें तुम शुम्भ-निशुम्भका संहार करो। कौषिकीने हँसकर कहा— चण्ड-मुण्डको मारा है इसलिये अब तुम्हारा नाम चामुण्डा विख्यात होगा।

रक्तबीजके वधके समय उन्हीं कालीने जिह्वा निकालकर रक्तबीजका शरीर नष्ट करके उसका रक्त पी लिया था। कौषिकीके अस्त्र-प्रहारसे ही रक्तबीज विनष्ट हुआ था।

चण्डी तन्त्रमें काली-पूजाका कोई विधान नहीं मिलता। शुम्भ-निशुम्भके वधके पश्चात् देवीने देवताओंसे जो पूजा-पद्धति कही थी वह शारदीय महापूजाकी कथा थी।

देवीभागवतके पाँचवें स्कन्धके पाचवें स्कन्धके २३वें अध्यायमें कौषिकीकी उत्पत्तिके पश्चात् पार्वतीका शरीर काला पड़नेपर कालिका नामसे प्रसिद्ध होनेकी कथा लिखी है, किन्तु उनका नाम कालरात्रि बताया गया है। देवीभागवतमें लिखा है कि धूम्रलोचनसे जो उनका घोर संग्राम हुआ था उसमें उन्हींकी हुंकारसे वह विनष्ट हो गया था। तब चण्ड-मुण्ड वधके समय कौषिकीके कपालसे व्याघ्रचर्माम्बरा, क्रूरा, गजचर्मोत्तरीया, मुण्डमालाधरा, घोरा, शुष्कवापीसमोदरा, खड्गपाशधरा, अतिभीषणा, खट्वाङ्गधारिणी, विस्तीर्णवदना और लोलजिह्वांग कालीकी उत्पत्ति कही गई है। वही काली चामुण्डा नामसे विख्यात हुईं। इसी प्रकार अन्य पुराणोंमें भी उसके काली, भद्रकाली, महाकाली इत्यादि नाम आए हैं।

कालीमूर्त्तिका रूप देखनेसे ही समझा जा सकता है कि वह महाकालकी प्रणयिनी हैं। अनन्तकाल-रूपी शिव पदतलमें दलित हो रहे हैं। सर्वध्वंसकारिणी शक्तिज्ञापक असि उनके हाथमें है और भूत, वर्त्तमान और भविष्यकाल-बोधक उनके तीन नयन हैं।

कालिकाकी उग्रतारा मूर्त्तिका ध्यान निम्नलिखित रीतिसे किया जाता है—

चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खड्गं दक्षिणपाणिभ्यां विभ्रतीन्दीवरं त्वधः॥

कर्त्रीं च खर्परं चैव क्रमाद्वामेन विभ्रतीम्।
खं लिखन्तीं जटामेकां विभ्रतीं शिरसा स्वयम्॥

मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा।
वक्षसा नागहारं तु विभ्रतीं रक्तलोचनाम्॥



कृष्णवस्त्रधरां कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विताम्।
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम्।।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहानासवं स्वयम्।
साट्टहासमहाघोररावयुक्तातिभीषणा।।
चिन्त्योग्रतारा सततं भक्तिमद्भिः सुखेप्सुभिः।।

(कालिकापुराण)

भक्तिमान और सुखेप्सु लोगों-द्वारा कृष्णवर्ण, चतुर्भुज, दक्षिण हस्तद्वयके मध्य ऊर्ध्व हस्तमें खड्ग एवं अधोहस्तमें पद्म तथा वामहस्तद्वयके मध्य ऊर्ध्व हस्तमें कर्त्री (दाँती) एवं अधोहस्तमें खर्परधारिणी, गगनस्पर्शी एक जटायुक्त, मस्तक तथा कण्ठ देशमें मुण्डमाला एवं वक्षःस्थलमें सर्पहारभूषिता, आरक्तनयना, कृष्णवस्त्रपरिहिता, कटितटमें व्याघ्रचर्मयुक्ता, शवके हृदयपर वाम पद एवं सिंह-पृष्ठपर दक्षिण पद विन्यासपूर्वक अवस्थिता, आसवपानमें आसक्त, अट्टहासकारिणी और अतिभयंकरा उग्रतारा सतत चिन्त्य हैं।

कालिका देवीकी आठ योगिनियाँ हैं। उनके नाम हैं— महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी। कालिकाके पूजाकालमें उक्त अष्टयोगिनियाँकी भी पूजा करनी पड़ती है।

तन्त्रसारमें कालीकी मूर्त्तिका ध्यान इस प्रकार है—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।।

सद्यश्छिन्नशिरः खड्गां वामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्।
अभयं वरदं चैव दक्षिणोर्ध्वाधपाणिकाम्।।

महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।।

कर्णावतंसतां नीतशवयुग्मभयानकाम्।
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।।

शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।।

घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्।।

दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम्।।



शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्।।

सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्।
एवं संचिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धिदाम्।।

काली करालवदना, भयंकरी, मुक्तकेशी, चतुर्भजविशिष्टा और मुण्डमालाभूषिता हैं। उनके अधोवामहस्तमें सद्य:कर्तितेमुण्ड एवं ऊर्ध्ववामहस्तमें खड्ग और ऊर्ध्व दक्षिण हस्तमें अभय चिह्न तथा अधो दक्षिण हस्तमें वरदान-भंगिमा है। वह महामेघकी भाँति श्यामवर्णा और नग्ना हैं। उनके कण्ठ देशमें मुण्डमाला है जिससे रक्त-धारा विगलित हो रही है। कर्णद्वयमें कर्णभूषणके स्थलपर दो शव लम्बित हैं। वह भीमदशना, करालमुखी, पीनोन्नतस्तनी, शवगणहस्तसमूह-निर्मित मेखलाधारिणी और हास्यमुखी हैं। उनके उभय ओष्ठप्रान्तसे रक्तधारा गलित होती है। इसीसे उन्हें स्फुरित-मुखी भी कहते हैं। काली भयंकर शब्दकारिणी, भयंकरमूर्त्ति, श्मशानवासिनी, अरुणतुल्यलोचनत्रयविशिष्टा, करालदन्ता, दक्षिणाङ्गव्यापिमुक्तकेश-पाशयुक्ता, शवरूपी महादेव-हृदयस्थिता, भयंकर शब्दकारी शिवागण-परिवेष्टिता, महाकालके साथ विपरीत संगममें आसक्ता और मुखप्रसन्नवदना हैं। इसी प्रकार सर्वकामार्थसिद्धिदायिनी कालीकी चिन्ता करनी चाहिए।

उग्रचण्डा

कालीकी एक उग्रचण्डा मूर्त्ति भी है जो आश्विनकृष्णा नवमीको कोटि योगिनियोंके साथ आविर्भूत हुई। इनके अट्ठारह (१८) भुजाएँ हैं—

उग्रचण्डा तु या मूर्त्तिरष्टादशभुजाऽभवत्।
सा नवम्यां पुराकृष्णपक्षे कन्याकगते रवौ।
प्रादुर्भूता महाभागा योगिनी कोटिभि: सह।।

(कालिकापुराण ५९-६०)

दक्षका यज्ञ इसी मूर्त्तिने ध्वस्त किया था। आषाढ-पूर्णिमाको दक्षने अपना बारह बरसतक चलनेवाला यज्ञ प्रारंभ कर दिया था। इस यज्ञमें शिवजीको छोड़कर अन्य सभी देवताओंको निमन्त्रण दिया गया था। शिवजीकी पत्नी होनेके कारण सतीको भी निमन्त्रित नहीं किया गया था। इस अपमानसे क्रुद्ध होकर सतीने योगाग्निसे अपने प्राण छोड़ दिए थे। किन्तु कोटि योगिनियोंके साथ उग्रचण्डाका रूप बनाकर शिवजीके अनुचरोंके साथ दक्षके यज्ञका विध्वंस कर दिया। (कालिकापुराण)

अन्य किसी पुराणमें यह वर्णन नहीं मिलता।

उग्रतारा

भगवतीकी यह मूर्त्ति भक्तोंको उग्रतापसे बचा देती हैं। उनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार है—

किसी समय शुम्भ और निशुम्भ नामके दैत्य, देवोंके यज्ञका भाग चुराकर स्वयं दिक्पाल बन बैठे थे। इसपर समस्त देवता इन्द्रके साथ इकट्ठे होकर हिमालयपर जा पहुँचे। वहाँ सबने गंगावतारके निकट ठहरकर महामाया भगवतीका स्तवन किया। देवोंके स्तवनसे भगवती बहुत सन्तुष्ट हुई और मातङ्गी रूप बनाकर उनसे पूछने लगीं,— देवो! तुम इस स्थानपर किस स्त्रीका स्तवन कर रहे हो और इस मतंगके आश्रमपर क्यों आए हो? ऐसा कहते ही उनके शरीर-कोषसे एक देवी निकलकर बोलीं— ये देव हमारा ही स्तवन कर रहे हैं। शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दानव इन्हें कष्ट दे रहे



हैं। इसीसे सब देव उनके वधके निमित्त यहाँ आए हैं। शरीरसे इन देवीके निकलनेके पश्चात् ही हिमालयपर रहनेवाली वह गौरवर्णा मातङ्गी अतिशय कृष्णवर्णा और मुण्डमाला-धारिणी हो गईं। उनके ऊपरी दाहिने हस्तमें खड्ग तथा नीचेके हस्तमें चामर और बाँएँ ऊपरी हस्तमें कपालिका तथा नीचेके हस्तमें खर्पर है, मस्तकपर आकाशभेदी एक जटा और गलेमें मुण्डमाला पड़ी है, छातीपर साँपका हार लिपटा हुआ है और चक्षु रक्त-जैसे लाल हैं। उग्रतारा कृष्णवर्णके वस्त्र पहने हुए हैं, कटिदेशमें व्याघ्रचर्म भूषित है, वामपद शवकी छातीपर और दक्षिणपद सिंहकी पीठपर रक्खा है। ये देवी स्वयं शवका शरीर चाटती हैं। इनकी साधना कालीकी साधनाके समान ही की जाती है।

छिन्नमस्ता

यही देवी प्रचण्ड चण्डिकाके नामसे भी ख्यात हैं। इनके प्रसन्न होनेसे लोग शिव-स्वरूप, अपुत्र पुत्रवान, निर्धन धनी और मूर्ख विद्वान होजाते हैं। इनकी पूजा-विधि इस प्रकार है— साधकको प्रात:कृत्य समापन करके प्रात: कर्म-विधि पूर्ण करके आचमन करके, लक्ष्मी, माया और कूर्चबीज-द्वारा तीन बार जलपान करना चाहिए। वाग्बीज-द्वारा दोनों ओठोंका सम्मार्जन करके मायाबीजसे दो बार उन्मार्जन करना चाहिए। फिर श्री, माया, कूर्च, सरस्वती, काम, त्रिपुरा, भगवती, भगवीज, कामकला और अंकुश-द्वारा क्रमश: मुख, नासिका, चक्षु, कर्ण, नाभि, हृदय, मस्तक और दोंनो कंधोंको स्पर्श करना चाहिए। आचमनके पश्चात् करन्यास और नेत्रन्यास करना चाहिए।

त्रिशक्तितन्त्रमें लिखित है-- अपनी नाभिमें अर्ध-विकसित शुक्ल वर्ण पद्म-का ध्यान करना चाहिए। उसके मध्यमे जपाकुसुमके समान रक्तवर्ण सूर्य-मण्डलमें कोटि सूर्य-जैसी उज्ज्वलवर्णा महादेवी छिन्नमस्ताकी भावना करनी चाहिए। देवी बाँएँ हाथमें अपना मस्तक धारण करके लपलपाती जिह्वासे अपने गलेसे निकली रुधिरकी धारा पीती हैं, विविध कुसुम-शोभित केशपाश इधर-उधर बिखरे हुए हैं। यह आलुलायितकेशा और दिगम्बरी हैं। उनके दक्षिण हस्तमें कर्तरी है। वे मुण्डमाला विभूषिता, षोडशवर्षीया, पीनोन्नत पयोधरा, रति तथा कामपर प्रत्यालीढ पदसे खड़ी हैं। उनके गलेमें अस्थिमाला और सर्परूप यज्ञोपवीत भूषित है, वाम और दक्षिण पार्श्वमें डाकिनी और वर्णिनी हैं। डाकिनी देखनेमें कल्पान्त सूर्य-जैसी उज्ज्वल, विद्युज्जटा, त्रिनयना, विकटदन्ता, मुक्तकेशी और दिगम्बरी हैं। वाम तथा दक्षिण हस्तमें नरकपाल और कर्तरी है। वह लपलपाती हुई जीभ निकालकर, देवीकी कण्ठ निर्गत रक्त धारा पान करती हैं। दक्षिण पार्श्वमें वर्णिनी देखनेमें लोहितवर्णा, मुक्तकेशी, दिगम्बरी अपने वाम तथा दक्षिण हस्तमें कपाल और कर्तरी लिए हुए हैं। उनके गलेमें नागका यज्ञोपवीत और मुण्डमाला है। वह प्रत्यालीढ पदसे अवस्थित होकर देवीकी कण्ठनि:सृत रुधिरधारा पीती हैं। रति और कामकी विपरीत रतिमें आसक्त रूपकी भावना की जाती है।

बिना ध्यानके देवीकी पूजा करनेसे साधकका मस्तक सद्य: छिन्न हो जाता है। ध्यान इस प्रकार है—

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिर: कर्तृकाम्।
दिग्वस्त्रां स्वकबंधशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा।।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालङ्कृताम्।
रत्यासक्तमनोभवोपरिदृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम्।।



दक्षे चातिसितां विमुक्तचिकुरां कर्त्रीं तथा खर्परम्।
हस्ताभ्यां दधतीं रजोगुणभवः नाम्नापि सा वर्णिनी।।

देव्याश्छिन्नकबन्धतःपतदसृग्धारां पिबन्तीं मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरैः।।

वामे कृष्णतनुस्तथैव दधतीं खड्गं तथा खर्परं।
प्रत्यालीढपदाकबन्धविगलद्रक्तं पिबन्तीं मुदा।।

सैषा या प्रलये समस्तभुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी।
शक्तिः सापि परात्परा भगवती नाम्नपरा डाकिनी।।

पूजा-यन्त्रमें एक दशदलपद्म अंकित करना चाहिए। इसका दल पूर्व दिशामें श्वेत, अग्निकोणमें रक्त, वायुकोणमें पीत (पीला), पश्चिममें शुक्ल, नैर्ऋतमें रक्त, उत्तरमें सित और ईशान कोणमें कृष्ण वर्ण रहता है। कर्णिकाके मध्यमें सूर्य-मण्डल बनाकर रक्तवर्ण रज, शुक्लवर्ण सत्त्व और कृष्ण वर्ण तमो गुणकी रेखा खींचनी पड़ती है। फिर षडक्षरयुक्त मायाबीजद्वय अंकित करके कर्णिकाके चारों ओर प्राकार बनाना चाहिए। यह प्राकार पूर्व दिशामें रक्त वर्ण, दक्षिणमें कृष्णवर्ण, पश्चिममें शुक्ल वर्ण और उत्तरमें पीत वर्ण बनता है। प्राकारके चार द्वार होते हैं। प्रत्येक द्वारपर एक एक क्षेत्रपाल रहता है। (भैरवीय.)

पूजा-यन्त्रका प्रकारान्तर ऐसा है— पहले त्रिकोणाकार रेखा खींचनी चाहिए। इसके मध्यमें तीन मण्डलीवाले मण्डलके बीचमें तीन द्वारवाली योनि बनाते हैं। बाहरकी ओर अष्टदलपद्म और भूबिम्बत्रय तथा इसके मध्य कूर्चबीज अंकित करना चाहिए। तीनों कोण फट् युक्त रखने चाहिएँ। यही ध्यानोक्त यन्त्र है। उक्त ध्यान यन्त्र केवल योगियोंके लिये विहित है। गृहस्थोंको इनका ध्यान ऐसा करना चाहिए कि यह नाभि पद्मके बीचमें निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म बाल चन्द्रके समान द्युतिवाली एवं सत्त्व, रज तथा तमोगुणद्वारा वेष्टित विराजमान हैं। (तन्त्र)

इसी प्रकार ध्यानपूर्वक मानस पूजा करके शंख-स्थापन करना चाहिए। फिर यह पीठ-पूजा करनी होती है:-

ॐ आधारशक्त्यै नमः, ॐ प्रभूताय नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ तदधः स्वर्णसिंहासनाय नमः, ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संबिन्नालाय नमः, ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ अं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, पद्ममध्ये ॐ रतिकामाभ्यां नमः।

भैरवतन्त्रके मतमें— आधारशक्ति, कूर्म, नागराज, पद्म, नालपद्म, चतुष्कोणमण्डल, रजः, सत्त्व, तमः, रति और कामकी पूजा करके शक्तिपूजा करनी चाहिए।

पीठमन्त्र यह है—

रतिकामोपरि वज्रवैरोचनीये देहि देहि एहि एहि गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् मारय मारय करालिके हुं फट् स्वाहा।



फिर ध्यान करके आवाहन करना चाहिए।

सर्वसिद्धिवर्णिनीये सर्वसिद्धिडाकिनीये वज्रवैरोचनीय इहावह इहावह

मन्त्र उच्चारण करके इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मन्त्र-द्वारा आवाहन करके और ॐ ह्रीं क्रीं हं स: मन्त्रसे प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। **'ॐ आं खङ्गाय हृदयाय स्वाहा'** इत्यादि मन्त्र-द्वारा षडंगन्यासपूर्वक यथाशक्ति पूजा करके बलि देनी चाहिए। मन्त्र यह है—

व्रजवैरोचनीये देहि देहि एहि एहि **गृह्ण, गृह्ण, इमं बलिं** मम सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् मारय मारय करालिक हुं फट् स्वाहा।

तदुपरि देवीके दक्षिण **'ॐ वर्णिन्यै नम:' बाँएँ 'ॐ डाकिन्यै नम:'** मन्त्र-द्वारा वर्णिनी और डाकिनीकी पूजा करनी चाहिए। देवीकी षडंग पूजा करके दक्षिणमें **'ॐ शंखनिधये नम:'** वाममें **'ॐ पद्मनिधये नम:'** पूर्व दिशामें लक्ष्मी, दक्षिणा में लज्जा, पश्चिममें माया, उत्तरमें सरस्वती, अग्निकोणमें ब्रह्मा, वायु कोणमें विष्णु, नैर्ऋत्य कोणमें रुद्र, ईशान कोणमें ईश्वर, मध्यमें सदाशिवके पहले **'ॐ'** और पीछे **'नम:'** लगाकर पूजा करनी चाहिए। फिर षाञ्चपुष्पाञ्ज-पूर्वक आवरण-पूजा करनी चाहिए। अष्टादिक् तथा मध्यमें **'ॐ ॐ खङ्गाय हृदयाय स्वाहा'** इत्यादि मन्त्र-द्वारा षडङ्ग पूजा करके पूर्वादि क्रमसे अष्टदलकी पूजा करनी चाहिए। यथा पूर्वदलमें **'ॐ काल्यै नम:'** अग्निकोण दलमें **'ॐ वर्णिन्यै नम:'** दक्षिण-दलमें **'ॐ डाकिन्यै नम:'** वायुकोण दलमें **'ॐ भैरव्यै नम:'** पश्चिम दलमें **'ॐ महाभैरव्यै नम:'** नैर्ऋत्यकोण दलमें **'ॐ इन्द्राक्ष्यै नम:'** उत्तरदलमें **'ॐ पिङ्गलाक्ष्यै नम:'** ईशानकोण दलमें **'ॐ सेहारिण्यै नम:'** पद्ममध्ये **'हुं हुं फट् नम: स्वाहा'** देवीके दक्षिण **'सम्राट् छन्दसे नम:'** उत्तरमें **'सर्ववर्णेभ्यो नम:'** फिर दक्षिणकोणमें **'ॐ बीजशक्तिभ्यां नम:'** पत्रके अग्रभागपर पूर्व दिशामें **'ॐ ब्राह्मयै नम:'** अग्नि कोणमें **'ॐ माहेश्वर्यै नम:'** दक्षिणमें **'ॐ कौमार्यै नम:'** वायुकोणमें **'ॐ वैष्णव्यै नम:'** पश्चिममें **'ॐ वाराह्यै नम:'** नैर्ऋत्य कोणमें **'इन्द्राण्यै नम:'** उत्तरमें **'ॐ चामुण्डायै नम:'** ईशान कोणमें **'ॐ महालक्ष्म्यै नम:'** पूर्वद्वारमें **'ॐ करालाय नम:'** दक्षिण द्वारमें **'ॐ विकरालाय नम:'** पश्चिम द्वारमें **'ॐ अतिकरालाय नम:'** और उत्तरद्वारमें **'ॐ महाकालाय नम:'**। ऊपर लिखा हुआ मन्त्र उच्चारण करके रूप-भावनापूर्वक वाम नासापुट-द्वारा सूर्य-मण्डलमें निवेशित करना चाहिए। पुरश्चरण लक्ष जप है। रातको विभवानुरूप बलि देनी चाहिए। बलिका मन्त्र है-**'ॐ सर्वसिद्धिप्रदे वर्णिनिये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनी छिन्नमस्ते इयां देवि एहि एहि बलिं गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं देहि देहि ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा'**। (भैरवीय)

शत्रु-नाशके लिये ही छिन्नमस्ताकी साधना और पूजा की जाती है।

छिन्नमस्ताका मन्दिर

काठमण्डूसे डेढ़ मील पूर्व ललितपत्तन नामक स्थानमें छिन्नमस्ता देवीका सुन्दर प्राचीन मन्दिर है। उस मन्दिरके पास ही ४८ संवत्का खुदा विष्णुगुप्तका एक शिलालेख है।



त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी या श्रीविद्या

त्रिपुरा देवी कामाख्याकी ही एक मूर्त्ति है। वाग्भव, कामवीज और ईश्वर, धर्म, अर्थ तथा

कामादिके साधक कुण्डलीयुक्त होकर त्रिपुरादेवीके मूलमन्त्र होते हैं। कामरूपिणी कामाख्या तीन प्रकारके पदार्थ दान करती हैं और तीनके आगे पूजी जाती हैं। इसीसे इनका नाम त्रिपुरा पडा है। (कालिका पु. ६३ अ.)

इस देवीका मण्डल त्रिकोण— तीन रेखाओंसे निर्मित है, तीनोंपर मन्त्रके तीन अक्षर हैं, रूप तीन प्रकारके हैं और त्रिदेवकी सृष्टिके लिये कुण्डली शक्ति भी तीन ही प्रकारकी है। ये सभी वस्तु तीन तीनकी हैं, इसीसे इनका नाम त्रिपुरा पड़ा है। (कालिका पु. ६३ अ.)

इनका रूप सिन्दूरपुञ्जसदृश है, इनके तीन नेत्र हैं, चार भुजाएँ हैं, बाँईं ओरके ऊधर्वहस्तमें पाँच बाण हैं, अधोहस्तमें अक्षमाला है, चार कुणप (बरछे) पीठपर और एक रक्षाके लिये दण्डायमान है, जटाजूट हैं, अर्द्धचन्द्र-द्वारा बद्धकेश हैं, नग्ना हैं, मध्यदेशमें त्रिवलि-सुशोभिता हैं, सब अंलकारोंसे भूषिता हैं, सर्वाङ्गसुन्दरी हैं, मंगलमयी हैं, धनवितरण-कारिणी हैं तथा सर्वलक्षण-सम्पन्ना हैं। इसी प्रकार उस मूर्त्तिका ध्यान करना पड़ता है।

इसी रूपसे पहले ध्यान करना चाहिए और अपनेको भी तीन प्रकारके रूपोंमें समझना चाहिये।

द्वितीय त्रिपुरा मूर्त्ति इस प्रकारकी है— बन्धूक पुष्प-सदृशी, जटाजूट तथा चन्द्रद्वारा मण्डिता, सर्वलक्षणसम्पन्ना, सब प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभिता, उद्यत्सूर्यसदृश समुज्ज्वल वस्त्रपरिधाना, पद्मपर्यङ्कसंस्थिता, मुक्ता और रत्नावलीयुता, पीनोन्नतपयोधरयुक्ता, त्रिवलिसुशोभिता, आसवके आमोदसे सन्तुष्टा, नेत्राह्लादकरी, विशुद्धा, जगत्की क्षोभिणी, त्रिनेत्रा, योनिमुद्राके प्रति ईषत् हास्यसमायुक्ता, नवयौवनसम्पन्ना, मृणालतुल्य चतुर्भजा, बाँईं ओरके ऊर्ध्व हस्तमें पुस्तक, अधोहस्तमें अभय मुद्रा, दाहिनी ओरके ऊर्ध्व हस्तमें अक्षमाला, अधोहस्तमें वरद मुद्रा, गलद्रक्ता, सूर्याभा, कदम्बोपबनान्तरिता, शुभदायिनी और कामाह्लादकारिणी हैं। यही मनोहरा द्वितीय त्रिपुरा मूर्त्तिका ध्यान है।

(कालिका पु. ६३ अ.)

तृतीय त्रिपुराकी मूर्त्ति जपा कुसुम-सदृशी, मुक्तकेशी, शुभानना और हास्यकारी है। ये सदाशिवकी प्रेतवत् स्थापना करके उन्हींके हृदयपर पद्मासनके रूप में बैठी हुई हैं। ग्रीवादेशसे आपादलम्बिनी रक्तोत्पलमिश्रित मुण्डमाला-धारिणी, पीनोन्नतपयोधरा, चतुर्भुजा, दिगम्बरी, दाहिनी ओरके ऊर्ध्वहस्तमें अक्षमालाधारिणी, अधोहस्तमें वरदा, बाँईं ओरके ऊर्ध्वहस्तमें भी अक्षमालाधारिणी तथा अधोहस्तमें वरदायिनी, त्रिनेत्रा, हास्यमुखी, गलद्रुधिरभोगाक्षा और सर्वांगसुन्दरी हैं। (कालिका पु. ६३ अ.)

आद्यरुप वाग्-भाव, द्वितीय कामबीज और तृतीय डामर एवं मोहन नामसे प्रसिद्ध हैं। साधकको चाहिए कि वे पहले एक एक करके तीनों रूपोंका ध्यान करके बाहरके ही सदृश हृदयाभ्यन्तरमें भी तीनों मन्त्रोंका उच्चारण करके षोडशोपचारसे प्रत्येककी पूजा करें। देवीकी तीनों मूर्त्तियाँ एकत्र करके उसके बीचमें तीनों मन्त्र एक साथ करके हृदयमें रक्खें।

कामरूपिणी त्रिपुरादेवीकी नौ प्रकारसे पूजा की जाती है। विधिवत त्रिपुराकी पूजा करनेसे साधकके अभीष्ट पूर्ण होते हैं, उसके घर निरन्तर धन बरसता है और अन्तमें वे देवलोकको जाते हैं। ये देवी सात्विक हैं। मदिरापान करनेवालोंको ये सिद्ध नहीं होतीं। (कालिका पु. ६३ अ.)

धूमावती

दस महाविद्याओंमेंसे देवी धूमावतीकी उत्पत्तिका विवरण तन्त्रशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है-



एक बार पार्वतीको जब बहुत भूख लगी तब उन्होंने महादेवसे कुछ खाने-को माँगा। महादेवने कहा— घर जाकर भोजन करेंगे, इसलिये थोड़ी देर ठहरो। पर पार्वती क्षुधासे अत्यन्त आतुर होकर महादेवको निगल गईं। उस समय पार्वतीके शरीरसे धुँआँ निकलने लगा। अन्तमें महादेवने माया-द्वारा शरीर कल्पित करके कहा— हे देवि! तुमने जब हमें खाया तब तुम विधवा हो चुकी, अतः विधवाका वेश धारण करो। हमारे वरसे तुम इसी वेशमें पूजी जाओगी और तुम्हारा नाम धूमावती होगा।

तन्त्रसारमें लिखा है कि कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें पुरश्चरणकी सिद्धिके लिये धूमावतीका जप करना चाहिये। धूमावतीकी पूजा-साधना कालीके समान होती है। गृहस्थको इनकी साधना नहीं करनी चाहिए।

भैरवी

चामुण्डा चर्चिका चर्ममुण्डा मार्जारकर्णिका।
कर्णमोटि महागन्धा भैरवी च कपालिनी।। (हेम)

तन्त्रसारमें भैरवीका विषय इस प्रकार लिखा है। भैरवी ये हैं—

त्रिपुरा-भैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कौलेश भैरवी, सकलसिद्धिदा भैरवी, भयविध्वंसिनी भैरवी, चैतन्य भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, षट्कुटा भैरवी, नित्या भैरवी, रुद्र-भैरवी, त्रिपुरबाला भैरवी, नवकुटा भैरवी और अन्नपूर्णा भैरवी।

त्रिपुर-भैरवी

वियद्भृगुहुताशस्थो भौतिको बिन्दुशेखरः।
वियत्तदादिकेन्द्राग्निस्थितं वामाक्षिबिन्दुमत्।।

आकाशभृगुवह्निस्थो मनुः सर्गेन्दु खण्डवान्।
पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरभैरवी।।

(तन्त्रसार)

भैरवीके मन्त्र अनेक प्रकारके हैं, उनमेंसे त्रिपुर भैरवी आदिके यथाक्रमके मन्त्र और उनकी पूजा आदि लिखी जाती है।

हसैं हसकलहरीं हसरौः— बीज मन्त्रसे त्रिपुर भैरवीकी पूजा की जाती है। पूजाक्रम इस प्रकार है— पहले सामान्य पूजापद्धतिक्रमसे प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्त समस्त कार्य करके मूलके लिखित मंत्रोंसे पीठन्यास, पाठ शक्तिन्यास, पीठ शक्तिन्यास, पीठ मनु न्यासादि करके मूल पूजा करें। देवीका ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्भानुसहस्रमरुणक्षौमां शिरोमालिकाम्।
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वराम्।।



हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्रक्तारविन्दश्रियम्।
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम्।।

नवोदित सहस्र भानु-किरणके सदृश रक्तवर्ण-क्षौम वसन पहने, गलेमें मुण्डमाला, स्तनद्वय रक्तसे लिप्त, पद्माभकर चार करोंमें जपमाला, पुस्तक, अभयमुद्रा और वरमुद्रा तथा कपालमें शशिकला, रक्तपद्मकी भाँति श्रीविशिष्ट, तीन चक्षु, मस्तकमें रत्न किरीट और मुखपर ईषद्हास्य छटा विराज़ रही है। इस प्रकार देवीका ध्यान करके पूजा करनी चाहिए। इस पूजाकी यह विशेषता है कि नैवेद्यदानके पश्चात् बलिचतुष्टय अर्पित की जाती है। दस लाख मंत्र जप करनेसे इस देवीका पुरश्चरण होता है। १२ हजार पलाश-पुष्पों-द्वारा होम किया जाता है।

सम्पत्प्रदा भैरवी

सम्पत्प्रदा भैरवीकी पूजादि भी त्रिपुर भैरवीके समान है। केवल इतना अन्तर है कि बीज मंत्र 'हसरैं हसकलरीं हसरौं' है। इसी मंत्रसे पूजा की जाती है।

आताम्रार्कसहस्राभ्यां स्फुरच्चन्द्रकलाजटाम्।
किरीटरत्नविलसच्चित्रचित्रितमौक्तिकाम्।।

स्रवद्रुधिरपङ्काढ्यमुण्डमालाविराजिताम्।
नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम्।।

मुक्ताहारलताराजत् पीनोन्नतघटस्तनीम्।
रक्ताम्बरपरीधानां यौवनोन्मत्तरूपिणीम्।।

पुस्तकं चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्।
वरदानप्रदां नित्यां महासम्पत्प्रदां स्मरेत्।।

तीन लाख जप इस मन्त्रका पुरश्चरण है और उसका दशांश होम। अन्य तन्त्रोंमें लिखा है कि एक लाख जप और उसके दशांश होमसे इस मन्त्रका पुरश्चरण होता है।

कौलेशभैरवी

कौलेशभैरवीकी पूजादि भी सम्पत्प्रदा भैरवीके समान है, केवल सहरैं सहकलरीं सहरौं बीज मन्त्रसे पूजाका विधान है।

सकलसिद्धिदा भैरवी

इनकी भी पूजा कौलेश भैरवीके समान ही है, केवल **"सहें सहकलरीं सहौं"** यह बीज मन्त्र अलग है।

भयविध्वंसिनी भैरवी

इनकी पूजा **"हसैं हसकलरीं हसौं"** बीज मंत्रद्वारा सम्पत्प्रदा भैरवीके समान की जाती है।

चैतन्य भैरवी



"सैहं सकलह्रीं सहरौं" बीज मन्त्रसे पूजा की जाती है। एक लाख जप और दस हजार होम इसका पुरश्चरण है। इनका ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्भानुसहस्राभां नानालङ्कारभूषिताम्।
मुकुटाग्रलसच्चन्द्ररेखां रक्ताम्बरान्विताम्।।

पाशाङ्कुशधरां नित्यां वामहस्ते कपालिनीम्।
वरदाभयशोभाढ्यां पीनोन्नतघनस्तनीम्।।

कामेश्वरी भैरवी

सैहं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदस्रवे हैसौः बीज मन्त्रसे इनकी पूजा की जाती है। ध्यान और पूजादि चैतन्य भैरवीके समान है।

षट्कूटा भैरवी

षट्कूटा भैरवीकी पूजा **'डरलकसहैं, डरलकसहैं'** इस बीज मन्त्रसे की जाती है। कोई कोई इसका पाठान्तर **''डरलकसहीं डरलकसहौः''** इस प्रकार करते हैं। ध्यान इस प्रकार है—

बालसूर्यप्रभां देवीं जवाकुसुमसन्निभाम्।
मुण्डमालावलीरम्यां बालसूर्यसमांशुकाम्।।

सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम्।
पाशाङ्कुशौ पुस्तकं च तथा च जपमालिकाम्।।

नित्या भैरवी

'हसकलरडैं, हसकलरडीं, हसकलरडौं' बीज मन्त्रसे षट्कूटाभैरवीके समान इनकी पूजा होती है।

रुद्रभैरवी

हस खफ्रें हसकलरीं हसौः बीज मन्त्रसे इनकी पूजा की जाती है। एक लाख जप और दस हजार होम इसका पुरश्चरण है। ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्भानुसहस्राभां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम्।
नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तिनीम्।।

वमद्रुधिरमुण्डालीकलितां रक्तवाससीम्।
त्रिशूलं डमरुं खड्गं तथा खेटकमेव च।।

पिनाकं च शरान्देवी पाशांकुशयुगं क्रमात्।
पुस्तकं चाक्षमालां च शिवसिंहासनस्थिताम्।।

भुवनेश्वरी भैरवी



इस देवीकी पूजा हसैं इस कल ह्रीं हसौः बीज मन्त्रसे चैतन्य भैरवीकी पूजाके अनुसार ही की जाती है। ध्यान इस प्रकार है—

जवाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम्।
चन्द्ररेखां जटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससीम्।।

नानालङ्कारसुभगां पीनोन्नतघनस्तनीम्।
पाशांकुशवराभीतिधरिश्यन्तीं शिवाश्रयाम्।।

त्रिपुराभैरवी

त्रिपुराभैरवी देवी रक्तवर्णा, रक्तवस्त्र-परिधाना और चतुर्भुजी हैं। इनके ऊर्ध्व दक्षिणहस्तमें माला, अधोदक्षिणहस्तमें उत्तम पुस्तक, दोनों वामहस्तोंमें अभय वर है, शरीरकी दीप्ति सहस्रसूर्योंकी नाईं उज्ज्वल है, तीन नेत्र हैं, चाल गजेन्द्र-सी है, दोनों स्तन बड़े बड़े हैं, श्वेत प्रेतके ऊपर बैठी हैं तथा सर्वालंकारभूषिता और सहास्यवदना हैं। इनके मस्तक, वक्षस्थल और कटि इन तीन अंगोंको छोड़कर शेष मुण्डमालासे सुशोभित हैं। तीनों नेत्र मधुपानसे भ्रमित हैं तथा ओष्ठाधर रक्त वर्ण हैं। इसी प्रकार त्रिपुर-भैरवीका ध्यान करना चाहिये। (कालिका पु. ७४ अ.)

त्रिपुर-भैरवीके पूजोपकरण-पुष्पादि और आसनादिका किसी दूसरी पूजामें व्यवहार नहीं करना चाहिए।

त्रिपुरा-भैरवीकी पूजा करनेका समय तीन मुहूर्त्त (१ घंटा २० मिनट) काल लिखा है। इनकी पूजामें तीस बारसे कम जप नहीं करते हैं। अङ्गुष्ठा, मध्यमा और अनामिका इन तीन उँगलियोंके योगसे पुष्पादि चढ़ाते और माला द्विगुणी करके पहनाते हैं। साधक चर्मासनपर बैठकर दोनों पैरोंको पीछेकी ओर रखकर एकाग्र चित्तसे निर्जन स्थानमें इस देवीकी पूजा करते हैं। विज्ञ साधक पुष्प और नैवेद्यादि बाँएँ हाथसे चढ़ाते हैं। इस देवीकी यदि विधानपूर्वक पूजा न की जाय, तो पूजकके शरीरमें अवश्य ही निन्दित व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती है, स्त्री, पुत्र और भृत्यादि अवशीभूत हो जाते हैं तथा पीछे उनकी शस्त्राघातसे मृत्यु होती है। यह त्रिपुरभैरवी योगनिद्रा जगज्जननी मायाका रूप भेद है। एक ही माया अनेक रूपोंमें क्रीडा करती हैं। (कालि पु. ७४ अ.)

त्रिपुरबाला भैरवी या त्रिपुरा भैरवी

''ऐं क्लीं सौः'' इस मन्त्रसे त्रिपुरा भैरवीकी पूजा-पद्धतिके अनुसार इनकी पूजा होती है। तीन लाख जप इस मन्त्रका पुरश्चरण है।

नवकूटा भैरवी

ऐं क्लीं सौः हसकलरीं हसौः हसरं हसकलरीं हसरौं— यही नवकूटाका बीज मन्त्र है। **''हसैं हसकलह्रीं हसौं''** यह सर्वदोषरहित नवाक्षर मन्त्र और **'हं ह रैं द्रीं ह कलरं ह्रीं ह्रीं हरौ'** मन्त्र ये तीनों बीज नवकूटाके मन्त्र हैं। भैरवी-पूजा-पद्धतिके अनुसार इनकी पूजा करनी चाहिए। एक लाख जप इस मन्त्रका पुरश्चरण है।

''वद वद वाग्वादिनि हेसरीं क्लिन्ने क्लेदिनि महामोक्षं कुरु क्लीं हेसौं'' यह दीपनी मन्त्र है। यह मन्त्र पहले छह बार जप करनेके अनन्तर पूजादि प्रारम्भ करनी चाहिए।

अन्नपूर्णा भैरवी



''ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं भगवति माहेश्वरि श्रीअन्नपूर्णे स्वाहा'' इस विंशत्यक्षर मन्त्रसे अन्नपूर्णेश्वरी भैरवीकी आराधना की जाती है। इस मन्त्रके कामबीजको छोड़ देनेसे **''ॐ ऐं ह्रीं श्रीं**

भगवति माहेश्वरि श्रीअन्नपूर्णे स्वाहा'' यह ऊनविंशाक्षर मन्त्र होता है। इस मन्त्रका जप और पूजा करनेसे धनधान्यादि ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है। सामान्य पूजा-पद्धतिके नियमानुसार पूजा की जाती है। एक लाख जप, उसके पश्चात् घृताक्त अन्नसे उसका दसवाँ अंश अर्थात् दस हजार होम इसका पुरश्चरण है।

तप्तकाञ्चनवर्णाभां बालेन्दुकृतशेखराम्।
नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम्॥
चित्रवस्त्रपरीधानां सफराक्षीं त्रिलोचनाम्।
सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम्॥
गोक्षीरधामधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्।
प्रसन्नवदनां शम्भुं नीलकण्ठविराजिताम्॥
कपर्दिनं स्फुरत्सर्पभूषणं कुन्दसन्निभम्।
नृत्यन्तमनिशं हृष्टं दृष्टानन्दमयीं पराम्॥
सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्या नितम्बिनीम्।
अन्नदानरतां नित्यां भूमिश्रीभ्यामलङ्कृताम्॥

तीर्थ स्थानमें शिव और शिवानीके जो अनुचर और अनुचरियाँ रहती हैं, उन्हें भैरव और भैरवी कहते हैं।

भैरवी चक्र

तान्त्रिकों अथवा वाममार्गियोंका वह समूह भैरवीचक्र कहलाता है जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और समयोंमें भैरवी देवीका पूजन करनेके लिये एकत्र होता है। इसमें सब लोग एक चक्रमें बैठकर पूजन और मद्यपान आदि करते हैं। इसमें केवल दीक्षित लोग ही सम्मिलित होते हैं और वर्णाश्रम आदिका कोई विचार नहीं रक्खा जाता।

मातङ्गी

दशमहाविद्याके अन्तर्गत नवम महाविद्या मातङ्गी है। तन्त्रसारमें इस विद्याके पूजन और मन्त्रादिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

अथ वक्षे महादेवीं मातङ्गीं सर्वसिद्धिदाम्।
अस्योपासनमात्रेण वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम्॥

(तन्त्रसार)

सर्वसिद्धिदायिनी मातङ्गीकी उपासना करनेसे ही साधक अति शीघ्र वाक् सिद्धि लाभ करते हैं।

''ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातङ्ग्यै फट् स्वाहा'' यही मातङ्गी देवीका मन्त्र है। इस मन्त्रके ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द: विराट् तथा देवता मातङ्गी देवी हैं। यह देवी साधकके सभी कार्य सिद्ध करती हैं। इनकी पूजा-पद्धति तन्त्रसारमें विस्तारपूर्वक लिखी है। इस महाविद्याकी पूजामें यन्त्रको अंकित करना आवश्यक है। पहले षट्कोण अंकित करके बाहर अष्टदल पद्म बनावे। उस षट्कोणमें देवीका



मूलमन्त्र लिख दें। इस प्रकार मन्त्र तैयार हो जानेपर जपा पुष्प-द्वारा देवीकी पूजा करनी होगी। मन्त्रस्थित पद्मके अष्टदलमें विविध उपहार-द्वारा मनोभवा, रति, प्रीति, क्रिया, श्रद्धा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमदना और अनङ्गलालसा इन आठ शक्तियोंका पूजन और जप करना उचित है। इसके पश्चात् देवीका ध्यान और पूजन करना होता है। ध्यान यथा—

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासनस्थिताम्।
वेदैर्बाहदण्डैरसिखेटकपाशाङ्कुशधराम्।।

(तन्त्रसार)

इस प्रकार देवीका ध्यान करके मनोहर गन्धपुष्पादि उपहार-द्वारा पूजा करे और शक्कर मिला हुआ पायस नैवेद्य चढ़ावे।

मातङ्गी मन्त्रका यदि पुरश्चरण करना हो तो पहले छह हज़ार जप करना होगा। जपके पश्चात् दशांश संख्यामें घी और मधु मिले हुए ब्रह्मवृक्षके समिधसे होम करना होगा। होमके समय उक्त अष्टशक्तिकी आहुति देनी होगी।

इस देवताकी पूजामें विशेषता यह है कि पूजाके पश्चात् साधक किसी चौराहे-पर अथवा मरघटमें जाकर मछली और मांस प्रदान करके गुग्गुल-द्वारा धूप दे। रातको यह धूप देना होगा। इस प्रकार देवीकी आराधना करनेसे साधकका मनोरथ पूरा होगा और उसमें कविता करनेकी शक्ति आ जायगी। इस प्रयोग-द्वारा साधकका शत्रु-नाश होगा तथा उन्हें अग्निस्तम्भन और वाक्यस्तम्भनकी शक्ति उत्पन्न होगी। यें कहिये, मातङ्गी देवीकी पूजा करनेसे साधकका सभी अभीष्ट सिद्ध होगा।

वगलामुखी

यह दस प्रकारकी शक्तिमूर्त्ति कैसे आविर्भूत हुई थीं वह दशमहाविद्या प्रकरणमें दिया जा चुका है।

इस महादेवीके पूजामन्त्र और पूजामात्हात्म्यके विषयमें तन्त्रसारमें लिखा है कि इसका मन्त्र, साधक-वर्गका हितकर और शत्रुदलका स्तम्भनकारी ब्रह्मास्त्र स्वरूप है। इसके मन्त्रसे सबको स्तम्भित किया जा सकता है। यहाँतक कि वायुकी भी गति रुक सकती है।

इस देवीकी पूजासे वाक्स्तम्भन, बुद्धिनाश और शत्रुका क्षय होता है। देवीके मन्त्रका प्रयोग करनेसे सभी आधिभौतिक व्यापार साधित हो सकते हैं।

दस हज़ार बार मन्त्र जप करके निशाकालमें हरिद्रा और हरतालके साथ लवणहोम करनेसे दुष्ट व्यक्तिका वाक्स्तम्भन और बुद्धिविपर्यय होता तथा शत्रुका स्तम्भन किया जा सकता है। घृत, मधु और शर्कराके साथ पीतपुष्पका होम, स्तम्भन-कार्यविशेषमें फलप्रद है। कार्यसाधनार्थ पहले एक यन्त्र बनवाना आवश्यक है। पीछे स्तम्भनार्थ होमादि पूजा करनी होती है।

धातुफलक अथवा पाषाणपट्टपर अथवा हरिद्रा, धतूरे और हरताल-द्वारा यन्त्र अंकित करना ही उत्तम है। देवस्तम्भन और शत्रुओंके मुखस्तम्भनार्थ उक्त यन्त्र लिखकर उसे पीटे। हरिद्रादि पूर्वोक्त द्रव्य-द्वारा भोजपत्रपर यन्त्र लिखकर उसपर कुम्हारके चाककी मिट्टीसे एक बैल बनाकर रक्खे। फिर उसको पीढ़के नीचे रखकर वगलामुखीकी आराधना करनेसे विवादमें जयलाभ होता है। उस बैलकी



नाकमें पीली रस्सी डालकर प्रतिदिन पीतवर्ण पुष्पादि उपचार-द्वारा अपने घरमें पूजा करनेसे दुष्टका मुखस्तम्भन होता है।

वगलामुखीके मन्त्रका जप और उनकी पूजा स्वयं करनी चाहिए, किसीके द्वारा नहीं करानी चाहिए।

सभी महाविद्याओंकी साधना किसी सिद्ध गुरुसे मन्त्र-दीक्षा लेकर उनकी देखरेखमें ही करनी चाहिए। केवल पुस्तक देखकर साधना करनेसे कोई लाभ नहीं होता।

दसों महाविद्याओंके ध्यान, यन्त्र और मन्त्र परिशिष्टमें दे दिए गए हैं।





२०



योगिनी–तन्त्र



योगिनियोंकी संख्या असंख्य है जिनमेंसे चौंसठ मुख्य हैं। दुर्गापूजाके समय इन सब योगिनियोंकी पूजा करनी होती है। प्रधान चौंसठ योगिनियोंके नाम इस प्रकार देखे जाते हैं—

१. नारायणी, २. गौरी, ३. शाकम्भरी, ४. भीमा, ५. रक्तदन्तिका, ६. भ्रामरी, ७. पार्वती, ८. दुर्गा, ९. कात्यायनी, १०. महादेवी, ११. चण्डघण्टा, १२. महाविद्या, १३. महातपा, १४. सावित्री, १५. ब्रह्मवादिनी, १६. भद्रकाली, १७. विशालाक्षी, १८. रुद्राणी, १९. कृष्णपिंगला, २०. अग्निज्वाला, २१. रौद्रमुखी, २२. कालरात्रि, २३. तपस्विनी, २४. मेघस्वना, २५. सहस्राक्षी, २६. विष्णुमाया, २७. जलोदरी, २८. महोदरी, २९. मुक्तकेशी, ३०. घोररूपा, ३१. महाबला, ३२. श्रुति, ३३. स्मृति, ३४. धृति, ३५. तुष्टि, ३६. पुष्टि, ३७. मेधा, ३८. विद्या, ३९. लक्ष्मी, ४०. सरस्वती, ४१. अपर्णा, ४२. अम्बिका, ४३. योगिनी, ४४. डाकिनी, ४५. शाकिनी, ४६. हारिणी, ४८. लाकिनी, ४९. त्रिदेशेश्वरी, ५०. महाषष्ठी, ५१. सर्वमंगला, ५२. लज्जा, ५३. कौशिकी, ५४. ब्रह्माणी, ५५. माहेश्वरी, ५६. कौमारी, ५७. वैष्णवी, ५८. ऐन्द्री, ५९. नारसिंही, ६०. वाराही, ६१. चामुण्डा, ६२. शिवदूती, ६३. विष्णुप्रिया, ६४. मातृका। ये चौसठ योगिनी हैं।

(बृहन्नन्दिकेश्वरी-पुराणोक्त दुर्गापूजा प.)

कालिकापुराणमें चौंसठ योगनियोंके नाम अन्य रुपसे लिखे हैं—

ब्रह्माणी, चण्डिका, रौद्री, इन्द्राणी, कौमारी, वैष्णवी, दुर्गा, नारसिंही, कालिका, चामुण्डा, शिवदूती, वाराही, कौशिकी, माहेश्वरी, शांकरी, जयन्ती, सर्वमंगला, काली, कापालिनी, मेधा, शिवा, शाकम्भरी, भीमा, शान्ता, भ्रामरी, रुद्राणी, अम्बिका, क्षमा, धात्री, स्वाहा, स्वधा, अपर्णा, महोदरी, घोररूपा, महाकाली, भद्रकाली, भयंकरी, क्षेमंकरी, उग्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डी, महामोहा, प्रियंकरी, बलविकारिणी, बलप्रमथिनी, मनोन्मथिनी, सर्वभूतदायिनी, उमा, तारा, महानिद्रा, विजया, जया, शैलपुत्री, चण्डघण्टा, स्कन्दमाता, कालरात्रि, चण्डिका, कूष्माण्डी, कात्यायनी और महागौरी। (कालिका पु. ५२, ५३, अ.)

इन सब योगिनियोंकी भी पूजा करनी होती है। तिथि विशेषसे योगिनी एक एक ओर रहती हैं। इसका विषय इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है—

प्रतिपद और नवमी तिथिमें जो योगिनी पूर्वकी ओर रहती है उसका नाम ब्रह्माणी है। द्वितीया और दशमी तिथिमें उत्तरमें रहनेवाली योगिनीका नाम माहेश्वरी है। तृतीया और एकादशीमें आग्नेयमें वासिनीका नाम कौमारी, चतुर्थी और द्वादशीमें नैर्ऋतकोणमें वासिनीका नाम नारायणी, पञ्चमी और त्रयोदशीमें दक्षिणमें वासिनी का नाम वाराही, षष्ठी और चतुर्दशीमें पश्चिममें वासिनीका नाम इन्द्राणी, सप्तमी और पूर्णिमाको वायव्यकोणमें वासिनीका नाम चामुण्डा, अष्टमी और अमावस्याको ईशानकोणमें जो रहती हैं उनका नाम महालक्ष्मी है।

योगिनी सम्मुख होनेपर यात्रा नहीं करनी चाहिए। योगिनी प्रतिपद और नवमीमें पूर्वमें, तृतीया और एकादशीमें आग्नेयकोणमें, पञ्चमी और त्रयोदशीमें दक्षिणमें, चतुर्थी और द्वादशीमें नैर्ऋत्य कोणमें, षष्ठी और चतुर्दशीमें पश्चिममें, सप्तमी और पूर्णिमामें वायव्य कोणमें, द्वितीया और दशमीमें उत्तरमें, अष्टमी और अमावस्यामें ईशान कोणमें अवस्थान करती हैं। यात्रादि शुभ कार्योंमें योगिनीका शेष ८ दण्ड (४८ मिनट) परिवर्ज्जनीय है। दक्षिण और सम्मुखस्थ योगिनीमें यात्रा करनेसे वध-वन्धनादि होता है



तथा वाम और पृष्ठस्थ योगिनीमें गमन करनेसे सर्वार्थसिद्धि होती है। किसी शुभकार्यके लिये गमन करते समय योगिनीका शुभाशुभ देखकर यात्रा करना आवश्यक है।

योगिनी-साधन

जिस प्रकार महाविद्याएँ दिव्य शक्तियाँ हैं, उसी प्रकार योगिनी भी दैवी शक्ति है जिसकी पूजा और उपासना विशेष विधि-द्वारा करनेपर विशेष फल प्राप्त होता है।

भूतडामरमें योगिनी-साधनकी विस्तृत विधि दी गई है। यथाविधि योगिनी-साधन करनेसे अनेक प्रकारका ऐश्वर्यलाभ होता है। यह योगिनी-साधन सर्वार्थ-सिद्धिप्रद है और अति गोपनीय तथा देवताओंको भी दुर्लभ है। यक्षाधिपति कुबेर भी योगिनी-साधनसे ही धनाधिप हुए हैं।

निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार योगिनी-साधन करना होता है। प्रात:काल उठकर प्रात: कृत्यादि समाप्त करके हौं इस मन्त्रसे आचमन करें। पीछे ॐ सहस्त्रारं हुं फट् इस मन्त्रसे दिग्बन्धन कर मूल मन्त्रसे प्राणायाम करना होगा। तेदनन्तर ह्रीं इस मन्त्रसे षडंगन्यास कर अष्टदल पद्म लिखे। इस पद्मके बीच योगिनीकी प्राण-प्रतिष्ठा करके पीठ पूजापूर्वक देवीका ध्यान करें। ध्यान यह है—

पूर्णचन्द्रनिभां देवीं विचित्राम्बरधारिणीम्।
पीनोत्तुंगकुचां वामां सर्वज्ञानाभयप्रदाम्।।

उपर्युक्त मन्त्रसे ध्यान करके मूल मन्त्रसे पाद्यादि-द्वारा पूजा करनी होगी। यथा-विधान पूजा करके 'ॐ ह्रीं धा आगच्छ सुरसुन्दरी स्वाहा' यह मूल मंत्र सहस्त्र बार जप करना होगा। प्रतिदिन ही प्रात:, सन्ध्या और मध्याह्न कालमें पूर्वोक्त रूपसे ध्यान करके जप करना होता है। इस प्रकार एक मासतक जपकर मासके अन्तिम दिन बृहती पूजा करके बलि देनी होती है। उसके पश्चात् एकाग्रचित्तसे देवीका जप करना होगा।

तब देवी, उस साधकको दृढ भक्ति जानकर निशीथ समयमें उसके पास आकर उपस्थित होंगी। तब साधक देवीको उपस्थित देखकर पाद्यादि दान करके पुष्पाञ्जलि हस्तसे अपना अभिलाष प्रकट करें। साधक, देवीको माता, भगिनी या भार्या-भावमें संबोधन करे। देवीको मातृ सम्बोधन करनेपर देवी वित्त, उत्तम द्रव्य, राजत्व तथा साधक जो प्रार्थना करे वही प्रदान करके उसका पुत्रवत् पालन करती हैं। भगिनी संबोधन करनेसे अनेक प्रकारके द्रव्य और दिव्य वस्त्र प्रदान करके दिव्य कन्या ला देती हैं। साधक इसी साधनाके बलसे भूत-भविष्यत् कह सकता है तथा जो प्रार्थना करता है देवी वही प्रतिदिन प्रदान करती रहती हैं।

यदि देवी साधककी भार्या हों तो साधक सर्वराजप्रधान तथा स्वर्ग या पातालके सभी स्थानोंपर गमन कर सकता है। इस साधनसे देवी जो द्रव्य प्रदान करती हैं वह अवर्णनीय है। साधक इस प्रकार साधना करके कभी भी दूसरी स्त्रीसे सम्बन्ध न रक्खे केवल देवीके साथ ही रमण करे। विवाहित पुरुषको भार्या रूपसे योगिनीकी साधना नहीं करनी चाहिए अन्यथा सर्वनाश हो जाता है।



कामप्रदा-योगिनी-साधना

यह योगिनी-साधन पहले ब्रह्माने वर्णित किया था। यह साधन करनेके लिये नदीके किनारे जाकर स्नान और सन्ध्यादि सम्पन्न करें। पीधे पूर्ववत सब काम करके चन्दन-द्वारा मण्डल लिखना होगा।

इस मण्डलके बीच अपना मन्त्र लिखकर आवाहन करके मनोहराका इसप्रकार ध्यान करे—

कुरंगनेत्रां शरदिन्दुवक्त्रां बिम्बाधरां चन्दनगन्धलिप्ताम्।
चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां श्यामां सदाकामदुघां विचित्राम्॥

इस प्रकार ध्यान करके यथाविधान देवीकी पूजा करनी होगी। पूजाके अनन्तर 'ॐ ह्रीं मनोहरे स्वाहा' यह मूलमन्त्र दस हज़ार बार जप करना होगा।

इस प्रकार एक मास-तक जप करके मासके शेष दिनमें निशीथ समयतक जप करना होगा। इस प्रकार जप करते रहनेसे मनोहरा देवी साधकको नितान्त अनुरक्त समझकर उसे वर देनेके लिये उसके समीप उपस्थित होती हैं। उस समय साधक भक्तिपूर्वक पाद्यादि-द्वारा उनकी अर्चना तथा 'ह्रीं' इस मन्त्रसे प्राणायाम और षडंगन्यास कर मांस-बलि देकर पूजा करे। तब मनोहरा साधकपर प्रसन्न होकर उसको प्रार्थित वर प्रदान करतीं तथा प्रतिदिन सौ सुवर्ण-खण्ड दान करती हैं। प्रत्येक दिन साधक इन सब सुवर्णोंको खर्च कर डाले नहीं तो देवी फिर उसे नहीं देंगी। इस साधनामें स्त्री-सहवास छोड़ देना होता है। इस साधना-के बलसे साधककी गति सर्वत्र अव्याहत रहती है।

सर्वकामप्रदा योगिनी-साधना

साधकको चाहिए कि वह वटवृक्षके नीचे जाकर प्रात:कृत्यादि करके देवीका यह ध्यान करे—

प्रचण्डवदनां गौरीं पक्वबिम्बाधरां प्रियाम्।
रक्ताम्बरधरां वामां सर्वकामप्रदां शुभाम्॥

इस प्रकार ध्यान करके 'ह्रीं' इस मन्त्रसे प्राणायाम और षडंगन्यास करके मांसोपहारसे देवीकी पूजा करें। 'ॐ ह्रीं हूं रक्षकर्माणि आगच्छ स्वाहा' इस देवीके मूल मन्त्रसे प्रतिदिन दस हज़ार जप करना होगा। प्रतिदिन इसे उच्छिष्ट रक्त-द्वारा अर्घ्य देना उचित है। ऐसा करनेसे देवी उसे अनुरक्त समझकर उसके निकट उपस्थित होती हैं। पीछे साधकके अर्चना करनेसे देवी सपरिवार उसकी भार्या बन जाती हैं। उसके सिद्ध होनेपर अपनी पत्नी छोड़ देनी होती है। ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रको यह साधना नहीं करनी चाहिए।

कामेश्वरी योगिनी-साधन

इससे साधक पूर्ववत् सब काम करके भोजपत्रपर गोरोचना-द्वारा देवीकी प्रतिमूर्त्ति बनाकर यथाविधान देवीकी पूजा करे।

देवीका ध्यान—

कामेश्वरीं शशांकास्यां चलत्खञ्जनलोचनाम्।
सदा लोलगतिं कान्तां कुसुमास्त्रशिलीमुखाम्॥

इस प्रकार ध्यान करके पूजा करे तथा 'ॐ ह्रीं आगच्छ कामेश्वरि स्वाहा' यह मूलमन्त्र शय्या पर बैठकर एक सहस्त्र जप करना होगा। प्रतिदिन ही इस प्रकार सहस्त्र जप करना होता है। इस प्रकार एक मासतक जपकर मासके शेष दिन घृत और मधु-द्वारा दीया जलाकर पूर्वोक्त रूपसे देवीकी पूजा करके जप करता रहे। देवी निशीथ कालमें साधकके समीप उपस्थित हो उसे अभिलषित वर देती



हैं। देवी पतिकी भाँति उसकी सेवा और विविध द्रव्य प्रदान करती हैं। इस प्रकार सारी रात उसके निकट रहकर भोरमें चली जाती हैं।

रतिसुन्दरी योगिनी-साधन

साधक पूर्वोक्त रूपसे प्रातः कृत्यादि करके भोजपत्रपर देवीकी प्रतिमूर्त्ति अकित करके उसका ध्यान करें—

सुवर्णवर्णां गौरांगीं सर्वालंकारभूषिताम्।
नूपुरांगदहाराढ्यां रम्यां च पुष्करेक्षणाम्॥

इस प्रकार ध्यान करके 'ॐ ह्रीं आगच्छ रतिसुन्दरि स्वाहा' इस मूल मन्त्रसे पूजा करके सहस्र बार मन्त्र जपना होता है। इस पूजामें जाती पुष्प (चमेलीका फूल) बड़ा प्रशस्त है। पीछे प्रतिदिन इस प्रकार एक हजार यह मन्त्र जपना होता है। एक मास इस प्रकार जप करके शेष दिनमें देवीकी पूजा करके जप करे। उस समय रतिसुन्दरी साधकको दृढप्रतिज्ञ जानकर निशीथ समयमें उसके समीप आगमन करती हैं। साधकको चाहिए कि वह उस समय उनकी अर्चना करे। इससे देवी सन्तुष्ट होकर प्रीतिप्रद भोजनादि-द्वारा साधकको सन्तुष्ट करतीं और सबेरे साधककी आज्ञानुसार चली जाती हैं। साधक निर्जन स्थानमें या प्रान्तरमें इस प्रकार सिद्ध होकर अपनी भार्याको छोड़कर वहाँ जाय। इसके विरुद्ध चलनेसे साधक विनष्ट हो जाता है।

पद्मिनी योगिनी-साधन

साधकको अपने घरमें या शिवके समीप पूर्वकी भाँति सब काम करके रक्तचन्दन-द्वारा 'ॐ ह्रीं आगच्छ पद्मिनी स्वाहा' यह मूल मन्त्र भोजपत्रपर लिखना होगा। फिर उसका यह ध्यान करके यथाविधान पूजा करे—

पद्माननां श्यामवर्णां पीनोत्तुंगपयोधराम्।
कोमलांगीं स्मेरमुखीं रक्तोत्पलदलेक्षणाम्॥

इस ध्यानसे पूजा करके एक सहस्र मूल मन्त्र जपे। इस प्रकार नित्यकर्म करके मासान्त पूर्णिमा तिथिमें यथाविधान पूजा करके भक्तिके साथ मन्त्र जपे। पीछे देवी निशीथ समयमें साधकके निकट जाकर उसकी भार्या होती हैं तथा उसे भूषणादि-द्वारा सन्तुष्ट करती हैं। पद्मिनी इस प्रकार नित्य उसके प्रति पतिवत् व्यवहार करके उसे स्वर्ग ले जाती हैं। साधक अपनी भार्या छोड़कर केवल पद्मिनीको ही भजा करे।

नटिनी योगिनी-साधन

विश्वामित्रने इस योगिनीका साधन किया था। साधक अशोक वृक्षके पास जाकर मूलमंत्रसे विधिपूर्वक सब काम करे। पीछे इस प्रकार नटिनी योगिनीका ध्यान करना होगा—

त्रैलोक्यमोहिनीं गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम्।
विचित्रालंकृतां रम्यां नर्त्तकीवेशधारिणीम्॥



इस प्रकार ध्यान करके मूल मन्त्रसे पूजा करनी होगी। 'ॐ ह्रीं नटिनि स्वाहा' देवीका यह मूल

मंत्र प्रतिदिन हज़ार बार जपकर शेष दिनमें बड़ी पूजा करनी आवश्यक है। इस प्रकार जप और पूजा करते रहनेपर आधी रातको देवी साधकको पहले थोड़ा भय दिखाती हैं। इससे साधक भीत न होकर विधिवत् जप करता रहे। पीछे देवी उसके पास आकर उसे वर ग्रहण करनेका आदेश देती हैं। साधक देवीके वचनको सुनकर उन्हें माता, भगिनी या भार्या कहकर सम्बोधित करे। साधक देवीका जिस प्रकार सम्बोधन करेगा, देवी भी उसी प्रकार काम करके साधकको सन्तुष्ट करती हैं। मातृ सम्बोधन करनेपर देवी उसे पुत्रवत् पालतीं तथा प्रतिदिन सौ सुवर्ण खण्ड और अनेक प्रकारके अभिलिखित द्रव्य प्रदान करती हैं। भगिनी सम्बोधन करनेपर देवकन्या, नाग-कन्या या राजकन्या ला देती हैं। इससे साधक, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान सभी विषय जान सकता है। भार्या सम्बोधन करनेसे विपुल धन और अभिलाषा पूर्ण करती हैं।

मैथुनप्रिया योगिनी-साधन

भोजपत्रपर कुंकुम-द्वारा देवीकी प्रतिमूर्त्ति अंकित करके अष्टदल पद्म अंकित करे। उसके पश्चात् न्यासादि करके इस प्रतिमूर्त्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा कर यह ध्यान करें—

शुद्धस्फटिकसंकाशां नानारत्नविभूषिताम्।
मञ्जरीहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डिताम्॥

इस प्रकार ध्यान तथा प्रतिदिन एक सहस्र जप करके यह मूल मंत्र जप करना होगा— ॐ ह्रीं गजानुरागिनि मैथुनप्रिये आगच्छ स्वाहा । यह साधना कृष्णा प्रतिपद्से आरंभ करनी होती है। इससे प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें पूजा करनी चाहिए। पीछे पूर्णिमा तिथिमें गन्धादि-द्वारा यथाविधान पूजा करें। इस प्रकार पूजा करके समूचे दिन और रात मूल-मंत्रका जप करना होगा। देवी भोरमें साधकके पास जाती और अभिलषित वर देती हैं। देव, दानव, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष या राक्षसकन्या ये सब साधकको चर्व्यचष्यादि नाना प्रकारके द्रव्य ला देती हैं। देवी साधकको प्रतिदिन सौ सुवर्ण खण्ड दान करती है। देवी इस प्रकार वर देकर अपने घर चली जाती हैं। इस सिद्धिके बलसे साधक चिरंजीवी, नीरोग, सर्वज्ञ, सुन्दर तथा सभीका अधिपति होता है। (भूतडामर)

जो सब व्यक्ति सिद्ध हुए हैं उनके उपदेशसे ही ये सब साधन करने होते हैं क्योंकि गुरुके उपदेशके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। साधकके स्वयं यह सब काम करनेसे वह सिद्ध नहीं होता।

बृहद्भूतडामरमें इसके अतिरिक्त चौंसठ योगिनी-साधनका विषय भी उल्लिखित है। इसके लिये चौंसठ योगिनी तथा सात करोड़ योगिनियोंका यथा-विधान चक्र धारण करके साधना करनी होती है। इस चक्रधारणके अतिरिक्त कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। पार्वतीजीने शिवाजीसे पूछा-

इदानीं श्रातुमिच्छामि योगिनीचक्रमुत्तमम्।
येन विना न सिध्यन्ति कलौ भूतेन्द्रनायिका॥

(बृहद्भूतडा.)



अन्य दैवी शक्तियाँ

योगिनी-तन्त्रमें योगिनीके साधन आदिका विस्तारसे वर्णन है।

शाकिनी

तन्त्रसारमें भी शाकिनीकी पूजा आदिका विषय लिखा है। तारा देवीके न्यासस्थलमें लिखा है कि षट्चक्रके मध्य विशुद्धाख्य महाचक्रमें शाकिनीके साथ सदाशिवको अकारादि षोडश स्वर संयुक्त करके न्यास करना होता है।

इसे सिद्ध करना कठिन है। इसमें अनेक प्रकारके भय उत्पन्न होते हैं। इसलिये इसे साधनेका व्यापक निषेध किया गया है।

डाकिनी

पिशाची, यह किसी मनुष्यको देखनेसे ही उसका अनिष्ट करती है। इसकी साधना केवल वे ही कर सकते हैं जिन्होंने उग्रतारा मंत्र सिद्ध कर लिया हो।

कर्णपिशाची

जो साधक निम्नांकित मन्त्र तीन सहस्र बार नित्य इक्कीस दिनतक प्रातः ८ बजेसे पूर्व जप ले उसे कर्णपिशाची सिद्ध हो जाती है जो साधकको किसीका भी भूत, भविष्य, वर्त्तमान कानमें आकर बता देती है। यह शक्ति भूत और वर्त्तमान निश्चित रूपसे ठीक बताती है किन्तु भविष्य प्रायः भ्रामक होता है। मन्त्र यह है-

ॐ अरविन्दे स्वाहा। (षडक्षर मन्त्र)

इसके सम्बन्धमें डाकिनी-तन्त्रमें लिखा है-

अयुत जयेदेकविंशतिदिनं यावत् कर्णपिशाचिनी सिध्यति।
भूतभविष्यद्वर्त्तमानसर्वाः वार्त्ताः कर्णे कथयति॥

इनके अतिरिक्त कई सहस्र शक्तियाँ हैं जिन्हें सिद्ध कर लेनेसे अनेक प्रकारके कार्य सिद्ध हो सकते हैं किन्तु सिद्ध गुरुके उपदेश और निर्देशके बिना साधना करनेसे भयानक अनिष्ट होता है। इसलिये कोई भी साधना गुरुके बिना कभी नहीं करनी चाहिए।





: षोडशी यंत्र :

१	२	३	४	२१	२२	२३	२४	२४८	२४७	२४६	२४५	२४४	२४३	२४२	२४१
७	३१	३२	३३	३४	५१	५२	५४	२१९	२१८	२१७	२१६	२१५	२१४	२१३	२५०
१७	४५	५७	५८	५९	७२	७३	७४	१९४	१९३	१९२	१९१	१९०	१८९	२१२	२४०
१८	४६	६९	७९	८१	८३	९३	९४	१७३	१७२	१७१	१७०	१६९	१८८	२११	२३९
२६	४७	७०	८९	९७	९८	१०७	१०८	१५६	१५५	१५४	१५३	१६८	१८७	२३०	२३१
२७	४८	७१	९०	१०५	१११	११७	११९	१४२	१४३	१३९	१५२	१६७	१८६	२०९	२३०
२९	५५	७७	९५	१०९	११६	१२८	१२१	१३०	१३५	१४१	१४८	१६२	१८०	२०२	२२८
२२७	२०१	१७९	१६१	१४७	१३७	१३३	१३२	१२३	१२६	१२०	११०	९६	७८	५६	३०
२२९	२०४	१८१	१६५	१५१	१४४	१३१	१३४	१२५	१२४	११३	१०६	९२	७६	५३	२८
२३२	२०७	१८२	१६६	१५७	१४५	१२२	१२७	१३६	१२९	११२	१००	९१	७५	५०	२५
२३७	२०८	१९५	१७५	१५८	११८	१४०	१३८	११५	११४	१४६	९९	८२	६२	४९	२०
२३८	२२०	१९६	१७७	१०४	१५९	१५०	१४९	१०१	१०२	१०३	१६०	८०	६१	३७	१९
२४९	२२१	१९७	८८	१७६	१७४	१६४	१६३	८४	८५	८६	८७	१७८	६०	३६	८
२५१	२२२	६८	१९९	१९८	१८५	१८४	१८३	६३	६४	६५	६६	६७	२००	३५	६
२५२	४४	२२५	२२४	२२३	२०६	२०५	२०३	३८	३९	४०	४१	४२	४३	२२६	५
१६	२५५	२५४	२५३	२३६	२३५	२३४	२३३	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	२५६

२१



कश्मीरका तन्त्र–विज्ञान



महाभारत-कालमें पाँच दार्शनिक सम्प्रदाय प्रचलित थे—सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वैदिक और पाशुपत—

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै।।

—शान्तिपर्व, अध्याय ३४९

इनमेंसे पाशुपत-सम्प्रदाय ही शैव सम्प्रदाय था।

ब्रह्मसे शंकरका तादात्म्य सर्वप्रथम श्वेताश्वतर उपनिषदमें ही पाया जाता है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।।

गीताके 'रुद्राणां शंकरश्चास्मि'-से भी इसीका समर्थन होता है। यजुर्वेदमें तो पूरा सोलहवाँ अध्याय ही रुद्र या महेश्वरसे ही सम्बद्ध है। तात्पर्य यह है कि महाभारतके बहुत पहलेसे व्यापक रूपसे योरपसे लेकर भारतके सब प्रदेशोंमें शंकरकी पूजा होती चली आ रही थी।

शान्तिपर्वके ३४९वें अध्यायमें कहा गया है कि पाशुपत-दर्शनके मूल आचार्य शंकर अर्थात् उमाके पति और ब्रह्माके पुत्र शिव ही हैं। इस पाशुपत-मतका विस्तृत वर्णन शान्तिपर्वके २८०वें अध्यायमें विष्णुकी स्तुतिके बीचमें और २८४वें अध्यायमें दक्ष-द्वारा की गई शंकरकी स्तुतिमें प्राप्त हो जाता है। उनके अनुसार जब दक्षके यज्ञमें शिवजीको हविका भाग नहीं मिला तब देवी सती और शंकरको इतना क्रोध चढ़ आया कि शंकरने अपने क्रोधसे वीरभद्र नामके अपने गणको उत्पन्न करके उसके हाथों दक्षके यज्ञका विध्वंस करा डाला। तब शंकर स्वयं अग्निमें प्रकट हो उठे और दक्षने १००८ नामोंसे उनकी स्तुति की। महाभारतके अनुशासनपर्वमें उपमन्युने जो शिवके सहस्र नाम बताए हैं उनसे ये नाम बहुत भिन्न हैं। इससे स्पष्ट है कि शिवके एक हज़ार आठ ही नहीं, और भी न जाने कितने नाम हैं। स्तुतिके समय स्वयं शंकरने दक्षको जो पाशुपत-व्रतका खुला रहस्य समझाया था वह अत्यन्त गूढ और अपूर्व होनेपर भी सब आश्रमोंके लिये खुला हुआ है जिसका पालन करनेसे मोक्ष भी मिल जाता है।

पाशुपत-मतके अनुसार पशुपति (शिव) सब देवताओंमें मुख्य हैं। वे ही सारी सृष्टिको उत्पन्न करते हैं। उनकी सगुण भक्तिके लिये उनके साथ साथ स्वामि-कार्त्तिकेय, पार्वती और नन्दीश्वरकी पूजाका भी विधान है। शंकरकी आठ मूर्त्तियाँ मानी गई हैं-पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र और पुरुष। महाभारतके अनुशासनपर्वमें उपमन्युके आख्यानमें जहाँ इस मतका महत्त्व दिखाया गया है वहीं उसमें सब मतोंके सामंजस्यका भी संकेत मिलता है।

उसमें कहा गया है—सबसे पहले शंकरने ही इन पंचभूतों (पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश)-वाले ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके सृष्टि करनेके लिये ब्रह्माको उत्पन्न किया। उन्होंने ही पञ्चमहाभूत, बुद्धि, मन और महत्तत्त्व उत्पन्न किए। उन्हीं महादेवसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रको शक्ति मिली। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, लोकालोक, मेरुपर्वत और अन्य सब स्थानोंमें शंकर ही शंकर व्याप्त हैं। वे दिगम्बर रहते हैं, ऊर्ध्वरेता हैं (वीर्य स्खलित नहीं होने देते), उन्होंने कामदेवको जीत लिया है, वे श्मशानमें क्रीडा करते रहते हैं, उनके आधे अंगमें उनकी पत्नी पार्वती



व्याप्त हैं, उन्होंने ही विद्या और अविद्या तथा धर्म और अधर्म दोनोंको उत्पन्न किया है। महादेव सारे जगत्के आदि कारण हैं, सारे चराचर जगत्में उमा और शंकरकी ही दोनों देह व्याप्त हैं।

— अनुशासनपर्व अध्याय १४

उपमन्युने शंकरका दर्शन करके देखा कि श्वेत कैलासके आकारवाले बहुत ही गोरे चिट्टे महादेवजी बैठे हुए हैं जिनके गलेमें जनेऊ है, अट्ठारह भुजाएँ हैं, तीन नेत्र हैं, हाथमें पिनाक धनुष्, पाशुपत अस्त्र और त्रिशूल है जिसमें साँप लिपटा हुआ है, जिनके एक हाथमें परशुरामका दिया हुआ परशु है, जिनकी दाहिनी ओर हंसपर ब्रह्मा बैठे हैं और बाँईं ओर गरुडपर शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथमें लिए हुए विष्णु हैं। उनके सामने हाथमें शक्ति और घण्टी लिए मोरपर स्कन्द (कार्त्तिकेय) बैठे हैं। यह शंकरका सगुण रूप है।

इन्द्रने भी शतरुद्रीयके द्वारा शंकरकी स्तुति की थी। यद्यपि महाभारतमें शंकरके अवतारोंका वर्णन नहीं मिलता, तथापि उन्होंने जो त्रिपुरको जलाया था उसका संकेत बार बार मिलता चलता है। इससे अधिक पाशुपत मतके तत्त्व-ज्ञानका, पाशुपतमतके केन्द्र-स्थानका और पाशुपतमतके अनुसार मुक्त जीवकी गतिका महाभारतमें कोई विवरण नहीं मिलता। कहीं-कहीं यह संकेत अवश्य मिलता है कि पाशुपतमतका अनुयायी पहले तो कैलासमें शिवजीका गण हो जाता है और फिर कल्पके अन्तमें शिवके साथ मुक्त हो जाता है।

महाभारतके अवतरणोंसे प्रतीत होता है कि पाशपतमतमें संन्यासाश्रमसे भी एक सीढ़ी ऊँचेपर अत्याश्रमी माने गए हैं। यद्यपि आजकलके बहुतसे मतोंमें भी अत्याश्रमी बननेका उल्लेख मिलता है तथापि दक्षके पाशुपत-व्रतमें उनका जैसा विवरण मिलता है वैसा केवल श्वेताश्वतर उपनिषद्में ही मिलता है, अन्य कहीं नहीं।

पाशुपतमतके अनुसार सभी वर्णोंको मोक्ष मिल जाता है। इस पाशुपतमतमें तपका विशेष महत्त्व माना जाता था जिसके अनुसार कुछ लोग वायु पीकर रह जाते थे, कुछ जल पीकर, कुछ जप करके, कुछ भगवानका चिन्तन और योगाभ्यास करके, कुछ धूनीका धुआँ पीकर, कुछ पञ्चाग्नि (चारों ओर अग्नि जलाकर ऊपर सूर्यकी गरमी) तापकर, कोई दूध पीकर और कुछ हाथोंका प्रयोग न करके गौओंके समान नीचे मुख करके खाते-पीते थे। इसी प्रकार कोई तो पत्थरपर अनाज कूटकर अपनी जीविका चलाते थे, कोई चन्द्रमाकी किरणोंपर, कोई पानीके फेनपर, कोई पीपलकी पीपलियाँ (पीपलका फल) खाकर ही अपना जीवन-निर्वाह करते थे, कोई पानीमें ही पड़े रहते थे और कोई पानीमें पड़े रहकर हाथ ऊपर उठाकर वेद-पाठ किया करते रहते थे। महाभारतमें बताया गया है कि तेजस्वी पुत्र प्राप्त करनेके लिये कृष्णने भी छह महीनेतक ऐसा ही तप किया था। इतना ही नहीं, उपमन्युके आख्यानमें तो यह भी कह दिया गया है कि शिवजी स्वयं भी निरन्तर तप करते हैं।

महाभारतमें अनुशासनपर्वके ग्यारहवें अध्यायमें शिवके सहस्रनाम-स्तोत्रके सम्बन्धमें कहा गया है कि यह स्तोत्र ब्रह्माने इन्द्रको, इन्द्रने मृत्युको, मृत्युने रुद्रको, रुद्रने तण्डीको, तण्डीने शुक्रको, शुक्रने गौतमको, गौतमने वैवस्वत मनुको, मनुने यमको, यमने नचिकेताको, नचिकेताने मार्कण्डेयको और मार्कण्डेयने उपमन्युको बताया था। इस विवरणसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महादेवसे रुद्र भिन्न हैं, पर उनकी शक्तिवाले हैं।



पाशुपत-सिद्धान्त

वैष्णवोंके पांचरात्र सम्प्रदायके समान ही लकुलीशने पाशुपत-सम्प्रदाय चलाया जिसे समझानेके लिये उसने पञ्चार्थ नामका ग्रन्थ भी लिखा। इस पाशुपत-सम्प्रदायके तीन प्रमुख रूप प्रकट हुए— पाशुपत, कापालिक और शैव।

लकुलीश पाशुपत-सिद्धान्त

पाशुपत धर्मका आरम्भ भगवान् शंकर-द्वारा मानते हुए वे कहते हैं कि इसका प्रतिपालन और पूजन पहले स्कन्दने किया, फिर अगस्त्यने और अगस्त्यने ही इस सनातन शिवधर्म और पाशुपत-धर्मका प्रचार किया। इसकी पूजा करनेवाले वीर माहेश्वर या वीर शैव (लिंगायत) कहलाते हैं जो लिंगके साथ ही जीते हैं, लिंगके साथ ही मरते हैं, सदा पञ्चाक्षरी (ॐ नमः शिवाय) विद्यामें ही रत रहते हैं और दिन-रात ॐ नमः शिवाय जपते रहते हैं।

लिंगपुराणमें भगवान् शंकरके अट्ठाईस अवतारोंके वर्णनके प्रसंगमें कहा गया है कि द्वापरके अन्तमें लकुलीश नामसे भगवान् शंकरका अवतार होगा। ये लकुलीश ही पाशुपत-सम्प्रदायके उद्धारक थे। सर्वदर्शनसंग्रहमें लकुलीश पाशुपतदर्शनके विवरणसे स्पष्ट है कि यह दार्शनिक सिद्धान्त भी पाशुपतकी ही एक शाखा थी जिसके पालक मांस-मदिराका सेवन करते थे और यज्ञोंमें पशुबलि भी देते थे। यह मत इतना अधिक व्यापक हो चला था कि शंकराचार्यजीको भी पाशुपतमतका खण्डन करना पड़ा। पाशुपतमतका जो मूल रूप बचा रह गया था उसमें कुछ लोग तो सामान्य रीतिसे शंकरकी उपासना करते थे और कुछ ऐसे अनन्य भक्त थे जो निरन्तर अपने साथ एक डलियामें शिवलिंग लिए रहते थे। जब दुर्वासा काशीमें गए थे तब उन्होंने वहाँ पाशुपत-मतवाले लोगोंको देखा था।

सर्वदर्शनसंग्रहके अनुसार लकुलीश-सिद्धान्तमें जीव-मात्रको पशु और शिवको पशुपति माना गया है। इस मतके अनुसार भगवान् पशुपतिने बिना किसी कारण और साधनके ही यह संसार बना खड़ा किया है। जितना कुछ दिखाई देता है उस सबको उन्होंने ही रचा है यहाँतक कि हमारे कर्मोंके मूल कर्त्ता भी परमेश्वर शिव ही हैं।

इस सिद्धान्तके अनुसार मुक्ति दो प्रकारकी मानी गई है— सब दु:खोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति अर्थात् सारे दु:ख पूर्ण रूपसे दूर हो जाना, दूसरी परम ऐश्वर्य- की प्राप्ति। यह भी दो प्रकारकी होती है— एक तो ऐसी दृक्शक्ति प्राप्त हो जाना कि मनुष्य सर्वज्ञ हो जाय और दूसरी ऐसी क्रिया-शक्ति प्राप्त हो जाना कि जो इच्छा करे वह तुरन्त पूर्ण हो जाती रहा करे। इन दोनों शक्तियोंकी सिद्धिको परमैश्वर्य मुक्ति कहते हैं। ये लोग भगवान्‌का दास होनेको मुक्ति नहीं, बन्धन मानते हैं।

इस सम्प्रदायके लोग सारे शरीरपर चिताभस्म पोते रहते हैं और चिताभस्ममें ही सोते हैं। ये छह प्रकारसे शिवकी उपासना करते हैं— भयंकर रूपसे हँसकर, अट्टहास करके, नाचकर, गाकर, हुडुक्क और अस्पष्ट शब्दोंमें ॐकारका जप करके।



शैव मत

महाभारतकालसे पूर्व भी शैव मत मान्य था। इसका एक बड़ा प्रमाण है कि उपनिषद्में भगवान

शंकरके लिये भगवत् शब्दका प्रयोग हुआ है और पातञ्जल महाभाष्यमें शिवके उपासकके लिये शिवभागवत शब्दका प्रयोग प्रचलित था। वैशेषिक दर्शनके भाष्यके अन्तमें महर्षि कणादकी वन्दना करते हुए कहा गया है कि उन्होंने भगवान् महेश्वरके प्रसादसे योग और आचारके द्वारा वे सूत्र पाए थे। न्याय-भाष्यकी उद्योत टीका करनेवाले भारद्वाजको भी पाशुपताचार्य कहा गया है। विक्रमकी चौथी शताब्दीके एक कुषाण राजाके सिक्केकी एक ओर राजाको माहेश्वर सम्प्रदायका अनुयायी बताया गया है और दूसरी ओर त्रिशूल-धारण करनेवाले शिव और नन्दीका चित्र है। आठवीं शताब्दीमें भारतकी यात्रा करनेवाले चीनी यात्री ह्वेन्त्सांगने अपने वर्णनमें बारह बार पाशुपतोंकी चर्चा की है। संस्कृतके कवियोंमें कालिदास, सुबन्धु, बाण और भट्टनारायणने अपने ग्रन्थोंके आरम्भमें शिवकी ही वन्दना की है। इनमेंसे सुबन्धु, बाण और भट्टनारायणने तो विष्णुकी भी वन्दना की है जिससे प्रतीत होता है कि वे कट्टर शैव तो नहीं थे पर शिवको मानते अवश्य थे। इस प्रकार पूर्वमें स्याम, यवद्वीप, बालिद्वीपसे लेकर पश्चिममें अरबतक और रूसमें भी शिवकी पूजाके प्रमाण प्राप्त होते हैं। यहींतक नहीं, मिस्त्र, यूनान, बाबुलोनिया, इतली, फ्रांस, अमेरिका, अफ्रीका और पौलिनेशिया द्वीपोंमें भी शिवलिंगकी पूजा होती चली आ रही थी। मक्केमें हज करनेवाले मुसलमान यात्री जिस पत्थरका चुम्बन करते हैं वह स्वयं मोहम्मद साहबके हाथोंका स्थापित किया हुआ शिवलिंग ही बताया जाता है।

(श्रीरामदास गौड-द्वारा लिखित हिन्दुत्व पृष्ठ ६८८)

भारतसे बाहर अर्थात् भारत, पाकिस्तान और बँगलादेशकी सीमासे वाहर चित्रा, अफ़्रीदिस्तान, क़ाबुल, बलख़. बुख़ारा आदि प्रदेशोंमें तो अब भी हिन्दू हैं ही और उनके शिवालय भी हैं। इससे सिद्ध होता है कि शिव या शिवलिंगकी पूजा बहुत प्राचीन कालसे समस्त भूमण्डलपर विशेषत: दक्षिण-पश्चिम एशियामें व्याप्त थी।

शंकराचार्यजीके शारीरक भाष्यके अध्याय २ और पाठ ३ के ३७वें सूत्रके भाष्यसे स्पष्ट है कि पाशुपत मत ही माहेश्वर या शैवमत कहलाता था और स्वयं महेश्वर ही उसके आदि उपदेशक भी हैं। किसी इतिहासकारने या शैव मतके किसी आचार्यने अभीतक यह स्पष्ट नहीं किया कि यह शैव मत कबसे चला आ रहा है।

पुराणोंमें तो शैव मतका व्यापक वर्णन मिलता ही है। विचित्र बात यह है कि शिवपुराण, स्कन्दपुराण और लिंगपुराणमें शिवजीकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन होते हुए भी शैव सम्प्रदायोंकी चर्चा कहीं नहीं मिलती। केवल कूर्म-पुराणमें शैवधर्मके विभिन्न सम्प्रदायोंका कुछ विवरण अवश्य मिलता है जिसके अनुसार स्वयं शिवजीने ही कहा है कि प्रत्येक मुमुक्षुको पाशुपत आचारका सेवन करना ही चाहिए। उसी प्रसंगमें यह भी बताया गया है कि पाशुपतमतके तीन रूप हैं— तान्त्रिक, वैदिक और मिश्र, जिनमेंसे तप्तलिंगाङ्क और शूल धारण करनेवाले तान्त्रिक हैं, लिंग, रुद्राक्ष और भस्म धारण करनेवाले वैदिक हैं और जो समान रूपसे सूर्य, शिव, शक्ति, गणेश और विष्णुकी उपासना और पूजा करते हैं वे मिश्र पाशुपत हैं, जिन्हें स्मार्त्त भी कहा जाता है। जो मुमुक्षु लोग वैदिक मार्ग ग्रहण करते हैं उन्हें केवल वैदिक पाशुपत मार्ग ही ग्रहण करना चाहिए, मिश्र और तान्त्रिक नहीं।

वामनपुराणके पाँचवें अध्यायमें शैव, पाशुपत, कालमुख और कपाली नामके चार सम्प्रदायोंकी चर्चा हुई है जिन्हें सम्प्रदायके बदले वर्ण कहा गया है और फिर उन्हें ही अन्तमें आश्रम भी कह



दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि शैव सम्प्रदाय सब वर्णोंके लिये ग्राह्य था। कालमुखको कारुणिक सिद्धान्त भी कहा गया है।

कालमुख या कापालिक

श्रीकंठ शिवाचार्यने वायवीय-संहिताके आधारपर कहा है कि भगवान् महेश्वर अपनेको उमा-शक्तिके द्वारा विशिष्ट कर लेते हैं अर्थात् विशिष्ट शक्तिवाले बन जाते हैं। इस शक्तिमें जीव और जगत्, चित् और अचित् दोनोंके बीज विद्यमान रहते हैं। उसी शक्तिको लेकर भगवान् महेश्वर सारे चराचरकी सृष्टि करते हैं। इस सिद्धान्तको शक्ति-विशिष्टाद्वैत भी कहते हैं। वीरशैव (लिंगायत) इसी सिद्धान्तको मानते हैं। इस सम्प्रदायवाले ही कालमुख या कारुणिक सिद्धान्तको मानते हैं।

शैव मतके तान्त्रिक साधु कापालिक लोग मनुष्यकी खोपड़ी लिए रहते हैं, मद्य-मांस आदिका सेवन करते और भैरव या शक्तिको बलि चढ़ाते हैं। पहले ये नरबलि भी दिया करते थे। ये वाममार्गीय शैव लोग श्मशानमें रहकर बीभत्स उपासना किया करते हैं।

रामानुजके अनुसार शरीरकी छह मुद्रिकाओंका ज्ञान पाकर और स्त्रीकी योनिमें स्थित आत्माका मनन करके जो लोग शिवकी उपासनामें ही सदा लीन रहा करते हैं उन्हें कपाल-सम्प्रदायी कहते हैं। इस सम्प्रदायके लोग मनुष्यकी खोपड़ीमें भोजन करते, शरीरपर चिता-भस्म लगाते, चिता-भस्म खाते, हाथमें डंडा लिए रहते, साथमें मदिराका पात्र रखते और मदिरामें स्थित रुद्र देवताकी उपासना किया करते हैं। ये लोग गलेमें रुद्राक्षकी माला पहनते, जटा रखते और गलेमें मुण्डमाल धारण करनेवाले भैरव और चण्डिकाकी उपासना किया करते हैं जिन्हें (भैरव और चण्डिकाको) ये लोग शिव और पार्वतीका अवतार मानते हैं। इसी सम्प्रदायकी एक शाखाको कालमुख या महाव्रतधर भी कहते हैं।

माहेश्वर सिद्धान्त

सर्वदर्शनसंग्रहमें सायणने माहेश्वर-सम्प्रदायके चार सिद्धान्त बताए हैं— शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर और लकुलीश पाशुपत। इनमेंसे लकुलीश पाशुपतका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

प्रत्यभिज्ञा-दर्शन

अभिनवगुप्तने अपने तन्त्रालोकमें प्रत्यभिज्ञादर्शनके विवेकमें तन्त्रको नवीन रूप दिया है। प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके अनुसार महेश्वर संसारके बनानेवाले तो हैं ही, साथ ही वे ही संसार भी हैं अर्थात् सारा संसार शिवमय ही है। वे ही ज्ञाता हैं, वे ही ज्ञान हैं। इस दर्शनके अनुसार पूजा-पाठ, जप-तप आदिकी कोई आवश्यकता नहीं है, केवल इसी ज्ञानकी आवश्यकता है कि जीव और ईश्वर एक हैं अर्थात् यह मान लेना कि ''मैं ही शिव हूँ'' 'शिवोऽहम्' । यह ज्ञान प्राप्त करना ही मुक्ति है। जीवात्मा और परमात्मामें भेद मानना ही भ्रम है। इस दर्शनके माननेवाले कहते हैं कि जिस मनुष्यमें ज्ञान और क्रियाशक्ति हैं वही परमेश्वर है। प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके माननेवाले शैव लोग कश्मीरमें ही हैं। इसीलिये इसे कश्मीरी शैव दर्शन भी कहते हैं।



प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके अनुसार अनेक रूप धारण कर सकनेवाले भगवान् महेश्वरको जब स्थावर, जंगम आदि अनेक रूपोंमें रहनेकी इच्छा होती है तब स्थावर और जंगम सृष्टिका निर्माण कर लेते

हैं और उन सभी रूपोंमें रमे रहते हैं। अत:, यह सारेका सारा जगत्‌ही महेश्वरात्मक है और ये महेश्वर भी स्वत: आनन्दरूप, ज्ञाता और ज्ञान-स्वरूप हैं।

इस दर्शनके अनुसार मुक्ति-स्वरूपिणी परात्पर सिद्धि प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय प्रत्यभिज्ञा अर्थात् जीवात्माको यह ज्ञान होना है कि मैं महेश्वरसे भिन्न नहीं हूँ, मैं ही शिव हूँ और इस प्रकार अपनेको पहचानकर यह अनुभव करना ही प्रत्यभिज्ञा है कि 'स एवेश्वरोऽहम्' (वह ईश्वर मैं ही हूँ), मैं ही शिव हूँ।

प्रत्यभिज्ञा (स्पन्द, षडर्थशास्त्र, षडर्थक्रम-विज्ञान, त्रिक्)-दर्शनमें पशु, पाश तथा पशुपति ये तीन पदार्थ बताकर उन्हें समझनेके चार साधन बताए गए हैं— विद्या, क्रिया, योग और चर्या। प्रत्यभिज्ञा-दर्शनको त्रिक्‌दर्शन इसलिये कहते हैं कि इसमें तीन प्रधान तन्त्र माने गए हैं— सिद्धा, नामक और मालिनी। इसमें पर, अपर और परात्पर-रूपी तीन त्रिक् माने गए हैं— परके अन्तर्गत शिव, शक्ति तथा उनका संघट्ट, अपर त्रिक्‌के अन्तर्गत शिव, शक्ति तथा नर और परात्पर-त्रिक्‌के अन्तर्गत परा, परापरा और अपरा नामकी तीन अधिष्ठात्री देवियाँ मानी गई हैं।

शैव-तन्त्रोंके अनुसार पशु, पाश तथा पशुपतिका ज्ञान करानेवाली शिक्षाको विद्या कहते हैं। अनेक प्रकारकी सांगोपांग दीक्षा-विधिको क्रिया कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधिका अभ्यास करके चित्तवृत्तिका निरोध करनेको योग कहते हैं और शास्त्र-विहित कर्म करने तथा शास्त्र-निषिद्ध कर्म छोड़ देनेको चर्या कहते हैं। सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न परम स्वतन्त्र, नित्य तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् महेश्वर ही पशुपति हैं जो सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह, ये पाँच कर्म करते रहते हैं। जीवात्माका नाम ही पशु है क्योंकि वह पाशोंमें बँधा रहता है। वह अणु नहीं, वरन् व्यापक और नित्य है।

ये पशु तीन प्रकारके होते हैं— विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल।

१. विज्ञानाकल

जो व्यक्ति परमात्माको पहचानकर जप, ध्यान और अभ्यास या योगके द्वारा कर्मोंका क्षय कर डालता है और कर्मोंका क्षय हो जानेके कारण जिसे शरीर और इन्द्रियोंका कोई बन्धन नहीं रह जाता और उसमें केवल मल-रूपी पाश (बन्धन) रह जाता है उसे विज्ञानाकल कहते हैं।

२. प्रलयाकल

जब जीवात्मा देह, इन्द्रिय आदि प्रलय-कालमें लीन हो जाती हैं और उसमें मायेय (मायाके कारण उत्पन्न) मल न रहनेपर भी आणव और कर्मज, ये दो ही मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाते हैं, वह प्रलयाकल जीव कहलाता है।

३. सकल

जिस जीवात्मामें आणव, मायेय और कर्मज तीनों मल (पाश) बने रहते हैं, वह कला आदि भोग-बन्धनोंसे युक्त होनेके कारण सकल कहलाता है।



विज्ञानाकल पशु (जीव)-के भी दो भेद हैं— समाप्त-कलुष और असमाप्त-कलुष।

समाप्त-कलुष

जीवात्मा जो भी कर्म करता चलता है उस एक एक कर्मकी तह मलपर मल बनकर जमती चलती है। इसलिये उस मलका परिपाक नहीं हो पाता। पर जब कर्मोंका त्याग हो जाता है तब मलकी तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं· तब वह समाप्त-कलुष कहलाने लगता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके विद्येश्वर पदोंपर पहुँचा देते हैं— अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्त्ति, श्रीकंठ और शिखंडी।

फलकी इच्छासे किए हुए धर्म-अधर्मवाले कर्मोंको ही कर्म-पाश कहते हैं।

प्रलयके समय जिस शक्तिमें सब कुछ लीन हो जाता है और सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वही माया-पाश है। इसलिये इन पाशोंमें बँधा हुआ जीव जब तत्त्वज्ञानके द्वारा इन्हें काट डालता है तभी वह परम शिवतत्त्व अर्थात् आनन्दमय पशुपति-पद प्राप्त कर लेता है। प्रत्यभिज्ञाका अर्थ ही है अपनेको यह जान लेना कि मैं शिव हूँ— शिवोऽहम्।

इस सम्प्रदायकी दो प्रमुख शाखाएँ मानी जाती हैं— (१) स्पन्दशास्त्र जिसका प्रवर्त्तन वसुगुप्त और उसके शिष्य कल्लाटने किया था। इस सम्प्रदायके दो प्रमुख ग्रन्थ हैं-त्रिसूत्रम् और स्पन्दकारिका। यह सम्प्रदाय नवीं सदी ईसवीमें प्रवर्त्तित हुआ था।

(२) दूसरी शाखा प्रत्यभिज्ञान-शास्त्र कहलाती है जिसका प्रवर्त्तन दसवीं शताब्दीमें सोमानन्द और उसके शिष्य उदयाकरने किया था। इस सम्प्रदायका प्रमुख ग्रन्थ शिवदृष्टि है जिसपर अभिनवगुप्तने लम्बी-चौड़ी टीका लिखी है।

इन उपर्युक्त दोनों सम्प्रदायोंमें अघोरी आचरणों और प्राणायामपर बहुत बल नहीं दिया गया है वरन् यह बताया गया है कि चित्तको शुद्ध करके आणव, मायेय और कायिक मलों (मलिनताओं)-को दूर कर देना चाहिए। इसीलिये स्पन्द और प्रत्यभिज्ञाके सिद्धान्त अघोरी रुद्र उपासकोंके सिद्धान्तसे अधिक आदरणीय माने जाते हैं।

राजतरंगिणी नामक कश्मीरके इतिहासको पढ़नेसे ज्ञात होता है कि कश्मीरका शैव सम्प्रदाय इतना अधिक प्राचीन है कि ईसासे पूर्व तीसरी शताब्दीमें सम्राट् अशोकने भी यहाँ दो शिवालय बनवाए थे और वहाँके प्रसिद्ध राजा दामोदर द्वितीय भी शिवके बहुत बड़े उपासक थे। इसी प्राचीन शिवकी उपासनाका पुनरुद्धार स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञा शास्त्रके आचार्योंने नवीं और दसवीं शताब्दी ईसवीमें किया।

शैव-सिद्धान्त

पाशुपत-सिद्धान्तके समान ही शैव-सिद्धान्तवाले भी मानते हैं कि सब जीव पशु हैं, पशुपति महेश्वर या शिव ही उनके पति स्वामी हैं। परमेश्वर शिव ही कर्म आदिके कर्त्ता और जीवोंको उनके कर्मके अनुरूप फल देते हैं। वे अपनी इच्छासे संसारको नहीं चलाते फिर भी वे ऐसे स्वतन्त्र कर्त्ता हैं कि जो चाहते हैं वह कर सकते हैं, कर लेते हैं। इस संसार-रूपी कार्यको करनेवाले, बनानेवाले ईश्वर निर्दोष और पञ्चमन्त्रात्मक हैं अर्थात् उनका शरीर पाँच मन्त्रोंसे बना हुआ है-ईशान मन्त्र उनका मस्तक है, तत्पुरुष मुख है, अघोर हृदय है, वामदेव गुह्य है और सद्योजात चरण है। वे सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं, शर्वशक्तिमान् हैं और जो चाहें सो कर सकते हैं।



पाश

मल, कर्म, माया और रोध-शक्ति ये चार पाश हैं। शैव-दर्शनमें पशुपति, पशु और पाश ये तीन पदार्थ ही माने गए हैं। दृक् (देखनेकी शक्ति) और क्रिया-शक्तिको ढके रखने और दबाए रखनेवाली स्वाभाविक अपवित्रताको मल कहते हैं। धर्म और अधर्म ही कर्म कहलाते हैं। प्रलयके समय जिसके भीतर सारे कार्य (सारा संसार और उसके सब पदार्थ) समा जाते हैं और फिर सृष्टि होनेपर जिसमेंसे सारे कार्य फिर आ निकलते हैं उसे माया कहते हैं। पुरुषकी गतिमें रुकावट डालनेवाले जितने भी काम हैं उन्हें रोध-शक्ति कहते हैं। भगवान शिव ही पति हैं और दीक्षा आदि जितने उपाय हैं वे शिवत्व प्राप्त करने (शिव ही हो जाने)-की साधनाएँ हैं।

विज्ञानाकल जीव

जीव तीन प्रकारके होते हैं— विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। मल-स्वरूपवाले और पाशमें बँधे हुए जीवको विज्ञानाकल, मल और कर्मके पाशमें बँधे हुए जीवको प्रलयाकल तथा मल, कर्म और मायाके पाशोंसे बँधे जीवको सकल कहते हैं। जिन विज्ञानाकल जीवोंके कलुष समाप्त हो गए हैं उन समाप्त-कलुष जीवोंको भगवान् दया करके अनन्त, सूक्ष्म, एक-नेत्र, शिवोत्तम, त्रिमूर्त्तिक, श्रीकण्ठ और शिखण्डी आदि विद्येश्वर बना देते हैं जिनकी संख्या ७ करोड़ है।

प्रलयाकल जीव

प्रलयाकल जीवोंमेंसे जो पक्व-पाश-द्वय हैं अर्थात् जिनके दो पाश पक गए हैं, दूर हो गए हैं वे तो मुक्ति पा जाते हैं और जिनके दो पाश नहीं पके हैं वे अपक्व-पाशद्वय निरन्तर पूर्यष्टक देह धरकर अपने अपने कर्मके अनुसार पशु, पक्षी, मनुष्य आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते रहते हैं। पूर्यष्टक देहमें बत्तीस तत्त्व होते हैं— चार अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार), पञ्चभूत, पञ्चभूतात्मा, दसों इन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच विषय। इन अपक्व-पाशद्वय जीवोंमें जो अधिक पुण्यवाले होते हैं उन्हें शिवजी राजा बना देते हैं।

सकल जीव

सकल जीवोंमें जो पक्व-कलुष होते हैं वे तो मन्त्रेश्वर हो जाते हैं, जिनकी संख्या ११८ है और जो अपक्व-कलुष होते हैं वे भवकूपमें जा गिरते हैं।

सभी शैव लोग निगम अर्थात् चारों वेदोंको और आगम अर्थात् उमा, महेश्वर-संवादके रुपमें उपस्थित सब ग्रन्थोंको मानते हैं। आगमोंमें भी निम्नांकित शैवागम उन्हें विशेष मान्य हैं—

१. कामिक, २. योगज, ३. चिन्त्य, ४. करण, ५. अजित, ६. दीप्त, ७. सूक्ष्म, ८. सहस्र, ९. अंशुमत्, १०. सुप्रभेद, ११. विजय, १२. निःश्वास, १३. स्वयम्भुव, १४. अनिल, १५. वीर, १६. भैरव, १७. मुकुट, १८. विमल, १९. चन्द्रज्ञान, २०. बिम्ब, २१. प्रोदगीत, २२. ललित, २३. सिद्ध, २४. सन्तान, २५. सर्वोत्तर, २६. पारमेश्वर, २७. किरण, २८. वातुल। इनके अतिरिक्त कई सौ उपागम भी हैं जिनमें मत, कुल, शील, शिल्प, कर्म, धर्म, व्यापार और उद्योग आदि विषयोंके रहस्य बताए गए हैं।



प्रत्येक आगममें क्रिया, चर्या, योग और ज्ञान, ये चार पाद या भाग किए गए हैं। क्रियापादमें

सामान्य शैव, मिश्र शैव, शुद्ध शैव और शैव ये चार भेद बताए गए हैं और प्रत्येकका आचार भी स्पष्ट कर दिया गया है।

कापालिक या पाशुपत-जैसे अतिमार्गिक मतोंकी अपेक्षा शैव सिद्धान्त अधिक बुद्धिवादी है इसीलिये इन्हें सिद्धान्तवादी कहते हैं। इस सम्प्रदायके अनुसार उस मानवीय आत्माको पशु कहा गया है जो इन्द्रियरूपी पाशोंमें बँधा हुआ है। जब शिव या पशुपतिके मन्त्रकी निरन्तर उपासना करनेसे आत्मा इन पाशोंसे छूट जाता है तब वह मुक्त हो जाता है।

कश्मीरमें दार्शनिक दृष्टिसे तो तन्त्रपर विचार हुआ किन्तु साधना-पद्धति कोई नहीं चली।

वीरशैव (लिंगायत)

ऊपर बताया जा चुका है कि शिवजीके वे अनन्य भक्त वीर, माहेश्वर या वीरशैव (लिंगायत) कहलाते हैं जो निरन्तर शिवलिंग अपने साथ धारण किए रहते हैं। ये लोग मांस, मदिरा आदिका प्रयोग नहीं करते।

शैव-सिद्धान्त और पाशुपत-सिद्धान्त तो एक ही हैं किन्तु लकुलीश पाशुपत सिद्धान्त कुछ भिन्न है।

जो लोग वीर (शिव), नन्दी, भृङ्गी, वृषभ, और स्कन्द इन पांच गणाधीशोंके गोत्रमें अपनेको उत्पन्न मानते हैं वे वीर शैव हैं। वे लोग मानते हैं कि सारे संसारको उत्पन्न, उसका पालन और संहार करनेवाले पञ्च-ब्रह्म-स्वरूप शिव ही हैं। शिवकी पञ्चब्रह्म नामकी पाँच मूर्त्तियाँ हैं— पहली क्षेत्रज्ञ मूर्त्तिको ईशान कहते हैं जो सारी प्रकृतिके भोक्ता हैं, दूसरी मूर्त्तिको तत्पुरुष कहते हैं जो परमात्माकी गुफा है, तीसरी धर्म आदि आठ अंगोंवाली बुद्धि है जिसे अघोर कहते हैं, चौथी सारे संसारमें व्याप्त अहंकार-मूर्त्ति है जिसे वामदेव कहते हैं, पाँचवी मनस्तत्त्व-मूर्त्ति है जिसे सद्योजात कहते हैं और जो सब शरीरोंमें स्थित है। संसारमें जो पच्चीस तत्त्वों (पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार), पञ्च महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश), पंच तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), पंच ज्ञानेन्द्रिय (आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा), पंच कर्मेन्द्रिय (हाथ, पैर, मुख, गुदा, लिंग या योनि) और मनका प्रपञ्च दिखाई पड़ता है वह सब पञ्च-ब्रह्मस्वरूप शिवका ही विलास है।

इस वीरशैव या लिंगायत सम्प्रदायके आदि प्रवर्त्तक आचार्य वसव थे जिनका जीवन-चरित वसवपुराणमें विस्तारसे मिलता है। इस सम्प्रदायके सिद्धान्त शैव-सम्प्रदाय या सिद्धान्तवादी लोगोंसे अधिक मिलते-जुलते हैं। वसवपुराणसे यह भी ज्ञात होता है कि यह सम्प्रदाय प्राचीन कालके विश्वेश्वराराध्य, पंडिताराध्य और एकोराम आदि आचार्योंने चलाया था जिसे बारहवीं शताब्दीके वसवने प्रचारित और प्रसारित किया। इस सम्प्रदायके मतानुसार ब्रह्माका सत्, चित् और आनन्दमय स्वरूप ही शिवतत्त्व है जिसके दो प्रकार माने गए हैं— शिवलिंग या लिंग और अंग या मानुष आत्मा। साथ ही यह भी माना गया है कि इन दोनोंका संयोग शिवकी भक्ति करनेसे ही हो पाता है। इनके तत्त्वज्ञानके अनुसार लिंगके जो महालिंग, प्रसादलिंग, चरलिंग, शिवलिंग, गुरुलिंग और आचारलिंग आदि अनेक भेद बताए गए हैं वे सब शिवके ही अनेक रूप हैं। इसी प्रकार अंगके भी जो योगाङ्ग, भोगाङ्ग और त्यागाङ्ग नामकी तीन अवस्थाएँ बताई गई हैं वे भी शिवकी भक्तिकी ही तीन अवस्थाएँ हैं।



लिंगायतोंके आचार्य अपनेको लिंगी ब्राह्मण (पञ्चम) कहते हैं। इस सम्प्रदायवाले शिवके उपासक अपने गलेमें शिवलिंग बाँधे रहते हैं।

दक्षिण भारतमें शैव-सम्प्रदायके आदि प्रचारक तिरुनाम-सम्बद्ध थे जिनके लिखे हुए तीन सौ चौरासी पदिगम (स्तोत्र) दक्षिण भारतमें वेदोंके समान आदरणीय माने जाते हैं।

शैवाद्वैत

शैवाद्वैतवादियोंका मत है कि ब्रह्म (शिव) ही एकमात्र आराध्य (आराधना करनेके योग्य) हैं। इनकी आराधना धार्मिक आचरण करनेसे ही हो सकती है। जब मनुष्य फलकी इच्छा छोड़कर सब काम करने लगता है तब उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। पापोंका नाश हो जानेपर चित्त शुद्ध हो जाता है और तभी ज्ञान हो पाता है। कर्म और ज्ञान दोनोंके मेलसे ही मुक्ति हो पाती है। मुक्तिका अर्थ ही है शिवके समान या शिव हो जाना। यही जीवका परम पुरुषार्थ, जीवका सबसे बड़ा उद्देश्य है। यह मुक्ति तो शिवका प्रसाद है जो उनकी उपासनासे, उनकी कृपा मिलनेपर प्राप्त हो ही जाती है।

इस सिद्धान्तके अनुसार शिवको प्राप्त कर लेना या शिवत्व प्राप्त कर लेना (शिव हो जाना) ही मुक्ति है। यह शिवत्व प्राप्त होता है कर्म और उपासना (ब्रह्म-विद्या)-से। ये ब्रह्म (शिव) भी सगुण, सविशेष (विशेष शक्तिवाले), ज्ञान-स्वरूप हैं और मन ही मन आनन्द लेते रहते हैं पर जीव अनादि होते हुए भी अज्ञानकी वासनासे बँधा हुआ, परवश, चेतन, शक्ति-परिच्छिन्न, कर्त्ता और भोक्ता है। उसमें कुछ न कुछ करते रहनेकी, बनाते-बिगाड़ते रहनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। यहाँतक कि मुक्त जीवनमें भी अन्त:करण बना रहता है। पाप नष्ट हो जानेपर वह अखंड आनन्द लेने लगता है। यह सारा संसार ब्रह्म (शिव)-की परम शक्तिसे उत्पन्न हुआ है और वही शक्ति सारे संसारका प्रपंच बना खड़ी करती रहती है। ब्रह्म (शिव) ही परिणामी हैं जिनका परिणाम यह संसार है। यह ब्रह्म (शिव) पाँच कर्म करते रहते हैं—जन्म (उपजाना), स्थिति (बनाए रखना), प्रलय (सबका संहार करना), तिरोभाव (आँखोंसे ओझल करना) और अनुग्रह (कृपा करना)। तन्त्र साधकोंको कश्मीरी तन्त्र-विज्ञानका ज्ञान परमावश्यक है।

शिवलिंगकी पूजा

स्कन्दपुराणके केदारखंडके छठे अध्यायमें लोमशने लिंगकी पूजाका कारण बताते हुए कहा है कि एक बार भगवान् शंकर दारुवनमें भिक्षाके लिये घूम रहे थे। उनके अत्यन्त सुनदर नंगे रूपपर रीझकर सब मुनि-पत्नियाँ अपने अपने आश्रमसे निकल निकलकर उनके पीछे लग चलीं। इसपर मुनियोंने शिवजीको शाप दे दिया कि तुम्हारा लिंग यहीं कटकर गिर जाय। गिरते ही वह लिंग ऐसा लम्बा होकर प्रकट हो चला जिसका न आदि था न अन्त था। उसके ऊपरका सिरा जाननेके लिये ब्रह्मा ऊपर चले और नीचेका तला जाननेके लिये विष्णु नीचे चले। विष्णु तो थककर लौट आए और उन्होंने मान लिया कि मैं इसका तला नहीं खोज पा सका। पर ब्रह्माने केतकीके फूल और गायसे झूठी गवाही दिलवा दी कि मैं लिंगका मस्तक देख आया हूँ। उसी समय आकाशवाणीसे केतकीके फूलको यह शाप मिला कि महादेवपर तू नहीं चढ़ाया जा सकेगा और गायको शाप मिला कि तेरे सब अंग तो पवित्र होंगे किन्तु मुँहँ अशुद्ध होगा। साथ ही ब्रह्मको भी शाप मिला कि तुम्हारी कहीं



पूजा नहीं हुआ करेगी। इस शापके कारण ब्रह्माने जब उस लिंगकी शरणमें जाकर शिवकी बहुत स्तुति की तब कहीं शिवजीने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि विष्णुसे प्रार्थना करो। विष्णुसे प्रार्थना करनेपर फिर आकाशवाणी हुई कि भगवान् विष्णु पिंडी बनें और लिंगको धारण करें। जब विष्णुने पिंडी बनकर लिंगको धारण कर लिया तब वीरभद्रने ब्रह्मा आदिके साथ शिवलिंगकी पूजा की। यही सबसे पहली लिंग-पूजा थी।





२२



षट्चक्र



तन्त्रोक्त साधनाङ्गभूत निगूढ मानस क्रियाके लिये दैहिक छह पद्म कल्पित किए गए हैं। तान्त्रिक साधकोंने षट्चक्रभेदतत्त्व अच्छी प्रकार जानकर देहके सूक्ष्म तत्त्व नाडी-ज्ञानके सम्बन्धमें यथेष्ट उत्कर्ष लाभ किया था। श्रीमत्पूर्णानन्द-प्रणीत षट्चक्रनिरूपण नामक ग्रन्थ पढ़नेसे उसका आभास मिल जाता है। षट्चक्रनिरूपण ग्रन्थमें तान्त्रिक योगियोंके शरीरविचयशास्त्रकी सूक्ष्म ज्ञानवाहिनी नाडिकाओंके क्रियातत्त्वके सम्बन्धमें अति सूक्ष्म आलोचना देखी जाती है। वर्त्तमान शरीर शास्त्रमें षट्चक्रके सूक्ष्म तत्त्वका विवरण न रहनेपर भी हम इन सब नाडीय विज्ञानके षट्चक्रकी सूक्ष्म-भित्ति योगविद्याके प्रखर आलोकसे अति स्पष्ट रूपमें देख पाते हैं। केवल नाडी-प्रणाली ही षट्चक्रका आलोच्य विषय नहीं है, मस्तिष्क पदार्थमें भी परम तत्त्व-प्रबोधक ज्ञान निरूपित हुआ है। इन सब विषयोंका समावेश होनेके कारण ही षट्चक्रमें लिखी हुई शक्तियोंकी अच्छी प्रकार आलोचना होना उचित है। यहाँपर पहले षट्चक्रका कुछ स्थूल आभास दिया जाता है।

मेरुदण्डके मध्य तीन नाडियाँ हैं इडा, सुषुम्ना और पिङ्गला; बाँई ओर इडा, दाहिनी ओर पिङ्गला और दोनोंके बीचमें सुषुम्नाका अवस्थान है।

षट्चक्रग्रन्थकारका कहना है कि मेरुदण्डके बहिर्भागमें वाम तथा दक्षिण ओर इडा तथा पिङ्गला नामकी दो नाडियाँ तथा मध्य स्थलमें सुषुम्ना नामकी नाडी विद्यमान है। यह नाडी चन्द्रसूर्याग्निरूपा है तथा उसने मस्तककी ओर अग्रसर होकर खिले हुये धतूरे-पुष्पका आकार धारण किया है। इस सुषुम्ना नाडीमें एक और नाडी है। उसका नाम वज्रनाडी है। वज्रनाडी मेढ्रदेशसे उत्पन्न होकर मस्तकमें फैल गई है। वज्रनाडी ज्वलत्-प्रभामयी है। मेरुदण्ड ही जीवसृष्टिका प्रधान आधार है। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान पढ़नेसे जाना जाता है कि मेरुदण्ड ही पहले पहल बनता है। फलतः मेरुदण्ड ही जैवशक्ति है। यह सबसे पहले अभिव्यक्त होकर दैहिक क्रियाका संचार करता है। ये सब नाडियाँ पृष्ठवंश या मेरुदण्डसे उत्पन्न होती हैं। ये अत्यन्त समुज्ज्वल और पद्मतन्तुकी भाँति सूक्ष्म हैं। (शिवसंहिता)

पाश्चात्य शरीर-वियय ग्रन्थमें भी यह तत्त्व देखनेको मिलता है।

षट्चक्रके साथ सुषुम्ना नाडीका ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी सुषुम्ना नाडीमें षट्चक्रका अवस्थान है। सुषुम्ना नाडीमें जो सात पद्म दिखलाए गए हैं उनमेंसे छह पद्म षट्चक्र कहलाते हैं। सप्त पद्मके नाम ये हैं- १. मूलाधार २. स्वाधिष्ठान ३. मणिपूर ४. अनाहत ५. विशुद्ध ६. आज्ञा और ७. सहस्रार।

पहले साधारण भावमें इन सब पद्मोंका परिचय दिया जाता है। आधार-पद्म पायु-देशके कुछ ऊपर सुषुम्ना नाडीमें संलग्न है। उसके चार दल हैं, उन चार दलोंमें वं शं षं सं ये चार वर्ण हैं। इस पद्मके मध्य धारचक्र नामक एक चतुष्कोण चक्र है। उसके आठों ओर आठ शूल हैं। मध्यस्थलमें पृथ्वीबीज लं तथा कर्णिकामें त्रिकोण यन्त्र चिह्नित है। इस पद्मके मध्य लिङ्गरूपी महादेव वास करते हैं तथा उसके अमृत निर्गमन स्थानसे मुँहँ सटाकर सर्परूपा कुण्डलिनी शक्ति रहती है। स्वाधिष्ठान पद्म लिङ्गमूलमें रहता है। उसके छह दल हैं। उन छह दलोंमें बं भं मं यं रं लं ये छह वर्ण हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें गोलाकृति वरुण मण्डल और उस मण्डलके बीचमें अर्द्धचन्द्र है; उसमें वं वर्ण अंकित है। उस पद्ममें वारुणी शक्ति रहती है। मणिपूर पद्म नाभिमूलमें अधिष्ठित है। उसके दस दल हैं। उन दस दलोंमें डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ये दस वर्ण लिखे हैं। उस पद्मके मध्य स्थलमें त्रिकोण अग्निमण्डल है। उस त्रिकोणके तीन पार्श्वमें स्वस्तिक आकारके तीन भूपुर और मध्य स्थलमें



रं वर्ण चिह्नित है। इस पद्मके मध्य लाकिनी शक्ति रहती है। अनाहत नामक पद्म हृदयमें अवस्थित है। उनके बारह दल हैं। उन बारह दलोंमें कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं ये बारह वर्ण अंकित हैं। उस पद्ममें छह कोणवाला वायुमण्डल तथा उसके मध्य षं बीज विद्यमान है। उस पद्ममें शिव और काकिनी शक्ति वास करती है। विशुद्ध नामक पद्म कण्ठ देशमें अवस्थित है। उसके सोलह दल हैं। उन सोलह दलोंमें अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं तथा एं ऐं ओं औं अं अः ये सोलह वर्ण लिखे हैं। उस पद्मके मध्यस्थलमें गोलाकार चन्द्रमण्डल तथा उसके भीतर गोलाकृति नभोमण्डल और हं बीज वर्त्तमान हैं। उस पद्ममें शाकिनी शक्ति वास करती हैं। भ्रूके मध्य आज्ञा नामक द्विदल पद्म है। उसके दो दलोंमें हं क्षं ये दो वर्ण हैं। उसके मध्य त्रिकोणाकृति शक्ति और उस शक्तिके मध्य शिव अवस्थित हैं। इस पद्ममें हाकिनी शक्ति रहती हैं। इसके कुछ ऊपर प्रणवाकृति परमात्मा हैं। उसके ऊपरी भागमें चन्द्रबिन्दु, उसके ऊपर शंखिनी नाडी और सबके ऊपर सहस्रदल पद्म हैं। उसके पचास दलोंमें आकारादि खकार पर्यन्त सबिन्दु पचास वर्ण हैं। इस पद्मके मध्य गोलाकृति चन्द्रमण्डल, उसके मध्य त्रिकोणयन्त्र तथा सबके मध्य शिवस्थानमें परम शिव वास करते हैं।

तान्त्रिक साधनाके बहुत पहले उपनिषदादिमें भी नाडी-तत्त्वकी आलोचना मिलती है। छान्दोग्य-उपनिषद्में, यहाँतक कि वेदसंहितामें भी नाडीका परिचय मिलता है।

धर्मसाधनाके साथ देहतत्त्वका जैसा सम्बन्ध अभिव्यक्त हुआ है, वैसा दूसरे किसी भी शास्त्रमें नहीं देखा जाता। सुषुम्नाके किस चक्रका कैसा कार्य है, उसके अन्तर्गत किस नाडीकी कैसी आध्यात्मिक क्रिया है, उसकी यथेष्ट आलोचना शिवसंहिता और षट्चक्र-निरूपणमें देखी जाती है। फलतः शिवसंहिता और षट्चक्रनिरूपण अध्यात्म-आधिभौतिक विज्ञानके विषय हैं। इन सब ग्रंथोंमें नाडी-विज्ञानके सम्बन्धमें अति सूक्ष्म तत्त्व निरूपित हुआ है। यहाँपर इस सम्बन्धमें और भी दो-एक विवरण दिए जाते हैं।

सुषुम्ना नाडीके मध्य वज्र नामकी एक नाडी है। षट्चक्र ग्रन्थका तृतीय श्लोक पढ़नेसे जाना जाता है कि वज्रनाडीके मध्य चित्रिणी नामकी एक और नाडी है। यह नाडी मकड़ीके जालेके तन्तुकी भाँति महीन है। यह चर्मचक्षुकी अगोचर है; किन्तु योगियोंकी योगगम्या और प्रणवविलसिता है। योग-द्वारा जबतक चित्त विशुद्ध नहीं होता, तबतक यह नाडी किसीको भी दिखाई नहीं पड़ती। अणुवीक्षणकी सहायतासे भी इस नाडीको नहीं देख सकते। इस चित्रिणीमें एक और नाडी है जिसका नाम ब्रह्मनाडी है। यह नाडी गुह्यस्थ मूलाधार पद्ममें स्थित शिवलिंगके मुखगह्वरसे निकलकर शीर्षस्थ सहस्रदलाधिष्ठित आदिदेव परमात्माको स्पर्श किए हुए है। साधक लोग जीवात्माको इस नाडीके बीचसे परिचालित करके परमात्मामें भेजते हैं।

ब्रह्मनाडी विद्युन्मालाविलासिनी और अति सूक्ष्म है। यह नाडी शुद्ध ज्ञानको उद्बोधन करती है, सभी प्रकारके सुखकी उत्सस्वरूपा है। इसके मुख-भागमें ही ब्रह्मद्वार है।

पाश्चात्य चिकित्साविज्ञान पढ़नेसे ज्ञात होता है कि ज्ञानक्रिया और गतिक्रिया स्नायु नामक नाडी विशेषका ही कार्य है। ज्ञानक्रिया और गतिक्रियाके कारण पृथक् पृथक् सूक्ष्म स्नायु द्वारा सारी देह ढकी हुई है। किन्तु पाश्चात्य विज्ञानसे जिन सब स्नायुओंका पता चला है वे सब स्नायु केवल स्थूल ज्ञानके वाहक मात्र हैं। षट्चक्र और शिवसंहिता आदि तान्त्रिक ग्रन्थोंमें स्थूलज्ञानवाहिनी नाडियोंका विशेष उल्लेख नहीं है। जिन सब सूक्ष्मसे सूक्ष्म नाडियोंकी सहायतासे तत्त्वज्ञानकी स्फूर्त्ति होती है,



ब्रह्मतत्त्व उपलब्ध होता है, उन नाडियोंकी आलोचना इन सब ग्रन्थोंमें की गई है। स्नायु-ताडित् शक्तिका जो विलासस्थल है, उसका पाश्चात्य विज्ञानमें स्पष्ट उल्लेख है।

षट्चक्रकारने भी 'तडिन्माला विलासा' नामसे इन सब नाडियोंका वर्णन किया है। बहुत समय पहले तान्त्रिक योगियोंने इन सब सूक्ष्मतत्त्वोंका सिद्धान्त संस्थापन किया था, यह कम गौरवकी बात नहीं है। आधुनिक पंडित अनेक यन्त्रोंकी सहायतासे भी वैसे सूक्ष्मतत्त्वपर पहुँच न सके हैं। किन्तु भारतीय योगियोंने केवल योग-विद्याबलसे वे सब सूक्ष्मतत्त्व ज्ञात कर लिए थे।

षट्चक्रकारने सूक्ष्म जैव पदार्थमें कई स्थानोंपर तड़ित्-कार्य देखा है-

1. वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिका मध्यसंस्थं।
कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।।

कन्दर्पो नाम वायुर्विलसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्।
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशम्।।

2. शङ्खावर्त्तनिभा नवीनचपलामाला विलासास्पदा।
सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत् सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः।।

इससे जाना जाता है कि ये सब तडिन्मालाविलासा नाडियाँ जीवकी जीवनी शक्तिकी जड़ हैं। कन्दर्प-वायुका स्थान मूलाधार है। यह कन्दर्प-वायु ही प्राणवायु है। उद्धृत छह श्लोकोंमें हम कुलकुण्डलिनी शक्तिका विवरण देखते हैं। उसके पश्चात्के श्लोकमें कुल कुण्डलिनीका और भी सविशेष परिचय है-

कूजन्ती कुलकुण्डलीव मधुरं मत्तालिमालास्फुटं।
वाचः कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदादिभेदक्रमैः।।

श्वासोच्छ्वासविवर्त्तनेन जगतां जीवो यथा धार्यते।
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावली।।

यह कुलकुण्डलिनी भी नवीन चपलमालाकी भाँति विराजित है। यह भुजंगवत् सार्द्धत्रयवेष्टनसे परिवेष्टित है तथा मूलाधारके कमलमें अवस्थित है। ये ही श्वासोच्छ्वासके गमनागमन-द्वारा जीवकुलके प्राणकी रक्षा करते हैं।

इस कुलकुण्डलिनीमें महाप्रभा महादेवी विलास करती हैं। वे चपलमालाकी भाँति समुज्ज्वल हैं।

इस षट्चक्रमें चतुर्बाहुधारी श्रीनारायणदेव ध्येय रूपमें दिखाई देते हैं।

श्रीमन्नारायणदेव स्वाधिष्ठान पद्मपर विराजित हैं। इसी प्रकार षट्चक्रमें शक्तिशिवादि देवताओंका अधिष्ठान वर्णित है। किस चक्रमें किस देवताका ध्यान करनेसे कैसा फल मिलता है, उसकी भी व्याख्या फलश्रुति ग्रन्थमें लिखी है। सहस्रदल पद्ममें एक शून्य स्थान प्रकल्पित हुआ है। उस स्थानका विशेष विवरण और उस स्थानमें चित्र निवेशकी फलश्रुति भी लिखी है। उस स्थानको शैव लोग शिवस्थान, वैष्णव लोग विष्णुस्थान, कोई हरिहरपद, शाक्तलोग शक्तिस्थान और ऋषि लोग प्रकृति-पुरुषका निर्मल स्थान मानते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें अमाकला, चन्द्रकला, निर्वाणकला आदि विराजमान हैं।



षट्चक्रभेदकी प्रणली इस प्रकार है-साधक यमनियम आदिका भली प्रकार विशुद्ध ज्ञानलाभ करनेके उपरान्त गुरुसे षट्चक्रभेदका विषयक्रम जान लें। वे हुंकार-बीजसे तेज और वायुके आक्रमण-द्वारा सन्तप्ता कुलकुण्डलिनीको मूलाधार पद्म-स्थित स्वयम्भूलिंगपथसे सहस्रदल कमलमें लाकर भावना करें। बिना गुरूपदेशके इस प्रकारकी साधना या इन सब विषयोंका ज्ञानलाभ होना असम्भव है। फलत: षट्चक्र मोक्षलाभका एक प्रकारका अध्यात्म-आधिभौतिक साधनविशेष है। इसके पश्चात् यह देहतत्त्व वाउल, सहजिया, किशोरी-भजन आदि सम्प्रदायोंमें भी घुस गया है।





: सप्तदशी यंत्र :

१	२	३	४	५	६	७	८	२६५	२६७	२६८	२६९	२७०	२७१	२७२	२७४	२७३
९	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	२३६	२३८	२३९	२४०	२४१	२४२	२४४	२४३	२८१
११	४०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	२११	२१३	२१४	२१५	२१६	२१८	२१७	२५०	२७९
१२	४२	६७	८५	८६	८७	८८	८९	१९०	१९२	१९३	१९४	१९६	१९५	२२३	२४८	२७८
१३	४३	६९	९०	१०५	१०६	१०७	१०८	१७३	१७५	१७६	१७८	१७७	२००	२२१	२४७	२७७
१४	४४	७०	९२	१०९	१२१	१२२	१२३	१६०	१६२	१६४	१६३	१८१	१९८	२२०	२४६	२७६
१५	४५	७१	९३	१११	१२४	१३३	१३४	१५१	१५२	१५५	१६६	१७९	१९७	२१९	२४५	२७५
२५८	२३०	२०६	१८६	१७०	१५८	१५०	१४४	१४३	१४८	१४०	१३२	१२०	१०४	८४	६०	३२
२५९	२३१	२०७	१८७	१७१	१५९	१५३	१४९	१४५	१४१	१३७	१३१	११९	१०३	८३	५९	३१
२६०	२३२	२०८	१८८	१७२	१७१	१५४	१४२	१४७	१४६	१३६	१२९	११८	१०२	८२	५८	३०
२६१	२३३	२०९	१७९	१७४	१६५	१३५	१५६	१३९	१३८	१५७	१२५	११६	१०१	८१	५७	२९
२६२	२३४	२१०	१९१	१८०	१२७	१६८	१६७	१३०	१२८	१२६	१६९	११०	९९	८०	५६	२८
२६३	२३५	२१२	२९९	११३	१८४	१८३	१८२	११७	११५	११४	११२	१८५	९१	७८	५५	२७
२६४	२३७	२२२	९५	२०४	२०३	२०२	२०१	१००	९८	९७	९६	९४	२०५	६८	५३	२६
२६६	२४९	७३	२२८	२२७	२२६	२२५	२२४	७९	७७	७६	७५	७४	७२	२२९	४१	२४
२८०	४७	२५६	२५५	२५४	२५३	२५२	२५१	५४	५२	५१	५०	४९	४८	४६	२५७	१०
१७	२८८	२८७	२८६	२८५	२८४	२८३	२८२	२५	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१६	२८९

२३



कुण्डलिनी–योग या तान्त्रिक योग



कुण्डलिनी जगाकर छहों चक्रोंमेंको कुण्डलिनीको ले जाते हुए सहस्रारचक्रमें महायोगीके शिवके साथ एकात्म स्थापित करने अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार करनेकी क्रियाको तान्त्रिक-योग कहते हैं। अष्टांग योगकी अपेक्षा यह योग श्रेष्ठतर तथा उच्चतर है क्योंकि अष्टांग योगके ध्यानकी अवस्थामें जो आनन्द प्राप्त होता है वह संसारसे पूर्णत: विरक्त होने और मनको केन्द्रित करनेपर ही प्राप्त होता है जिससे मानसिक वृत्तियाँ शून्य हो जाती हैं और शुद्ध चेतना, मनकी सीमाओं तथा मनके प्रभावसे पूर्णत: निर्बाध रहती है। चेतनाके अनावरणकी यह सीमा, साधककी ज्ञानशक्तिपर और संसारसे उसकी विरक्तिपर अवलम्बित होती है किन्तु सर्वशक्तियोंसे सम्पन्न कुण्डलिनी स्वयं ज्ञानशक्ति है, इसलिये योगीके द्वारा जगा लेनेपर वह उसके लिये पूर्ण ज्ञानकी ज्योति प्रकट कर देतीं है। दूसरी बात यह है कि अष्टांग योग तथा ध्यान-योगकी समाधिकी अवस्थामें प्राप्त होने-वाले आनन्द और सिद्धिके साथ न तो कुण्डलिनी ही जागती है और न कुण्डलिनीके साथ इसका योग ही होता है। इसके अतिरिक्त कुण्डलिनी योगमें केवल ध्यानके द्वारा समाधि नहीं लगती वरन् उस केन्द्रित शक्तिके द्वारा लगती है जिसके साथ शरीर और मन दोनोंकी शक्तियाँ समन्वित होती हैं। इस दृष्टिसे परमात्मा या ब्रह्म या शिवके साथ जीवकी जो एकात्मता होती है वह मानसिक प्रक्रियासे प्राप्त होनेवाले आनन्दकी अपेक्षा अधिक पूर्ण होती है। यद्यपि दोनों ही परिस्थितियोंमें शारीरिक चेतना समाप्त हुई रहती है तथापि कुण्डलिनी-योगमें केवल मन ही नहीं वरन् अपनी केन्द्रित शक्तिसे समन्वित शरीर और मन दोनों ही शिवसे जुड़ जाते हैं। इस योगसे जो मुक्तिमय आनन्द प्राप्त होता है वह ध्यान-योगीको नहीं प्राप्त होता। इन सब दृष्टियोंसे कुण्डलिनीका स्वरूप, उसके द्वारा षट्चक्र-भेदन, छहों चक्रोंका रूप, उन चक्रोंपर कुण्डलिनीके पहुँचनेकी अवस्थामें प्राप्त होनेवाले आनन्द और लाभ, सबका परिचय प्राप्त कर लेना नितान्त आवश्यक है।

कुण्डलिनीका स्थान

मेरुदण्डके नीचे बाहरकी ओर बाँएँ चन्द्रमा और दाँएँ मिहिर (सूर्य) नामकी दो शिराएँ विद्यमान हैं जिनके बीच तीन (सत्त्व, रज, तम) गुणोंसे युक्त सुषुम्ना नाडी है जो चन्द्र, सूर्य और अग्नि-स्वरूपा है। वह नाडी खिले धतूरेके फूलकी मालाके समान काण्ड (मूल)-के बीचसे सिरतक फैली हुई है जिसके भीतर वज्रा नामकी अत्यन्त प्रकाशमयी नाडी मेढ्र (लिंग)-से सिरतक व्याप्त है।

उसके भीतर चित्रिणी विद्यमान है जो प्रणवकी ज्योति ज्योतिष्मती है और जिसका अनुभव योगी लोग योग-साधनासे ही प्राप्त कर पा सकते हैं। यह चित्रिणी मकड़ीके जालेके तारसे भी अधिक सूक्ष्म है। यह शुद्ध ज्ञान-स्वरूपा शक्ति मेरुदण्डके भीतर स्थित कमलोंको (चक्रोंको) बाँधे हुए है। उसमें गुँथे हुए इन कमलोंके कारण ही यह चित्रिणी बहुत सुन्दर लगती है। इसके भीतर ब्रह्म नाडी है जो हर (शिव) या स्वयंभूके मुखके अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रसे लेकर आदि देवतक व्याप्त है।

यह बिजलीकी शृंखलाके समान सुन्दर और कमलकी नालके तन्तुके समान सूक्ष्म चित्रिणी ही योगियोंके मस्तिष्कमें भासित होती है। यह अत्यन्त सूक्ष्म, शुद्ध ज्ञान जगानेवाली, सम्पूर्ण आनन्दकी मूर्त्ति और शुद्ध चेतनात्मिका प्रकृतिवाली है। इसके मुखमें जो ब्रह्मद्वार चमकता है वह उस स्थानका प्रवेश-द्वार है जहाँ अमृत छिड़का हुआ है और जो सुषुम्नाका मुख या ग्रन्थि-स्थान कहलाता है अर्थात् यह ब्रह्मद्वार ही सुषुम्ना और काण्डका (गोलेका) सन्धि-स्थल कहलाता है।



मूलाधार चक्र

गुदासे ऊपर और जननेन्द्रियसे नीचे सुषुम्नाके मुखपर आधार या मूलाधार कमल है। इस कमलपर अत्यन्त गहरे लाल रंगकी चार पंखड़ियाँ हैं और इस कमलका मुख औंधा (नीचेकी ओर) है। इसकी पंखड़ियोंपर व श ष स चार अक्षर चमकदार सुनहरे रंगमें भासमान होते हैं।

इस कमलमें पृथ्वीका चौकोर चक्र है जिसकी आठों ओर आठ चमकदार शूल (अष्ट शूल) हैं। इस पीले रंगके, बिजलीके समान सुन्दर और चमकदार चौकोर चक्रके भीतर धराका बीज (इन्द्र) स्थित है।

चार भुजाओंसे समलंकृत और गजराजपर चढ़े हुए उन (इन्द्र)-की गोदीमें बिन्दु या लंब अर्थात् बालक ब्रह्मा विराजमान हैं जो ऊपर चढ़े हुए सूर्यके समान प्रकाशमान हैं, जिनके चार प्रकाशमान हाथ हैं और कमलके समान चार मुख हैं। इस आधार पद्ममें सुन्दर चमकते हुए चार हाथोंवाली और अत्यन्त चमकदार लाल लाल आँखोंवाली देवी डाकिनी विराजमान हैं जो एक साथ उदय होनेवाले अनेक सूर्योंके प्रकाशके समान चमचमाती हैं। यही नित्य शुद्ध ज्ञानको प्रकट करनेवाली शक्ति हैं अर्थात् नित्य शुद्ध ज्ञान यही प्रदान करती हैं।

वज्रा नाडीके मुखपर आधार-कमलके बीज-कोशमें त्रैपुर नामका एक बिजलीके समान सुन्दर, चमकदार, कोमल, तिकोना, कामरूप निरन्तर चमकता रहता है जहाँपर सर्वदा और सर्वत्र कन्दर्प नामक वायु विराजमान रहता है जो बन्धुजीव (दुपहरिया)-के फूलसे भी अधिक गहरे लाल रंगका होता है। वह वायु सब प्राणियोंका स्वामी तथा एक करोड़ सूर्योंके समान चमकता है। उस त्रिकोणके भीतर पिघले हुए स्वर्णके समान सुन्दर और सिर नीचे किया हुआ स्वयंभू लिंग विद्यमान है जो केवल ज्ञान ओर ध्यानके द्वारा ही प्रकट होता है। उसका आकार और रंग पत्तेकी नई कोंपलके समान लाल होता है और जैसे बिजली और पूर्ण चन्द्रमाकी ठंढी किरणें सबको अपनी ओर आकृष्ट करती हैं वैसे ही उसका सौन्दर्य भी योगीको आकृष्ट करता है। काशीमें आनन्दपूर्वक निवास करनेवाले देव शिव ही यहाँ आवर्त्त (भँवर)-के रूपमें विराजमान रहते हैं। इसके ऊपर कमलनालके तन्तुके समान सूक्ष्म चमचमाती हुई कुंडलिनी सोई पड़ी रहती है जो संसारको भ्रममें डाले रखती और बड़ी कोमलताके साथ अपने मुखसे ब्रह्मद्वारका मुख बन्द किए रखती है। चमकदार सर्पिणीके समान यह कुंडलिनी शंखके आवर्त्तोंके समान शिवके चारों ओर साढ़े तीन फेरे डालकर लिपटी रहती है जिसकी चमक अत्यन्त तीव्र कौंधनेवाली बिजलीके समान चमकीली है। प्रेममत्त मधुमक्खियोंके समूहकी गूँजके समान इसकी बड़ी मधुर अस्पष्ट गूँज होती है। वह संस्कृत, प्राकृत तथा अन्य भाषाओंमें क्रम या अक्रमसे मधुर कविता और छन्द तथा गद्य और पद्यकी रचनाएँ करती हैं। यही वह शक्ति है जो प्रश्वास और नि:श्वासके द्वारा प्राणियोंको जिलाए रखती है और अत्यन्त तीव्र प्रकाशोंकी शृंखलाके समान मूल पद्मके कोटरमें चमकती रहती है।

इस स्वयंभू लिंगमें परा अर्थात् परमेश्वरी शासन करती है जो शाश्वत ज्ञान जगानेवाली है। वह ही ऐसी सर्वशक्तिशालिनी कला है जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कौशलके साथ सृष्टि करती है और जो सूक्ष्मतमसे भी सूक्ष्मतर है। वह शाश्वत आनन्द या परमानन्दसे प्रवाहित होनेवाली अमृतकी उस अनवरत धाराको ग्रहण करती चलती है जिसके प्रकाशसे यह सारा विश्व और सारा ब्रह्माण्ड भासमान है।



मूल चक्रमें प्रकाशित होनेवाली एक करोड़ सूर्योंके प्रकाशसे युक्त उस कुण्डलिनीपर ध्यान जमानेसे मनुष्य वाणीका स्वामी, मनुष्योंपर शासन करनेवाला राजा और सब प्रकारकी विद्याओंमें पारंगत हो जाता है। वह सब रोगोंसे मुक्त हो जाता है और उसका अन्तरात्मा अत्यन्त आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है। अपने गम्भीर और संगीतमय शब्दोंसे मन शुद्ध हो जानेके कारण वह सब देवताओंमें श्रेष्ठ देवताओंकी सेवा करता है।

इस प्रकार मूलाधार पद्ममें चार लाल पंखड़ियाँ होती हैं जिनपर सुनहरे रंगमें व, श, ष, स अक्षर अंकित होते हैं। नीचे गोलकमें चौकोर धरा-मण्डल है जिसके चारों ओर आठ शूल और नीचेके भागमें धरा-बीज (लं) है, जिसके चार हाथ हैं, जो हाथीपर सवार है, जिसका रंग पीला और जिसके हाथोंमें वज्र है। धरा-बीजके बिन्दुके भीतर लाल रंगके चार मुख और चार हाथवाले ब्रह्मा हैं जिनमें वे दण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्षकी माला और अभय मुद्रा धारण किए हुए हैं। नीचेके गोलकमें लाल कमल है जिसपर अपने चार हाथोंमें शूल, खट्वाङ्ग, खड्ग और चषक लिए हुए लाल वर्णवाली चक्राधिष्ठात्री शक्ति डाकिनी विराजमान है। इसी गोलकमें विद्युत्के समान त्रिकोण है जिसके भीतर लाल रंगका काम-वायु और काम-बीज (क्लीं) हैं। इसके ऊपर श्याम वर्णका स्वयंभू लिंग है जिसके ऊपर और चारों ओर साढ़े तीन फेर देकर कुण्डलिनी लिपटी हुई है। इसी लिंगके ऊपर चित्कला विराजमान है।

स्वाधिष्ठान चक्र

जननेन्द्रियके मूलमें सुन्दर सिन्दूरी रंगका दूसरा कमल सुषुम्ना नाडीमें अवस्थित है जिसकी छह पंखड़ियोंपर ब से पुरन्दर (ल)-तक (ब भ म य र ल) छह अक्षर हैं जिनमेंसे ल के ऊपर चमकती हुई बिजलीके रंगकी बिन्दी या अनुस्वार लगा हुआ है। यह स्वाधिष्ठान चक्र है।

उसके भीतर अर्धचन्द्राकार वरुण देवताका श्वेत चमकदार जलक्षेत्र है जिसमें शरत्के चन्द्रमाके समान निष्कलंक और श्वेत बीज (वं) मकरपर वरुण विराजमान हैं।

उसके भीतर अत्यन्त मनोहर नवयौवन-सम्पन्न चमकदार नीले रंगके कारण सुन्दर दिखाई देनेवाले, पीताम्बरधारी, चार हाथोंवाले तथा श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि धारण करनेवाले हरि (विष्णु) विद्यमान हैं।

यहींपर नीले कमलके समान रंगवाली शाकिनी सदा निवास करती है। अपने उठाए हुए हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेसे उसके शरीरकी शोभा बढ़ गई है। वह दिव्य वस्त्रों और आभरणोंसे सुसज्जित है और अमृत पीनेसे सदा मतवाली हुई रहती है।

इस स्वाधिष्ठान नामक निष्कलंक पद्मका जो ध्यान करता है वह मनुष्य काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओंसे रहित हो जाता है और योगिराज होकर अज्ञानके घनांधकारको सूर्यके समान दूर करके ज्ञानका प्रकाश करता है। उसके संयत प्रवचनमें गद्य और पद्यके रूपमें अमृतमय शब्दोंका कोश प्रवाहित होता रहता है।



इस प्रकार सिन्दूरी रंगके स्वाधिष्ठान चक्रमें छह पंखड़ियाँ होती हैं, जिनपर ब, भ, म, य, र और ल अक्षर बिजलीके रंगवाले अनुस्वार या बिन्दु-सहित विद्यमान होते हैं। इस कमलके कोषमें अष्टदल कमलके रूपवाला जल-क्षेत्र है, जिसके बीच एक अर्धचन्द्र है। इस श्वेत रंगके प्रदेशमें वरुण-बीज

(व) अपने हाथमें पाश लिए हुए मकरपर बैठा हुआ है। बिन्दुके छिद्रमें गरुडपर विष्णु विराजमान हैं जिनके चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं। वे शरीरपर पीताम्बर, गलेमें वनमाला, छातीपर श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि धारण किए हुए हैं और देखनेमें पूर्ण युवा हैं। गोलकके भीतरके लाल कमलपर श्याम वर्णवाली शक्ति डाकिनी विराजमान है जिसके चारों हाथोंमें शूल, अब्ज (कमल), डमरू, टंक (फरसा) है। इसके तीन आँखें और बाहरको निकले हुए भयंकर दाँत हैं। वह देखनेमें बड़ी भयावनी है। उसे शुक्लान्न (सफेद अन्न) बहुत प्रिय है और उसके नयनोंसे रक्तकी धारा बहती रहती है।

मणिपूर चक्र

नाभिके मूलमें और स्वाधिष्ठान चक्रके ऊपर जल भरे हुए बादलोंके समान अत्यन्त प्रकाशमान रंगका १० पंखड़ियोंवाला मणिपूर चक्र है, जिसके भीतर नीले कमलके रंगवाले ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ अक्षर नाद और बिन्दुयुक्त अंकित हैं। इस उगते हुए सूर्यके समान प्रकाशमान त्रिकोणवाले अग्नि-क्षेत्रके बाहरकी ओर तीन स्वस्तिक चिह्न हैं और भीतर अग्निका बीज मन्त्र (रं) अंकित है।

इस अग्निका ध्यान इस प्रकार करना चाहिए मानो वह चतुर्भुजी अग्नि मेढ़े पर बैठी हुई है, उदीयमान सूर्यके समान प्रकाशमान है और उसकी गोदीमें सदा शुद्ध सिन्दूरी रंगवाले वे रुद्र निवास कर रहे हैं जो भस्म लपेटे रहनेके कारण श्वेत रंगके पुराण पुरुष और त्रिनेत्र हैं तथा जिनके हाथ वरद और अभय मुद्रामें अवस्थित हैं। वे सृष्टिके संहारक हैं।

यहींपर सबका कल्याण करनेवाली चतुर्भुजी, ज्योतिर्मयी, श्यामवर्णा, पीताम्बरधारिणी, भूषणभूषिता और अमृत पीनेसे मत्तचित्ता लाकिनी विराजमान हैं। इस नाभि-कमलमें ध्यान जमानेसे साधकको सृष्टिका संहार और उत्पत्ति करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है और उसके मुख-कमलमें सम्पूर्ण ज्ञानविधिसे युक्त वाणी सदा निवास करने लगती है। यह कमल इसलिये मणिपूर कहलाता है क्योंकि यह मणिके समान चमचमाता रहता है।

इस दस पंखड़ियोंवाले और वर्षाके बादलोंकेसे रंगवाले नाभि-कमलकी प्रत्येक पंखड़ीपर ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ अक्षर चमकीले नीले रंगमें अंकित हैं और इन सबपर बिन्दु लगा हुआ है। इस पद्मके भीतर अग्निका लाल त्रिकोण क्षेत्र है जिसके बाहर तीन दिशाओंमें तीन स्वस्तिक चिह्न हैं और त्रिकोणके भीतर अग्निका बीज मंत्र (रं) लाल रंगमें लिखा हुआ है जो चतुर्भुजी मूर्त्तिमें मेढेपर चढ़ा हुआ, हाथमें वज्र और शक्ति लिए हुए वरद और अभय मुद्रा प्रदर्शित करता है। वह्नि बीजके भीतर लालरंग वाले वृषभपर आरूढ रुद्र विराजमान हैं जो अपने शरीरपर भस्म लपेटे रहनेके कारण श्वेत प्रतीत हो रहे हैं और जो पुराण पुरुष हैं। उसके मध्य भागमें लाल कमलपर नीले रंगकी तीन मुखवाली और प्रत्येक मुखपर तीन तीन आँखोंवाली चतुर्भुजी शक्ति लाकिनी अपने हाथोंमें वज्र और शक्ति लिए हुए अभय और वरद मुद्रा प्रदर्शित कर रही है। इस शक्तिके तीन दाँत आगेको निकले हुए हैं। इसे मांस और रक्त मिली हुई पकी हुई दाल और चावल खाना प्रिय है।



अनाहत चक्र

इस मणिपूर चक्रके ऊपर बन्धूक (गुलदुपहरिया)-के फूलकेसे चटक लाल रंगवाला सुन्दर

कमल हृदयमें विराजमान है जिसके भीतर क से ठ (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ)-तक सिन्दूरी रंगके अक्षर अंकित हैं। यह अनाहत चक्र कल्पवृक्षके समान है जो साधकको उसकी इच्छासे अधिक सिद्धियाँ प्रदान कर देता है। यहाँपर धुँएँकेसे रंगवाला सुन्दर षट्कोणका वायु-क्षेत्र विराजमांन है। इसके भीतर अत्यन्त मधुर और श्रेष्ठतर कमल-बीज (यं)-का ध्यान करना चाहिए जो धूम-समूहके समान धूमरा, चार भुजाओंवाला कृष्ण हरिणपर बैठा हुआ है। इसके भीतर बैठे हुए निष्कलंक सूर्यके समान ज्योतिष्मान्, दयानिधानपर भी ध्यान जमाना चाहिए जो अपने हाथोंसे तीनों लोकोंको अभय और वरद मुद्रा प्रदर्शित कर रहे हैं।

यहींपर नव विद्युत्के समान पीले रंगकी आह्लादमयी और कल्याणमयी काकिनी निवास करती है जिसके तीन आँखें हैं और जो सबका कल्याण करती है। वह सब प्रकारके आभरण पहने हुए है और अपने चार हाथोंमेंसे दोमें तो पाश और खप्पर लिए हुए है और दो हाथोंसे वरद और अभय मुद्रा प्रदर्शित करती है। अमृत पीनेसे उसका हृदय कोमल हो गया है।

यह शक्ति, जिसका कोमल शरीर बिजलीकी एक करोड़ कौंधोंके समान सुन्दर है, त्रिकोणके रूपमें इस कमलके भीतर विराजमान है। इस त्रिकोणके भीतर बाण नामका स्वर्गके समान चमकता हुआ शिवलिंग है जिसके सिरेपर मणिके छिद्रके समान अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र है। यहींपर लक्ष्मीका प्रकाशमान आवास है।

जो साधक इस हृत्कमलपर ध्यान जमाता है वह वाणीका स्वामी होकर ईश्वरके समान तीनों लोकोंकी रक्षा और संहार करनेमें समर्थ हो जाता है। यह कल्पवृक्षके समान हृत्कमल शर्व (महादेव)-का आवास-स्थल है। और उस हंस (जीवात्मा)-द्वारा अलंकृत है जो निर्वात स्थानमें रक्खे हुए दीपककी लौके समान स्थिर है। उसके मध्य भागके चारों ओर सौर-मण्डल-द्वारा प्रकाशित बड़े आकर्षक ज्योतिस्तन्तु हैं।

योगियोंमें अग्रणी ये महादेवजी सम्पूर्ण स्त्री-समाजके अत्यन्त प्रिय हैं। ये अत्यन्त बुद्धिमान् हैं और कल्याणकारी कार्य करते रहते हैं। ये पूर्णत: संयतेन्द्रिय हैं और सदा ब्रह्मके ध्यानमें समाधिस्थ रहते हैं। इनकी अनुप्राणित वाणी स्वच्छ जलकी धाराके समान सदा प्रवाहित होती रहती है। (अर्थात् लक्ष्मी यहाँ निरन्तर निवास करती हैं) । इसके ध्यानसे परकाया-प्रवेशकी शक्ति आ जाती है।

(परकाया-प्रवेश अध्याय देखिए)

अनाहत नामका यह बारह पंखड़ियोंवाला हृत्पद्म बन्धूकके लाल फूलोंके रंगवाला है जिसकी बारहों पंखड़ियोंपर क से ठ तक सिन्दूरी रंगवाले बिन्दु-सहित अक्षर (कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं) अंकित हैं। उसके बीचमें छह कोनेवाला धूमरे रंगका वायुमण्डल है जिसके भीतर एक करोड़ बिजलीकी चमकके समान चमचमाते हुए त्रिकोणके साथ सूर्य-मण्डल विराजमान है। उसके ऊपर धूमरे रंगका वायु-बीज (यं) काले हरिणपर बैठा हुआ है जिसके चार भुजाएँ हैं और जो अंकुश लिए हुए हैं। इस वायु बीजकी गोदमें त्रिनेत्र ईश विराजमान हैं। हंसकी आभावाले उनके दोनों हाथ वरद और अभय मुद्रामें फैले हुए हैं। इस कमलके बीच लाल कमलपर हाथोंमें पाश और कपाल लिए हुए तथा वरद और अभय मुद्रा प्रदर्शित करती हुई चतुर्भुजी शक्ति काकिनी है। वह स्वयं भी सुनहरे रंगका पीताम्बर और विभिन्न प्रकारके मणियों-सहित हड्डियोंकी माला पहने हुए है। अमृत पीनेसे उसका हृदय कोमल हो गया है। त्रिकोणके बीचमें बाण-लिंगके रूपमें मस्तकपर



द्वितीयाका चन्द्रमा और बिन्दु धारण किए हुए सुनहरे रंगवाले शिवजी विराजमान हैं। वे अनेक इच्छाओंसे उल्लसित हो रहे हैं। उनके नीचे हंसके रूपमें निश्चल दीपशिखाके समान जीवात्मा विराजमान है। इस कमलके मध्य गोलकके नीचे आठ पंखड़ियोंवाला लाल कमल है जिसका सिरा औंधा या उलटा है। इसी लाल कमलमें कल्पवृक्ष है तथा पताकाओंसे सुसज्जित ढकी मणिमयी वेदी है जो मानसिक पूजाका स्थल है।

विशुद्ध चक्र

इसके ऊपर कण्ठमें अत्यन्त शुद्ध और धूमरे बैंगनी रंगका विशुद्ध नामका चक्र है जिसकी सोलह पंखड़ियोंपर गहरे लाल रंगके चमचमाते सोलह स्वर (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) अंकित हैं और ये अक्षर उसीके सम्मुख स्पष्ट दृष्टिगोचर हो पाते हैं जिसकी बुद्धि प्रकाशित हो गई रहती है। इस कमलके कोशमें गोल आकारका पूर्ण चन्द्रमाके समान श्वेत आकाश विराजमान है। हिमके समान श्वेत हाथीपर श्वेत आकाशके रंगका बीज मंत्र (हं) स्थित है।

उसके चारों हाथोंमेंसे दोमें तो पाश और अंकुश हैं तथा अन्य दोके द्वारा वह अभय मुद्रा और वरद मुद्रा प्रदर्शित करता है जो उसकी सुन्दरता संवर्धित करते हैं। उसकी गोदीमें अर्थात् नभो बीज (हं)-की गोदीमें अत्यन्त हिम-धवल, त्रिनेत्र, पंचमुखी, दशभुजी, व्याघ्र-चर्म ओढ़े महादेवजी सदा निवास करते हैं। उनका शरीर गिरिजाके शरीरसे सम्पृक्त है और उनका नाम सदाशिव है।

इस कमल-कोशमें पीतांबर-धारिणी अमृत-सिन्धुसे भी पवित्र शक्ति शाकिनी अपने चार कर-कमलोंमें धनुष, बाण, पाश और अंकुश लिए हुए विद्यमान है। शशचिह्नसे रहित यह चन्द्र-मण्डल उस व्यक्तिके लिये महा-मुक्तिका द्वार है जो योगका धन प्राप्त करना चाहता हो और जिसकी इन्द्रियाँ शुद्ध तथा संयत हों।

इस कमलपर एकचित्त होकर ध्यान करनेवाला पूर्ण आत्मज्ञानी साधक कवि (महर्षि), वक्ता और बुद्धिमान होकर अविचल मनःशान्तिका आनन्द लेता, त्रिकालज्ञ हो जाता, नीरोग, शोकरहित तथा दीर्घजीवी होकर सबका कल्याण करता हुआ हंसके समान सब प्रकारकी विपत्तियोंका ध्वंस कर देता है।

कण्ठके नीचे धूमरे बैंगनी रंगके सोलह पंखड़ियोंवाले इस विशुद्ध चक्रका पराग केसर लाल रंगका है और इसकी पंखड़ियोंपर अंकित लाल रंगवाले स्वरोंके ऊपर बिन्दु भी है। इसके बीचमें गोल और श्वेत नभोमण्डल है जिसके भीतर चन्द्र-मण्डल है और उसके ऊपर श्वेत वस्त्रोंवाला और श्वेत रंगका चार भुजाओंवाला बीज (हं) हाथीपर आरूढ है जो अपने चारों हाथोंमेंसे दोमें तो पाश और अंकुश लिए हुए दोसे अभय मुद्रा और वरद मुद्रा प्रदर्शित कर रहा है। उसकी गोदमें वृषभपर रक्खे हुए सिंह-पीठपर सदाशिव विराजमान हैं। अर्धनारीश्वर रूपमें उनका आधा शरीर हिम-धवल और दूसरा आधा सुनहरा है। उनके पाँच मुख (सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान) और दस भुजाएँ हैं जिनमें वे शूल, परशु, खड्ग, वज्र, दहन (आग्नेयास्त्र, अग्नि), नागेन्द्र (सर्प), घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभय मुद्रा धारण किए हुए हैं। वे व्याघ्र-चर्म ओढ़े हुए और भस्मसे लिप्त हैं और उनके गलेमें सर्पोंकी माला पड़ी हुई है। उनके सिरपर औंधी लटकी हुई चन्द्रकलासे टपकती हुई अमृतकी बूँदें उनके मस्तकपर झलक रही हैं। कोषके भीतर चन्द्र-मण्डलमें हड्डियोंपर बैठी हुई



गोरे रंगकी पीताम्बर-धारिणी शक्ति शाकिनी है जिसके चार भुजाएँ, पाँच मुख, तीन नेत्र हैं और जो अपने हाथमें धनुष्, बाण, पाश और अंकुश लिए हुए है।

इस पद्मपर निरन्तर एकाग्र ध्यान करते हुए कुम्भकके द्वारा प्राणवायु रोक लेने-पर योगी चाहे तो अपने क्रोधसे तीनों लोकोंको विचलित कर सकता है। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, हरि, हर, सूर्य और गणेश भी उसे नहीं रोक पा सकते।

आज्ञाचक्र

इसके ऊपर सुन्दर धवल चन्द्रमाके समान आज्ञाचक्र है जिसकी दो पंखड़ियोंपर सुन्दर श्वेत रंगमें ह और क्ष अक्षर अंकित हैं। यह ज्ञानके तेजसे चमचमाता रहता है। इसमें चन्द्रमाके समान छह मुखोंवाली और छह हाथोंवाली हाकिनी निवास करती है जिसके एक हाथमें पुस्तक, दो हाथ अभय और वरद मुद्रामें ऊपर उठे हुए हैं और शेष हाथोंमें कपाल, डमरू और माला है। वह शुद्ध चित्ता है।

इस पद्मके भीतर सूक्ष्म मनसका निवास है और यह प्रख्यात है। इसके कोशकी योनिमें इतर नामक शिवलिंग विराजमान है जो बिजलीकी चमकीली शृंखलाके समान चमकता है। श्रेष्ठतम शक्तिका निधान और वेदोंका प्रथम बीज (ॐ) भी वहीं है जो अपनी चमकसे ब्रह्म-सूत्रका दर्शन कराता है। निश्चल मनवाले साधकको चाहिए कि उपर्युक्त क्रमसे उसपर ध्यान जमावे।

जिस श्रेष्ठतम साधकका आत्मा इस कमलपर निरन्तर ध्यानस्थ हुआ रहा करता है वह स्वेच्छासे जब चाहे तब तत्काल परकाया-प्रवेश कर सकता है। वह मुनियोंमें सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञाता, सर्वद्रष्टा, सबका कल्याण करनेवाला और सर्वशास्त्रज्ञ हो जाता है। उसे ब्रह्मके साथ एकात्मताका अनुभव तो हो ही जाता है साथ ही उसे अनेक श्रेष्ठतम सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं। वह दीर्घजीवी और कीर्तिमान् होकर तीनों लोकोंका, कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता हो जाता है।

इस चक्रके अन्तर्गत त्रिकोणमें (अ, उ, म) अक्षरोंकी सन्धिसे बना हुआ प्रणव ॐ का नित्य शाश्वत निवास है। यहीं चमकीली लौके समान शुद्ध, बुद्ध आत्मा विराजमान है। इसके ऊपर अर्द्ध चन्द्र और अर्द्धचन्द्रके ऊपर बिन्दुके रूपमें मकार (ँ) चमक रहा है। इसके ऊपर बलरामके समान श्वेत नाद है जो चन्द्रमाके समान किरणें फैला रहा है।

जब योगी किसी परम गुरुकी सेवासे निराधार भवन (निरालम्बपुरी अर्थात् संसारसे पूर्णत: अनासक्त मन)-को बन्द कर लेता है और निरन्तर अभ्याससे इस निर्बाध आनन्दके स्थानमें पूर्णत: लय हो जाता है तब वह त्रिकोणके मध्य और उसके ऊपर स्पष्ट चमकते हुए अग्निके स्फुलिंग देखने लगता है। उस समय वह प्रज्ज्वलित दीपके रूपमें उस ज्योतिके दर्शन करने लगता है जो प्रात:कालके स्पष्ट चमकते हुए सूर्यके समान प्रकाशमान होकर आकाश और पृथ्वीके बीचमें चमकता है। यहींपर भगवान् अपनी पूर्ण शक्तिके साथ अपनेको आविर्भूत करते हैं। वह अव्यय तत्त्व-द्रष्टा वहाँ वैसे ही विराजमान हैं जैसे अग्नि, सूर्य और चन्द्र-मण्डलमें हैं।



यहींपर विष्णुका अप्रतिम और आनन्दमय आवास है। श्रेष्ठतम योगी अपने अन्त समयमें बड़े आनन्दके साथ अपने प्राण यहाँ प्रतिष्ठित करके अपना नश्वर शरीर छोड़कर उस शाश्वत, अजन्मा आदि देव पुरुष परमात्मामें लीन हो जाता है जो तीनों लोकोंके पूर्व भी विराजमान था और जिसे

वेदान्तके द्वारा ही जाना जा सकता है।

आज्ञा-चक्रमें श्वेत रंगकी दो पंखड़ियाँ होती हैं जिनपर श्वेत रंगके ह और क्ष अक्षर अंकित होते हैं। श्वेतवर्णा षण्मुखी और प्रत्येक मुखपर तीन तीन आँखों- वाली षड्भुजी शक्ति हाकिनी श्वेत कमलपर अपने दो हाथोंसे वरद मुद्रा और अभय मुद्रा प्रदर्शित करती हुई अन्य हाथोंमें रुद्राक्ष-माला, नर-कपाल, डमरू और पुस्तक धारण किए यहाँ विराजमान है। उसके ऊपर त्रिकोणमें बिजलीके समान चमचमाता इतर लिंग है। इसके ऊपर दूसरे त्रिकोणमें दीपककी लौके समान चमचमाता अन्तरात्मा स्थित है। इसके चारों ओर हवामें तैरते हुए प्रकाशको घेरे हुए एक स्फुलिंग है जो अपनी चमकसे मूल और ब्रह्मरन्ध्रके बीच विद्यमान होकर सब कुछ देखा करता है। इसके ऊपर मनस है और मनसके ऊपर चन्द्र-मण्डलमें हंस: हैं जिसमें परमशिव और उनकी शक्ति विद्यमान है।

जब योगीके सब कार्य सब प्रकारसे गुरुके चरण-कमलोंमें उचित रूपसे समर्पित हो जाते हैं तब वह आज्ञा-चक्रके ऊपर महानादका रूप दृष्टिगोचर कर लेता है और वाणीकी सिद्धि सदा अपने वशमें ग्रहण किए रख सकता है। जो महानाद वायुका लय स्थान है वह शिवका अर्धरूप है और आकारमें हलके समान है। वह शान्त है, वर प्रदान करता है, भय दूर करता है और शुद्ध बुद्धिको प्रकट करता है।

सहस्रार चक्र

इन सबके ऊपर परम व्योममें शंखिनी नाडी और विसर्गके नीचे पूर्ण चन्द्रमासे भी अधिक धवल और चमकदार सहस्र पंखड़ियोंवाला एक कमल है जिसका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है। वह अत्यन्त आकर्षक है और उसके फैले हुए पराग केसर उदित सूर्यके रंगके हैं। उसका शरीर अ से प्रारम्भ होनेवाले अक्षरोंसे प्रकाशमान है और वही परमानन्द ब्रह्मानन्दरूप है।

इस पूर्ण सहस्रारमें निर्मल आकाशमें चमकनेवाला शशांक-रहित पूर्ण चन्द्र विराजमान है जो प्रचुरताके साथ अपनी किरणें बिखेरता रहता हुआ अमृतके समान तरल और शीतल है। इस चन्द्र-मण्डलके भीतर बिजलीके समान निरन्तर चमकता (चमचमाता) त्रिकोण है जिसके भीतर वह पर बिन्दु या ईश्वर विराजमान हैं जिनकी सेवा गुप्त रूपसे सब देवता करते रहते हैं।

पूर्णत: गुप्त और अत्यन्त प्रयास-द्वारा प्राप्य वह सूक्ष्म बिन्दु (शून्य) ही मुक्तिका मूल है जो अमाकला (अमृत टपकानेवाली चन्द्रमाकी कला)-के साथ निर्वाण-कलाको प्रकट करती है। यहींपर परमशिव विद्यमान हैं। वे ही ब्रह्म सब प्राणियोंके आत्मा हैं। उनमें रस और विरस दोनों मिले हुए हैं और वे ऐसे सूर्य हैं जो अज्ञान और मोहके अन्धकारको नष्ट कर डालते हैं।

अमृत-तुल्य सारकी अनवरत और पुष्कल धाराके रूपमें शुद्ध बुद्धिवाले यतीको भगवान् वह ज्ञान प्रदान कर देते हैं जिसके द्वारा वह जीवात्मा और परमात्मासे एकात्मताका अनुभव कर लेता है। वह प्रत्येक पदार्थमें सबके स्वामी उन भगवान्के समान व्याप्त हो जाता है जो सदा प्रवहमान और विस्तृत धाराके रूपमें परमहंस नामका सब प्रकारका आनन्दमय रूप धारण किए हुए हैं।



काशीके प्रसिद्ध बाबा किनारामजीकी विश्रुत परम्परामें वर्त्तमान योगेश्वरी-समूहके प्रतिष्ठापक अवधूत श्रीभगवान् रामजीके यहाँ जो आवेष्टित पत्रक सुरक्षित है उसमें बारह चक्रोंके भेदनका विधान बताया गया है। अगले अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण दिया जा रहा है।

कुण्डलिनी-योग (तांत्रिक योग)

यदि कोई श्रेष्ठ गुरु मिल जाय तो हठ-योगकी अपेक्षा कुंडलिनी-योग इतना अधिक सरल है कि तीनसे दस महीनेके भीतर शिव-सायुज्य और ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त हो सकता है। यह बताया जा चुका है कि मनुष्यके शरीरके सारे अंगोंमें ७२ हजार नाडियाँ हैं जिनमेंसे प्राण-शक्तिको वहन करनेवाली केवल १० ही नाडियाँ हैं। राजयोग या हठ योगके योगाभ्यासीको निम्नांकित दस नाडियोंका और उनमें चलनेवाले प्राणोंका पूर्ण ज्ञान होना ही चाहिए—

१. इडा, २. पिङ्गला, ३. सुषुम्णा, ४. गान्धारी, ५. हस्तिजिह्वा, ६. पूषा, ७. यशस्विनी, ८. अलंबुषा, ९. कुहू और १०. शंखिनी।

मानव-शरीरमें इन दस नाडियोंका विवरण लिङ्गमहापुराण तथा गोरक्षपद्धति (श्लोक २९-३१)-के अनुसार इस प्रकार है—

१. इडा नाडी मेरुदण्डके बाहर, अन्तमें नीचे बाँईं ओर (मूलाधार चक्रके त्रिकोणकी बाँईं ओर)से प्रारम्भ होकर बाँईं नाकमें समाप्त हो जाती है तथा इसका प्रवाह ऊपरको है।

२. पिङ्गला नाडी मेरुदण्डके बाहर नीचे दाहिनी ओर (मूलाधारचक्रके त्रिकोणकी दाहिनी ओर)से प्रारम्भ होकर दाहिनी नाकमें समाप्त हो जाती है तथा इसका प्रवाह ऊपरको है।

३. सुषुम्णा नाडी मेरुदण्डको पिरोए हुए उसके मध्य (मूलाधार-चक्रके त्रिकोणके मध्य पश्चिम)-से प्रारम्भ होकर ब्रह्मरन्ध्र (मस्तिष्कके अन्दर)-पर्यन्त मृणालतन्तुके समान सूक्ष्म और ज्वाला-सी उज्ज्वल प्रकाशमान् परा नाडी है। इसीके अन्दर षट्चक्र हैं और इसके द्वारा ही अखण्ड ब्रह्मानन्दपद मिलता है। ये तीन नाडियाँ १. इडा, २. पिङ्गला और ३. सुषुम्णा मूलाधारमें जो त्रिकोण खण्ड है, उसीमेंसे प्रारम्भ होती हैं और इन्हींमेंसे प्राणकी तरंगोंका मार्ग है। इसीलिये ये योगियोंके लिये परमावश्यक तथा ज्ञातव्य हैं।

इसी सुषुम्णा नाडीको अलग अलग योग-ग्रन्थोंमें शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्री, महापंथी, शाम्भवी, श्मशानी इत्यादि नामोंसे कहा है। (हठ योगप्रदीपिका अ. ३ श्लोक ४) और यह ही मुख्य है।

सुषुम्णैव परं तीर्थं सुषुम्णैव परो जपः।
सुषुम्णैव परं ध्यानं सुषुम्णैव परा गतिः॥

(योगशिखोपनिषद्)

(सुषुम्णा ही परम तीर्थ है, सुषुम्णा ही परम जप है, सुषुम्णा ही परम ध्यान है ओर सुषुम्णासे ही परा गति मिलती है।) इसी नाडीके अन्दर वज्रा नाडी है जिसके अन्दर चित्रा नाडी और उसके अन्दर ब्रह्म नाडी है। वज्रा, चित्रा तथा ब्रह्म नाडियाँ मृत्यु होनेपर अदृश्य हो जाती हैं।

४. गान्धारी बाँएँ नेत्रमें हैं।



५. हस्तिजिह्वा नाडी दाहिने नेत्रमें है।

६. पूषा दाहिने कानमें है।

७. यशस्विनी नाडी बाँएँ कानमें है।

८. अलंबुषा नाडी मुखमें है।

९. कुहू नाडी लिङ्गमें है।

१०. शंखिनी नाडी गुदामें है।

षट्चक्र

इडा और पिंगला नाडियाँ ऊपरको चलती हुई रीढ़की हड्डीके बाहरकी ओर दाएँ-बाँएँ पाँच स्थानोंपर मिलती है। जिस जिस स्थानपर वे मिलती हैं उस उस स्थानपर रीढ़की हड्डीके भीतरकी सुषुम्णा नाडीके भीतर पाँच चक्र बन जाते हैं। सुषुम्मा नाडीके भीतर भौंहोंके बीचमें पीछेकी ओर छठा आज्ञा चक्र है। ये छह चक्र हैं—

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा।

इन छह चक्रोंके ऊपर रीढ़की हड्डीके सबसे ऊपरी सिरेपर जहाँ सुषुम्णाका अन्त होता है, वहाँ सहस्र दलवाला सहस्रार चक्र है। इसी सहस्रारमें ऊपरकी ओर प्रथम गुहामें परम शिवका नित्रास है। इन छह चक्रोंकी अधिष्ठात्री शक्ति कुण्डलिनी है। (रुद्रयामल उत्तरखण्ड २१वाँ पटल षट्-चक्र-निरूपण)

मूलाधार चक्र

मेरुदण्ड या रीढ़की हड्डीके भीतर सबसे निचले छोरपर गुदा और लिङ्गकी जड़के कुछ नीचेके मध्यमें स्थित सुषुम्णा नाडीमें मूलाधार चक्र है जिसे मुक्त त्रिवेणी भी कहते हैं। यहाँ अण्डाकार चार दलवाला त्रिकोण है, जिसका तत्त्व पृथ्वी, रंग पीत, बीज लं, देवता गणेश, शक्ति डाकिनी और अधिष्ठातृ देव ब्रह्मा हैं। इस त्रिकोणके मध्य मेरुदण्डके सबसे निचले भागमें बन्द कलीके समान एक लिंग है जिसमें अत्यन्त सूक्ष्म एक छिद्र है जो सुषुम्णा नाडीका मुख कहलाता है। इस बन्द कलीके समान लिंगको ही स्वयंभू लिंग कहते हैं जिसके चारों ओर साढ़े तीन फेरे देकर कसकर लिपटी हुई अत्यन्त तेजस्वी सुनहरे रंगकी चमचमाती, सर्पके समान स्वरूपवाली, अपनी पूँछको मुखमें डाले सुषुम्णा नाडीको रोके पड़ी हुई जीव-शक्ति ही सुप्त कुण्डलिनी है।

समस्त जगत्को चलाए रखनेवाली तो महाकुण्डलिनी कहलाती है और किसी एक मानव जीवको चलानेवाली कुण्डलिनी कहलाती है। (योगकुण्डल्युपनिषद्)। यह कुण्डलिनी ही ॐकार-स्वरूपवाली, व्यापक परब्रह्मके स्वरूपवाले प्रत्येक व्यक्तिकी देहमें केन्द्रीभूत ऐसी जीवन-शक्ति है जो षट्-चक्रोंके द्वारा ७२ हजार नाडियोंका संचालन करती है। (हठयोगप्रदीपिका)। जबतक यह कुण्डलिनी नहीं जागती तबतक सारी क्रियाएँ व्यर्थ हैं। जो व्यक्ति इस कुण्डलिनीको जगाकर षट्चक्र-भेदनकी क्रिया जान जाता है, वही सच्चिदानन्द परब्रह्मका साक्षात्कार कर पाता है और वही वास्तविक योगी है। कुण्डलिनीको जो सर्पके समान कुण्डली मारे सोई हुई बताया गया है वह वास्तवमें सोई हुई प्राण-शक्ति है और वही परा शब्द-स्वरूपा ओंकारका स्वरूप है। अ + उ + म + अर्ध मात्रा ही उस कुण्डलिनीके साढ़े तीन फेरे हैं। इन चारों वर्णोंमेंसे अ का अर्थ है अग्नि, उ का अर्थ है वायु, म का अर्थ है सूर्य और अर्धमात्राका अर्थ है वारुणी (अमृत)। इन चारोंके भी तीन तीन भाग हैं जिनसे बारह मात्राओंवाली ॐकार कुण्डलिनी बनती है—



पोषिणी प्रथमा मात्रा, विद्युन्माला तथा परा।
पतङ्गी च तृतीया स्याच्चतुर्थी वायुवेगिनी।।
पंचमी नामधेया च षष्ठी चैन्द्री विधीयते।
सप्तमी वैष्णवी नाम शाङ्करी च तथाष्टमी।।
नवमी महती नाम ध्रुवेति दशमी मता।
एकादशी भवेन् मैत्री ब्राह्मीति द्वाद्वशी मता।।

इस कुण्डलिनी-योगका ज्ञान केवल सिद्ध योगी गुरुसे ही सीखा जा सकता है।

कुण्डलिनीके जागनेपर जो बड़े वेगसे विस्फोट होता है उसीको नाद कहते हैं और जैसे बादलकी गरजके साथ बिजली चमकती है वैसे ही नादसे जो प्रकाश होता है उसे बिन्दु कहते हैं। नाद ही शब्द-ब्रह्म या ओंकार है और वह ओंकार ही कुण्डलिनी-स्वरूपा आज्ञा-चक्रका बीज है। मदाम ब्लैवेत्स्कीने तो यहाँतक बता दिया कि इस दिव्य प्रकाशकी गति तो १८५००० मील प्रति सैकेण्ड है पर कुण्डलिनीकी गति ३५५००० मील प्रति सैकण्ड है और यह सार्वभौम शक्ति है।

स्वाधिष्ठान चक्र

लिङ्गकी जड़के ऊपर मेरुदण्डके भीतर सुषुम्णामें स्वाधिष्ठान चक्र है जो छह दलोंवाले कमलके समान है। इसका तत्त्व जल, रंग जल-सदृश, बीज वं, शक्ति राकिनी और अधिष्ठातृ देव विष्णु हैं। इस चक्रसे अपान प्राणका संचालन होता है।

मणिपूर चक्र

नाभिके पीछे मेरुदण्डके भीतर सुषुम्णामें यह दस दलोंवाले कमलका चक्र है। इसका तत्त्व अग्नि, गुण, रूप और रंग अग्निके सदृश, बीज रं, शक्ति लाकिनी और अधिष्ठातृ देवता रुद्र हैं। यह चक्र समान प्राणका संचालक है।

अनाहत चक्र

हृदयके सामने मेरुदण्डके भीतर सुषुम्णामें १२ दलोंवाले कमलके समान, बीज यं, शक्ति काकिनी और अधिष्ठातृ देव ईश्वर हैं। इसमें एक लिङ्ग है जिसे बाण-लिङ्ग कहते हैं। इस बाणलिङ्गके ऊपर एक अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र है जिसपर हृत्पुण्डरीक कमल है। इसीपर योगी अपने उपास्य देवताका ध्यान किया करते हैं। यह चक्र समान प्राणका संचालन करता है।

विशुद्ध चक्र

कण्ठकी जड़में मेरुदण्डके भीतर सुषुम्णामें १६ दलोंवाले कमलके समान विशुद्ध चक्र है जिसका तत्त्व आकाश, गुण शब्द (स्वर), रंग धुँएँ-जैसा, बीज हं, शक्ति शाकिनी और अधिष्ठातृ देवता सदाशिव हैं। यह चक्र ब्रह्म-द्वार कहलाता है और उदान प्राणका संचालन करता है।



आज्ञा चक्र

भौंहोंके पीछे बीचमें मेरुदण्डके ऊपरी भागमें सुषुम्णाके ऊपरी सिरेपर ही दो दलोंवाले कमलके समान आज्ञाचक्र है। उन दोनों दलोंकी बगलमें आगेकी ओर पाताल-लिङ्ग (शालग्राम) और इतर

लिङ्ग हैं। इसका तत्त्व महत्तत्त्व है, गुण नाद और उसके ऊपर बिन्दु, रंग श्वेत, बीज ऊं, शक्ति हाकिनी (सिद्धवाली) और अधिष्ठातृदेव शम्भु या ज्योतिष्मान् बिन्दु है। जाबालोपनिषद्में इसीको अविमुक्त काशी बताया गया है। इसका तेज सूर्य और चन्द्रके सम्मिलित तेजसे भी कहीं अधिक है। योगी लोग उसी तेजका ध्यान करते हैं। (कठोपनिषद् ५।६) उसे अन्धकारमें असंख्य ज्योति कहा गया है। इसी संस्थानपर योगियोंको परमेष्ठिगुरु परब्रह्मकी आज्ञा प्राप्त होती है, इसीलिये इसे आज्ञा चक्र कहते हैं। इसी कमलके पीछे चतुर्थ गुहा है।

सहस्रार चक्र

आज्ञाचक्रके ऊपर एक सहस्रदलवाले कमलके समान वह चक्र है जहाँ कुण्डलिनी छहों चक्रोंके तत्त्वोंको क्रमशः बेधती हुई अर्थात् उन्हें अपनेमें लय करती हुई अपने मुख्य लक्ष्य सहस्रारमें जा पहुँचती है। इसीलिये इस प्रक्रियाको लय-योग कहते हैं। इस चक्रको सहस्रार इसलिये कहते हैं कि छहों चक्रोंके कमलदलोंपरसे होती हुई कुण्डलिनीके ऊपर जाने और फिर उसी मार्गसे होकर मूलाधारमें लौटनेतकके कमलके दलोंकी संख्या सौ (१००) होती है जिसे दसों इन्द्रियोंके गुणोंसे गुणा करनेपर एक सहस्र संख्या प्राप्त हो जाती है। इसी सहस्रार चक्रपर पहुँचकर सदाशिवसे कुण्डलिनीका पूर्ण अभेदात्मक मिलन हो जाता है और इसी स्थानपर सारे विश्वके रचयिता, परा प्रकृति, पर पुरुष या परब्रह्म शाश्वत रूपसे निवास करते हैं। इसी स्थानपर योगी अपनेको भली प्रकार जानकर समाधिके द्वारा परब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। ऊपर जिन कमलोंका वर्णन किया गया है, ये सबके सब नीचेकी ओर झुके और अनखिले रहते हैं। जब योगी कुण्डलिनीको जगाकर उसे इनपरसे होते हुए सहस्रारमें ले जा पहुँचाते हैं तब ये सब खिल उठते हैं और योगी परमपद या ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

कुण्डलिनीको जगाकर छहों चक्रों तथा तीनों बाणलिङ्गोंको बेधकर सहस्रारमें पहुँचानेके लिये योगीको अष्टाङ्गयोगका अभ्यास करना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि जबतक षट्चक्र-वेध पूर्ण नहीं होता तबतक चित्त किसी एक चक्रपर स्थित नहीं होता। अतः, षट्चक्र-वेध पूर्ण करनेपर ही धारणा होती है।

पहले भी बताया जा चुका है कि योगका अभ्यास चाहे वह राजयोग हो या हठयोग हो या कुण्डलिनी-योग हो, सद्गुरुकी सहायताके बिना कभी प्रारम्भ नहीं करना चाहिए, अन्यथा निश्चित रूपसे हानि होती है, किन्तु जब गुरुकी कृपासे कुण्डलिनी जाग जाती है तब छहों चक्र भिन्न हो जाते अर्थात् खिल उठते हैं और ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र-रूपी तीनों ग्रन्थियाँ (बाण) खुल जाती हैं।

अष्टांग योग (कुण्डलिनी-उत्थान-क्रिया)

कुण्डलिनी-योगमें कुण्डलिनी (आत्मा)-को परब्रह्म परमात्मामें लय करके परमानन्द प्राप्त किया जाता है। सोई हुई कुण्डलिनीको जगाकर षट्चक्रों तथा तीनों बाणलिङ्गोंको बेधकर सहस्रारमें पहुँचानेके लिये अष्टाङ्गयोग (आठ अंगोंकी क्रिया) करना आवश्यक है। इनमेंसे १. यम, २. नियम, ३. आसन (मुद्रा, बन्ध, वेध) नामक तीनों क्रियाएँ तो स्थूल कहलाती हैं। इसके पश्चात् ४. प्राणायाम (स्वरोदय-ज्ञान), ५. प्रत्याहार, ६. धारणा (षट्चक्रभेद तथा नादानुसन्धान), ७. ध्यान और ८. लय क्रिया (समाधि) सूक्ष्म कहलाती है।



स्थूल क्रिया

यम

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहको यम कहते हैं।

किसी भी प्राणीको मन, वचन या कर्मसे न डराना, न कष्ट देना ही अहिंसा है। यह योग-साधनाका आधार है। अहिंसा दृढ होनेपर सब प्राणी उस योगीके आत्मीय हो जाते हैं।

सदा हितकर, प्रिय और यथार्थ वचन कहना तथा निष्कपट व्यवहार करना ही सत्य कहलाता है। जिसका सत्य सिद्ध हो जाता है उसे वरदान या शाप देनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

मन, वचन और कर्मसे दूसरेका द्रव्य पाने, चुराने, छीनने या ग्रहण करनेकी इच्छा न होना ही अस्तेय है। अस्तेय सिद्ध हो जानेपर योगीको सब प्रकारके रत्नोंकी जानकारी हो जाती है।

कर्म, वचन और मनसे सब प्रकारके आठों मैथुनोंको त्याग देनेको ब्रह्मचर्य कहते हैं। १. किसी स्त्रीका स्मरण, २. किसी स्त्रीके विषयमें उसके गुणोंका वर्णन, ३. किसी स्त्रीसे हँसी-ठट्ठा, ४. किसी स्त्रीको रागपूर्वक देखना, ५. किसी स्त्रीसे एकान्तमें बातचीत करना, ६. किसी स्त्रीसे मिलनेका संकल्प करना, ७. मैथुनका प्रयत्न, ८. प्रत्यक्ष मैथुन ही आठ मैथुन हैं। जो गृहस्थ ऋतुकालमें ही अपनी धर्मपत्नीसे सहवास करता है वह भी ब्रह्मचारी ही होता है।

अपने लिये धन, सम्पत्ति तथा अन्य प्रकारके भोग-विषयोंका सर्वथा त्याग कर देना ही अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह सिद्ध होनेपर योगीको अपने तथा दूसरोंके पूर्व जन्मका ज्ञान हो जाता है।

श्रीमद्भागवत (११।६)-में १२ प्रकारके यम गिनाए गए हैं— अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, लज्जा, अपरिग्रह, अनासक्तता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा, अभय। इसीसे मिलते-जुलते १० यम हठयोगप्रदीपिकामें भी गिनाए गए हैं। (उपदेश-१ श्लोक-१)

नियम

१. शौच, २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय और ५. ईश्वर-प्रणिधान ये पाँच नियम है।

जलसे शरीरकी, सत्यसे मनकी, विद्या और तपस्यासे आत्माकी और ज्ञानसे बुद्धिकी शुद्धिको शौच कहते हैं। इससे मन प्रसन्न रहता, चित्त एकाग्र होता, इन्द्रियाँ वशमें हो जातीं तथा ब्रह्मसाक्षात्कार या आत्मसाक्षात्कारकी योग्यता प्राप्त हो जाती हैं।

जीवन-निर्वाहकी कमसे कम सामग्री और परिस्थितिसे ही संतुष्ट हुए रहनेको सन्तोष कहते हैं। इससे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

मिताहार करते हुए अपने धर्मका विधिपूर्वक पालन करके व्रत-उपवासके द्वारा भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी आदिको सहन करनेको तप कहते हैं। तपके प्रभावसे सब दोषोंका नाश हो जाता है तथा शरीर और इन्द्रियाँ वशमें हो जाती हैं।



वेद, शास्त्र, तन्त्र आदि मोक्षशास्त्रोंका पाठ और अध्ययन तथा ॐकार और अपने इष्ट देवताका मानस जप करना ही स्वाध्याय है। इससे इष्ट देवताका साक्षात्कार होता है। मन, वचन और कर्मसे

अपना सब कुछ ईश्वरको अर्पित करके सर्वतोभावेन यह कहकर कि जो चाहे करो (यथेच्छसि तथा कुरु) अपनेको ईश्वरके हाथ सौंप देना ही ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। ऐसा होनेपर समाधि भी सिद्ध हो जाती है।

याज्ञवल्क्यने निम्नांकित १० नियम बताए हैं— १. तप, २. सन्तोष, ३. आस्तिक्य (ईश्वरमें विश्वास), ४. दान, ५. ईश्वर-पूजन, ६. सिद्धान्त-श्रवण, ७. ह्री (अपनी प्रशंसासे लज्जित और संकुचित होना), ८. मति, ९. जप, १०. हुत (यज्ञ)। हठ-योग प्रदीपिका और लययोग-संहितामें भी ये ही १० नियम बताए गए हैं।

आसन, मुद्रा, बन्ध, वेध

आसन

आसनका एक अर्थ वह स्थान है जिसपर बैठकर साधना की जाती है और दूसरा अर्थ बैठनेका वह ढंग है जिसमें योगी स्थिरतापूर्वक सुखसे बैठकर अपनी यौगिक क्रियाएँ कर सके।

किसी चौकीपर कुशाका आसन बिछाकर, उसपर मोटा ऊनी वस्त्र या कम्बल बिछाकर, उसपर मोटा श्वेत सूती वस्त्र डालकर और उसके ऊपर श्वेत रेशमी वस्त्र या मृग-चर्म बिछाकर योगाभ्यासके लिये बैठना चाहिए। अन्य ग्रन्थोंके अनुसार चौकीपर कुशासन, मृगचर्म और सूती वस्त्र बिछाकर ही योगाभ्यास करना चाहिए जिससे कि साधनाके समय शरीरमें उत्पन्न विद्युत् तेज पृथ्वीमें न विलीन हो पावे अन्यथा सारी साधना निष्फल हो जाती है। योगाभ्यास करनेके लिये सुखपूर्वक बैठनेकी मुद्राको आसन कहते हैं। घेरण्डसंहित में ८४ आसन बताए गए हैं जिनमेंसे ३२ अधिक लाभ-दायक और सुखकर हैं किन्तु उनमेंसे केवल तीन आसन ही कुण्डलिनी-योगके लिये उचित माने गए हैं— सिद्धासन, पद्मासन और स्वस्तिकासन (लययोग, अध्याय— ८)

सिद्धासन

बाँएँ पैरकी एड़ीसे गुदा और लिंगके बीच कुण्डलिनीके स्थानको दबाकर दाहिने पैरकी एड़ीसे लिङ्गके ऊपरके भागको दबाया जाय जिससे दोनों पैरोंकी एड़ियाँ समान रूपसे ऊपर नीचे हो जायँ। फिर मेरुदण्ड सीधा रखकर ठोड़ी आगे झुकाकर छातीसे लगाकर, एकाग्र होकर दोनों नेत्रोंको स्थिर दृष्टिसे दोनों भौहोंके बीचके भागको देखते रहा जाय। इस आसनकी सिद्धिसे तीनों बन्ध सिद्ध हो जाते हैं।

पद्मासन

बाँएँ पैरको दाहिनी जाँघके मूलपर रक्खा जाय और दाहिने पैरको बाँएँ पैरके मूलपर रक्खा जाय। बाँएँ हाथको बाँएँ जंघेपर दाँएँ हाथको दाँएँ जंघेपर, दोनों हाथोंकी हथेलियोंको ऊपरकी ओर और दोनों हाथोंके अंगूठे अपनी तर्जनी उँगलीसे मिलाकर रक्खे जायँ, अपनी ठोड़ी आगे झुकाकर छातीसे लगाकर मेरुदण्डको सीधा रक्खा जाय और एकाग्र होकर स्थिर दृष्टिसे दोनों नेत्रोंके द्वारा नासिकाके अग्रभागको देखते रहा जाय। इस आसनकी सिद्धिसे प्राणायाममें सुगमता होती है।



स्वस्तिकासन

दोनों पैरोंके तलवोंको पिंडलियों और जाँघोंके बीच लगाकर, मेरुदण्डको सीधा रखकर और

एकाग्र होकर दोनों नेत्रोंकी अचल दृष्टिसे दोनों भौहोंके बीचके स्थानको देखता रहा जाय।

आसनोंके अभ्याससे शरीरमें स्फूर्त्ति और उत्साहकी वृद्धि होती है, शरीर नीरोग रहता है तथा अनेक प्रकारके रोग दूर होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है किन्तु केवल अनुभव-सिद्ध सदगुरु योगीसे ही आसन सीखकर अभ्यास करना चाहिए अन्यथा विपरीत फल हो सकता है।

मुद्रा

यों तो निम्नांकित २० मुद्राएँ गिनाई गई हैं— महामुद्रा, योनिमुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्ति-चालिनी, विपरीतकारिणी, वज्राणी, शक्तिधारिणी, ताडागी, माण्डवी, शाम्भवी, नभो मुद्रा, उन्मनी, प्राङ्मुखी, धारिणी, पार्थिव-धारिणी, आम्भसीधारिणी, वैश्वानरीधारिणी और वामनीधारिणी। किन्तु इनमेंसे कुण्डलिनी योगमें केवल तीन ही मुद्राएँ सहायक मानी गई हैं— शक्ति-चालिनी, योनि और खेचरी।

शक्तिचालिनी मुद्रा

सिद्धासनसे बैठकर दोनों हाथोंसे दोनों पैरोंकी एड़ियोंको मूलाधारपर बलपूर्वक दबाया जाय, हृदयसे ठोढ़ी लगाकर ज़ोरसे साँस ली जाय जिससे कि पेटकी अंतड़ियोंके दबाव और उनके शिथिल होनेका दबाव मणिपूर चक्रपर पड़े और इसीके साथ साथ गुदाका संकोचन और उद्‌घाटन किया जाय। इस क्रियासे मूलाधारके अपान वायुकी टक्कर मणिपूरके प्राण वायुपर लगनेसे सोई हुई कुण्डलिनी जाग जाती है। इसका अभ्यास करते समय योगीको जितेन्द्रिय होकर नमक, खट्टा और तीता पदार्थ छोड़कर परिमित भोजन अथवा केवल दुग्ध-पान करके काम, क्रोध, मोह, अहंकार छोड़कर प्रतिदिन कमसे कम चार घड़ी-पर्यन्त साधना करनेसे कुण्डलिनीको जगानेमें सहायता मिलती है।

योनिमुद्रा

सिद्धासन लगाकर शरीरके नवों बाहरी द्वारोंको उँगलियों तथा एड़ियोंसे बन्द कर दिया जाय। दोनों अँगूठों से दोनों कानोंको, दोनों तर्जनियोंसे दोनों नेत्रोंको, दोनों मध्यमाओंसे दोनों नयनोंको, दोनों एड़ियोंसे गुदा और लिङ्गको दबाकर जीभको कौएकी चोंचकी तरह बनाकर साँस भीतर खींचकर कनिष्ठिकाओंसे मुँहँ बन्द करके उस प्राण-वायुको अपान वायुसे मिलाते हुए प्रथम चक्रमें कुण्डलिनीका ध्यान किया जाय और हुं मन्त्रका मानस जप किया जाय। इससे सोई हुई कुण्डलिनी जागने लगती है किन्तु शक्ति-पालिनी मुद्राके बिना योनि-मुद्रा सिद्ध नहीं होती।

खेचरी मुद्रा (लम्बिका योग)

जीभको लम्बा करके उलटकर मुँहँके भीतर तालुके बीच नाककी जड़के नीचे छिद्रमें प्रवेश करके अमर वारुणीका इस प्रकार पान किया जाय कि श्वास भीतर-बाहर न आ जा सके और दोनों नेत्रोंसे दोनों आँखोंके बीचके स्थानको देखते रहा जाय। जीभको पर्याप्त लम्बा करनेके लिये घेरण्ड-संहिता, गोरक्ष-पद्धति और हठयोग-प्रदीपिकामें छेदन, चालन और दोहन नामक बहुत कष्टकर क्रियाएँ बताई गई हैं। खेचरी मुद्रा सिद्ध करनेपर योगी अपने हृदयकी गति बन्द करके समाधि-लाभ कर लेता है। इसीलिये इसे मुद्राओंका राजा कहा जाता है।



बन्ध

यों तो बन्ध अनेक प्रकारके हैं किन्तु चार ही मुख्य हैं— मूलबन्ध, महाबन्ध, जालन्धरबन्ध, उड्डियानबन्ध। इनमेंसे भी मूल, जालन्धर और उड्डियान ही कुण्डलिनी-योगमें सहायक होते हैं।

मूलबन्ध

गुदा और लिङ्गके प्रदेशको एड़ियोंसे दबाकर गुदामार्गका संकोचन किया जाय। इससे अपान वायु ऊपरको उठकर प्राणवायुके साथ जा मिलता है और सोई हुई कुण्डलिनी जागकर सुषुम्णामें प्रवेश करने लगती है।

उड्डियानबन्ध

दोनों जाँघोंको मोड़कर पैरोंके तलवोंको परस्पर मिलाकर बैठा जाय, पेटके भीतर नाभि चक्रके ऊपर-नीचेके भागको पींठकी ओर ऐसे खींचा जाय कि पेट पीठसे लग जाय और तब प्राणायाम साधा जाय। इस क्रियासे नाभिके ऊपर-नीचेके भागपर अधिक तनाव बढ़नेसे प्राण-वायु सुषुम्णाकी ओर चलने लगता है।

जालन्धरबन्ध

कण्ठको सिकोड़कर ठोड़ीको हृदयपर जमानेसे शरीरकी नाडियाँ कस जाती हैं जिससे इडा और पिंगला नाडियोंके स्तम्भित होनेसे प्राण-वायु सुषुम्णाकी ओर बढ़ चलता है और ब्रह्मरन्ध्रसे टपकनेवाले अमृतका बन्धन हो जाता है।

महावेध

जब उड्डियानबन्ध करते समय कुम्भक प्राणायाम किया जाता है उसे महावेध कहते हैं।

ये सब क्रियाएँ किसी सिद्ध गुरुसे सीखकर ही करनी चाहिएँ।

सूक्ष्म क्रिया

(क) प्राणायाम

प्राणायामसे अंतड़ियाँ, फेफड़े और यकृत आदि दृढ होते हैं, विषाक्त रुधिर कपालसे लौट आता है और शुद्ध रुधिर पहुँच जाता है। इससे प्राण और चित्त दोनों निश्चल हो जाते हैं। जब प्राणायामके द्वारा प्राणवायुका वेग सुषुम्णामें प्रवेश कर जाता है तब शरीरके सारे दोष दूर हो जाते हैं, नाडियाँ तथा धमनियाँ शुद्ध हो जाती हैं और फिर षट्कर्म— धौति (चार प्रकारकी), बस्ति (दो प्रकारकी), नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाति (तीन प्रकारकी)-की आवश्यकता नहीं रहती। प्राणायाममें तीन क्रियाएँ होती हैं— रेचक, पूरक और कुम्भक।

रेचक

नथुनों से धीरे धीरे वायु बाहर निकालनेको रेचक कहते हैं। कभी भी रेचक वेगसे नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे बलकी हानि होती और रोग उत्पन्न होते हैं।



पूरक

नथुनोंसे वायु भीतर खींचनेको पूरक कहते हैं।

कुम्भक

शरीरके भीतर भरे हुए वायुको रोक रखनेको कुम्भक कहते हैं। इसे यों समझना चाहिए कि साँस लेना तो प्राणकी क्रिया है, साँस निकालना अपानकी क्रिया है और इन दोनोंकी गतिको रोकना कुम्भक है। कुम्भकके आठ भेद बताए गए हैं। यह कुम्भक दो प्रकारका होता है-सहित और केवल। जब श्वाससे भरपूर कुम्भक और भरपूर रेचक करे तो सहित कुम्भक होता है। जब श्वासको सुखपूर्वक भीतर-बाहरके विषयोंको त्यागकर कुम्भक करे तो केवल कुम्भक होता है। केवल कुम्भककी सिद्धिसे मन स्थित होता है और सोई हुई कुण्डलिनीका बोध हो जाता है।

जितेन्द्रिय और मिताहारी साधकको स्वच्छ, सुन्दर, छिंद्ररहित, पवित्र कक्षमें निश्चिन्त होकर एकाग्रताके साथ बसन्त या शरद्‌में ही अर्थात् चैत्र, वैशाख, आश्विन और कार्त्तिकमें ही प्राणायामका अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए। प्राणायामका अभ्यास भी किसी अनुभव-सिद्ध, सद्‌गुरु योगीसे सीखकर ही करना चाहिए अन्यथा निश्चित हानि होती है।

(ख) स्वरोदय

अपने श्वास-प्रश्वासकी गतिका ज्ञान प्राप्त करनेको स्वरोदय कहते हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि इडा नाडी तो बाँएँ नथुनेतक पहुँचकर और पिंगला नाडी दाँएँ नथुनेतक पहुँचकर समाप्त हो जाती हैं। इनमेंसे एकका श्वास प्रतिदिन सूर्योदयसे ढाई घड़ीतक चलता है और फिर बारी बारीसे ढाई ढाई घड़ी (१ घंटे)-तक प्रत्येकका श्वास चलता रहता है। इन दोनोंके सन्धि-कालमें जो दोनों नथुनोंसे श्वास चलता रहता है वही सुषुम्णाका प्रवाह है। इस सन्धि-कालको जितना बढ़ाया जाय उतनी ही शीघ्रतासे यौगिक अभ्यासोंमें सहायता मिलती है। स्वरोदयके ज्ञानसे रोगों और उनके उपायोंका ज्ञान होता है। स्वरोदयके ज्ञानसे भविष्य और मृत्युका ज्ञान, रोगनिवारण, शत्रु-विजय, इच्छित पुत्रोत्पत्ति तथा लक्ष्मीकी प्राप्ति आदि सब फल मिलते हैं। (लय-योग-संहिता, स्वरोदयकथनम् १४)

प्रत्याहार

सब इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटा लेनेको प्रत्याहार कहते हैं। जब प्राणायामसे कमसे कम १० मिनट प्राणवायुका निरोध हो तभी प्रत्याहार प्रारम्भ करना चाहिए।

धारणा

किसी एक चक्रमें चित्तको पाँच घड़ी (२ घंटे) तक रोके रखनेको धारणा कहते हैं।

(क) नादानुसंधान



षट्‌चक्रवेध हो जानेपर जब कुण्डलिनी सहस्रसारमें पहुँचकर परात्पर शिवके साथ एकात्म हो जाती है उस समय जो नाद सुनाई पड़ता है वह अनाहत नाद कहलाता है। यह नाद अनेक प्रकारका होता है। इसके अनुसंधानको ही नादानुसंधान कहते हैं।

(ख) षट्चक्रवेध

षट्चक्रवेध पूर्ण करनेसे ही धारणा सिद्ध होती है।

ध्यान

धारणाके द्वारा जब चित्त एकाग्र होकर २४ घंटेतक स्थिर हो रहता है तब ध्यान कहलाता है। यह तीन प्रकारका होता है— स्थूल, ज्योति और सूक्ष्म निर्गुण। १. स्थूल ध्यानमें इष्टदेवके सगुण रूपका ध्यान होता है। २. ज्योतिर्ध्यानमें परब्रह्मतुल्य जीवात्मा-स्वरूपिणी कुण्डलिनीका ध्यान होता है। ३. सूक्ष्म निर्गुण ध्यानमें निर्गुण परब्रह्मका ध्यान होता है। कुण्डलिनीको जगाकर षट्चक्र-वेध करते हुए उसके सहस्रारमें लीन होनेको ध्यान कहते हैं। स्थूल ध्यानसे सौ गुना ज्योतिर्ध्यान तथा ज्योतिर्ध्यानसे लाख गुणा सूक्ष्म निर्गुण ध्यान होता है। ध्यानके प्रभावसे योगीका आत्मा अपना जीवात्मा-भाव छोड़कर परमात्मामें मिलकर एक हो जाता है किन्तु उसे ध्याता, ध्यान, ध्येयका ज्ञान बना रहता है और उसे अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

समाधि या लय-क्रिया

ध्यान ही उस समय समाधि-रूपमें परिवर्तित हो जाता है जब केवल ध्येय मात्रका ही भान रह जाता है। मन और आत्माका आत्म-स्वरूप हो जाना ही समाधि है। जब जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते और सब संकल्प नष्ट हो जाते हैं उस अवस्थाको तो समाधि कहते हैं और सब विषयोंकी सुध-बुध भूल जानेको लय कहते हैं। गोरक्ष-पद्धतिके अनुसार १२ दिनोंतक प्राण-वायुके संयमको समाधि कहते हैं। ध्यानकी अवस्थामें तो ध्याता, ध्यान और ध्येयका ज्ञान बना रहता है किन्तु जब ये सब विस्मृत हो जाते हैं तभी समाधि होती है। समाधि सिद्ध हो जानेपर आत्मा और परमात्माका एकाकार प्रत्यक्ष हो जाता है और इसीको लय-क्रिया कहते हैं। यह समाधि दो प्रकारकी मानी गई है—जड और चैतन्य या संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात या सविकल्प और निर्विकल्प।

समाधि-अवस्थाको ही उन्मनी, मनोन्मनी, अमृतत्व, लय-तत्त्व, शून्याशून्य पद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवन्मुक्त, सहजा और तुरीया अवस्था कहते हैं।

१. श्रीमद्भागवत (११।१५।)-में २३ सिद्धियाँ गिनाई गई हैं— अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, कामावसंयिता, दूर-श्रवण, दूर-दर्शन, भूख-प्यास न होना, मनके साथ कहीं पहुँच जाना, इच्छानुसार रूप बना लेना, परकाया-प्रवेश, स्वेच्छा-मृत्यु, देवताओंकी क्रीडाका दर्शन, संकल्पके अनुसार सिद्धि, त्रिकालज्ञता, शीतोष्ण तथा सुख-दुःखसे मुक्ति, सबसे आज्ञा पालन करा लेना, परचित्त-विज्ञान, अग्नि, जल, विष आदिको रोकनेकी शक्ति एवं अपराजेयता।

पवनके लयसे मनका भी लय हो जाता है इसलिये श्वास और निःश्वासको प्राणायामके द्वारा साध लेनेसे सब विषयोंसे सम्बन्ध दूर हो जाता है और अन्तःकरणके विकार नष्ट हो जाते हैं। यही योगियोंका लय है। धारणा, ध्यान और लय या समाधि प्राप्त करनेके लिये प्राणायामकी यह विधि बताई गई है—



१२ प्राणायामसे	१ प्रत्याहार	= १२ प्राणायाम
१२ प्रत्याहारसे	१ धारणा	= १४४ प्राणायाम

१२ धारणासे	१ ध्यान	= १७२८ प्राणायाम
१२ ध्यानसे	१ समाधि या लय	= २०७३६ प्राणायाम

योगियोंका कथन है कि यम, नियम, आसन, खेचरी मुद्रा और प्राणायाम आदिकी क्रियाएँ पूर्ण करनेपर ही शक्तिचालिनी मुद्राका अभ्यास करना चाहिए। इन क्रियाओंके साथ जब शक्तिचालिनी और योनिमुद्रा, कुम्भक, सगर्भ प्राणायाम, बन्ध और धारणा पूर्ण हो जाती है तभी सुप्त कुण्डलिनी जागकर छह चक्रों तथा तीन बाण-लिंगोंको वेधकर सहस्त्रार चक्रमें पहुँचकर परब्रह्ममें लीन हो पाती है। कुण्डलिनी-जागरणका अभ्यास शुक्ल पक्षमें ही करना चाहिए क्योंकि इसी पक्षमें इसका संचार ऊपरको होता है किन्तु ये सब क्रियाएँ किसी सद्गुरू योगीसे ही सीखकर करनी चाहिएँ।

कुण्डलिनी-योग सिद्ध हो जानेपर साधक सर्वगुणसम्पन्न, सर्व सिद्धियोंसे सम्पन्न, परब्रह्म-स्वरूप और जीवन्मुक्त हो जाता है। वह अपनी इच्छासे ही शरीर छोड़ता है और अपनी इच्छासे ही समाधि लगाकर सहस्त्रारमें अपने ही ब्रह्मस्वरूप ध्यानमें लीन होकर अमृत पीता, अनाहत नाद सुनता और परमानन्द प्राप्त करता है।





२४



द्वादशचक्र–वेध
(विशेष कुण्डलिनी–योग)



सुषुम्णाके मार्गसे कुंडलिनी-योगसे सम्बद्ध 'हठ' योग आदिके सभी ग्रन्थोंमें कुंडलिनी-द्वारा षट्चक्र-वेधका ही विवरण दिया हुआ मिलता है किन्तु काशीके प्रसिद्ध सिद्ध महापुरुष श्रीकिनाराम बाबाकी परम्परामें मान्य अवधूत श्रीभगवानरामजी महाराजसे एक प्राचीन पलेटन (वेष्टित पत्रक) प्राप्त हुआ है जिसमें द्वादश चक्रोंके वेधका उल्लेख और विवरण मिलता है। बारहवें कमलदलको समाधि-परब्रह्म-स्थान महासन बताया गया है।

इस लपेटनमें सबसे ऊपर वट वृक्षपर संस्थित अपने हाथसे अपने पैरका अँगूठा चूसते हुए बालमुकुन्द दिखाए गए हैं और वृक्षके नीचे महासिद्ध श्रीकिनारामजी खड़े चित्रित हैं।

इस पत्रकमें द्वादशचक्रोंका विवरण इस प्रकार है—

१. चार दलवाला आधारचक्र (गुदामें)

२. छह दलका स्वाधिष्ठान चक्र (लिंगमें)

३. कुंडलिनी चक्र (गर्भस्थानमें)

४. दस दलवाला मणिपूरक चक्र (नाभिमें)

५. आठ दलवाला मनश्चक्र (नाभि-मध्य)

६. बारह दलवाला अनाहत चक्र (हृदयमें)

७. सोलह दलवाला विशुद्ध चक्र (कंठ में)

८. तीन दलवाला बलवा चक्र (नासिकामें)

९. दो दलवाले कमलका आज्ञाचक्र (भौहोंके बीच)

१०. बाइस दलवाला पूर्णगिरि पाटलचक्र (ललाटमें)

११. सहस्रदल चक्र (मूर्धामें)

१२. ब्रह्मरन्ध्र अमरस्थान (सिरके बीचोंबीच)

इस विवरणसे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहाँ कुंडलिनीयोग-पद्धतिके कुछ सिद्ध महापुरुषोंकी साधन-परम्परामें द्वादशचक्र-भेदनकी रीति भी विद्यमान थी। इस चक्रमें सहस्रार चक्रपर सोहं-हंसः लिखा है और बलवा चक्रपर त्रिकोणके दोनों ओर हंसः। सोऽहं अजपा जापका निर्देश तो प्राप्त होता है किन्तु हंसःका निर्देश केवल इस द्वादशचक्रके विवरणमें ही मिलता है। हठ योगके साधकोंको इसका भी अध्ययन करना चाहिए। इस पद्धतिमें चक्रोंके स्थानमें भी भिन्नता है। इसका पाठ शुद्ध नहीं है फिर भी ज्योंका त्यों यथासंभव सुधारके साथ दिया जा रहा है।

॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः॥



ॐ द्वादशं अमरस्थानं शिरःस्थानं नं पीतवर्णं सूर्यकोटि-प्रभृतिसंकाशं तेजस्विनी दोनभा शिवो देवता मूलमाया शक्तिः परमात्मा ऋषिः लयावस्था उन्मनी स्थितिः तादात्म्यकं शून्यमुद्रा मूलमाया प्रकृतिः देह वामन गोचर निश्चयं च निःसंशयं निस्तरङ्ग

निर्लेप लयक्षय ३ समाधिपरब्रह्मस्थानं महासनं जपेत्।

ध्यानम्

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिते तालमूले ललाटे।
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के।।

वासाते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे सुराणाम्।
हंसः तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि।।

ॐ ब्रह्मरन्ध्रदेह सुषुम्णावस्था योगात्मकं ब्रह्मरन्ध्रदेवेति अग्नि-चक्रे मकारो भवति।

ॐ ब्रह्मरन्ध्रदेह सुषुम्णा अवस्था ऊर्ध्वाम्नियोगात्मा।।

ॐ एकादशं सहस्रदलचक्रं मूर्ध्निस्थानं गुरुः देवता चैतन्यशक्तिः विराड् ऋषिः सर्वोत्कृष्टसम्पत्तिः तुरीयातीत चैतन्यात्मक सुवर्णसर्वमात्रा सर्वदा देहस्थितिः अवस्था प्रज्ञा वाचा सोऽहं वेद अनुपमस्थानं अजपाजापैकसहस्रम् घ. १० प. ६०।

एकविंशतिसहस्राणि षट्शतानि तथैव च।
निशाहे वहते प्राणः सर्वकालं हि विश्यति।।

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशत्युतः।
साक्षी भूताक्षयोर्वैराट् हंसहंसेति (जीवो जपति) सर्वदा।।
नित्यशः पाठः।

सोऽहं। हंसः

ॐ दशमे पूर्णगिरिपाटे ललाटमण्डले चन्द्रो देवता अमृता शक्तिः परमात्मा ऋषिः द्वाविंशद्दलानि अमृतवासिनीकला अम्बिका लम्बिका चम्बिका नालिका देहस्वरूपं काकमुखं नरनेत्रं गोश्रृङ्गं ललाटब्रह्मपुरं हयग्रीवं मयूरपुच्छं हंसवत् पादातिष्ठानं वारे।

वामभागे इडा प्रोक्ता दक्षिणे पिङ्गला स्मृता।
सूक्ष्मतेजोमयोना ॐ सुषुम्णा मध्यमा स्मृता।

यस्योमिति इदं विश्वं स्तोत्रं च पठतं स्तुवन्।
योगिभिस्तु प्रयत्नेन विज्ञेया देहवर्त्तिनी।।

तां न जानन्ति ये मूढाः वृथा ते भारवाहकाः।
तस्मादिदं सुचक्रं च ध्येयं च विज्ञवित्तमैः।।

ॐ नवमे स्थाने आज्ञा चक्रं भ्रुवोः स्थानं रक्तवर्णं अग्निर्देवता सुषुम्णा शक्तिः हंस ऋषि चैतन्य वाहनं ज्ञानदेहो विज्ञानावस्था अनुपमा वाचा सुषुम्णाभेदश्चैतन्यशून्यं द्विदलं १ द्विमात्रा १ हं बहिर्मात्रास्थितिः प्रभानि २ अजपाजापैकसहस्रम् १००० घ. २० पलानि ४६, अक्षरं ४० प्रसादलिङ्गम् अर्धे मात्रे आकाशे तत्तेज हंस ४ पूजा मानसिकी प्रोक्ता सोऽहं भावेन पूजयेत्। अत्र गन्धादि समर्पयेत्।



ॐ अष्टमस्थानं बलवाचक्रं नासिकास्थानं ॐकारो देवता सुषुम्णा शक्तिः त्रिवर्णरु त्रिदलरु त्रिमात्रारु अकार उकार मकार सत्त्वरजस्तमः ब्रह्मा विष्णु रुद्रा ४थी अवस्था जीवायुः आकाशं प्राणापानसमानोदानव्यानः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धः ५ नागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जयः।

हं । क्षः

ॐमनोबुद्धिचित्ताहङ्कारः अन्तःकरणं इडा पिङ्गला २ सुषुम्णा।

ॐसप्तमं विशुद्धचक्रं कण्ठस्थानं धूम्रवर्णं जीवो देवता अविद्या शक्तिः विराड् ऋषिः वायुवाहनः उदानवायुः जालाकालज्वालोऽग्निर्महाकारणदेहं तुर्यावस्था परा वाणी अथर्वणवेद षङ्धासु लिङ्गे समिता भूमिका सुलोकता मोक्ष षोडशदल १६ षोडशमात्रा १६ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ अं अः १६ इति अन्तर्मात्रा अथ बहिर्मात्रा १६ विद्या १. अविद्या, २. इच्छा, ३. ज्ञान, ४. क्रिया-शक्ति, ५. शीतला, ६. महाविद्या, ७. महामाया, ८. बुद्धिः, ९. तामसी, १०. मैत्रा, ११. मैत्रायणी, १२. कुमारी, १३. रौद्रा, १४. पूषा, १५. सिंहिनी, १६. अजपाजापैकसहस्रम १००० घ. २० प. ५६ अक्षर ४ पूजा मानसिकी प्रोक्ता सोऽहंभावेन पूजयेत्। अत्र गन्धादि समर्पयेत्।

ॐविशुद्धकारं चक्रं च कण्ठस्थाने प्रतिष्ठितम्।
धूम्रवर्णं रजोयुक्तं कलाषोडशभिर्युतम्।।

विद्याविद्ये तथेच्छा च क्रियाज्ञाने च शीतला।
महाविद्या महामाया बुद्धिः स्यात्तामसी तथा।।

मैत्रा मैत्रायणी प्रोक्ता कुमारी रौद्रिका परा।
पोषिणी सिंहिनी प्रोक्ताः कलाः षोडश योगिभिः।।

ॐषष्ठं अनाहतं चक्रं हृत्स्थानं श्वेतवर्णं तमोगुणं मकाररुद्रो देवता उमा शक्ति हिरण्यगर्भ ऋषिः नंदीवाहनं प्राणवायुः ज्योतिः कलाकारदेह सुषुम्णावस्था पश्यती वाक् सामवेदं अहमस्मीत्यग्निः शिवलिंगप्राप्ता भूमिका सायुज्यता मोक्ष द्वादशकला १२ अन्तर्मात्रा १२ कामित्याद्यर्धं इत्येते बहिर्मात्रा १२ रुद्राणी (१) तेजसा (२) तापिनी (३) सुखदा (४) चैतन्या (५) शिवा (६) शान्तिः (७) उमा (८) गौरी (९) मातरः (१०) ज्वाला (११) प्रज्वालिनी (१२) देवता। अजपाजाप्य षट् सहस्त्रं ६००० घ. १६ पलं १४।

षष्ठं त्वनाहतं चक्रं श्वेतवर्णं हृदि स्थितम्।
तस्य तत्स्मरणेनापि नरो मुच्येत पातकात्।।

अनाहतं महाचक्रं सर्वशक्तिसमन्वितम्।
मनसा धारयेच्छीमान् महापापस्य नाशकम्।।

तस्माच्चक्रमिदं ज्ञेयं ध्येयं च यत्नतत्त्वतः।
पूजा मानसिकी प्रोक्ता सोऽहंभावेन पूजयेत्।।



अत्र गन्धादि समर्पयेत्।
ॐ पञ्चमं मनश्चक्रं मनो देवता बुद्धि शक्तिः आत्मा ऋषिः॥

ॐ नाभिमध्ये स्थितं पद्मं नालं तस्य दशाङ्गुलम्।
कोमलं तस्य तन्नालं निर्मलं चाप्यधोमुखम्॥

कदलीपुष्पसंकाशं तन्मध्ये च प्रतिष्ठितम्।
पूर्वे दले श्वेतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः॥

तदा तु तस्य सिद्धस्य धर्मकीर्त्तिर्मतिर्भवेत् ॥ 1 ॥

अग्निदले रक्तवर्णे यदा विश्राम्यते मनः।
तदा सिद्धस्य क्रोधमात्सर्यमतिर्भवेत् ॥ 2 ॥

दक्षिणदले कृष्णवर्णे यदा विश्राम्यते मनः।
तदा तु तस्य सिद्धस्य क्रोधमात्ममतिर्भवेत् ॥ 3 ॥

नैर्ऋत्यदले नीलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः।
तदा तु तस्य सिद्धस्य ममताधितिर्भवेत् ॥ 4 ॥

मे स्वर्गा मे वित्तं मे धारा।
पंचमदले कपिलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः॥

तदासिद्धसुं विश्रान्तानन्तोत्साहमतिर्भवेत् ॥ 5॥

वायव्यदले श्यामवर्णे यदा विश्राम्यते नमः।
तदा सिद्धस्य मनसि उच्चाटनमतिर्भवेत्॥ 6॥

उत्तरदले पीतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः।
तदा सिद्धस्य मनसि कामहास्यामतिर्भवेत्॥ 7॥

ईशानदले गौरवर्णे यदा विश्राम्यते मनः।
तदा क्षमाक्रियाज्ञानजिज्ञासान्मतिर्भवेत्॥ 8॥

संधि संधि त्रिदोषः वात-पित्त-कफमध्ये स्थितिः॥ 9 ॥

ॐचतुर्थ मणिपूरकं चक्रं नाभिस्थानं कपिलवर्णं उकार सत्त्वगुणं विष्णुः देवता लक्ष्मी शक्तिः गरुडवाहनं प्रजापति ऋषिः समान वायुः लिंग देह सुषुम्णावस्था मध्यमा वाक् यजुर्वेदः दक्षिणाग्निः आगता भूमिका स्वरूपता मोक्ष दशदल १० दशमात्रा १० शान्तिः १ क्षमा २ मेधा ३ तीव्रा ४ दया ५ धिष्णा ६ पुष्करा ७ हंसगामिनी ८ तन्मया ९ लक्ष्मी १०।

तन्तुना मणिवत्प्रोतो पत्रच्छन्दसुषुम्णया।
तत्रापि मंडलं चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम्॥

अमृता देवता १० अजपाजप षट्सहस्त्रं ६००० घ. १६ पल १४ अ. १।



पूजा मानसिकी प्रोक्ता सोऽहंभावेन पूजयेत्।
अत्र गन्धादि समर्पयेत्।।

ॐ तृतीयं कुंडलिनीचक्रं सिन्दूरवर्णं सर्पाकारं अधोमुखं अग्निर्देवता ॐहरिणी शक्तिः ब्रह्मा ऋषिः कूर्मकधूम्रला उद्यानबंधूक कामरूपमंडला कामाख्या देवी मलयाग्निः जठराग्निः गर्भवासस्थानं कामरूपनिवासिनी योगिनी मोक्षदायिनी जठराग्नि-प्रवेशनाभिस्थानं कुण्डलिनी शक्तिः रक्तवर्णा अधोमुखी धूमजगन्माता योगिना चाभ्यसेत्।

ॐद्वितीयं स्वाधिष्ठानचक्रं लिंगस्थानं पीतवर्णं रजोगुणं अकार ब्रह्मा देवता सावित्री शक्तिः वरुण ऋषिः कामाग्नि उज्जयिनी धारणा स्थूल देह जाग्रदवस्था वैखरी वाक् ऋग्वेद आचार्य लिंगगता भूमिका सायुज्यता मोक्ष हंसवाहन षण्मात्रा ६ क्षमा १ कामाख्या २ तेजस्विनी ३ उल्लासा ४ वेष्टिता ५ मिथुनी ६ देवता अजपाजाप्य षट्सहस्त्रं ६००० घ. १६ प. ४० अ. ४०

पूजा मानसिकी प्रोक्ता सोऽहंभावेन पूजयेत्।
स्वाधिष्ठानं द्वितीयं तु लिङ्गस्थाने ह्यधिष्ठितम्।।
पीतवर्णं रजोयुक्तं अकारेण समन्वितम्।
स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयात्।।
अस्मान्मेढ्र मेवाभिधीयते।।

ॐ प्रथमं आधारचक्रं गुदस्थानं रक्तवर्णं गणेशो देवता सिद्धिः बुद्धिः शक्तिः मूषकवाहनः अपानवायुः उत्सकला अंकोचर मुद्रा मूलबंधः चतुर्दल ४ चतुर्मात्रा ४ वं शं षं सं अंतर्मात्रा ४ बहिर्मात्रा ४ आनन्द १ योगानन्द २ चिदानन्द ३ श्रीपरमानन्द ४। अजपाजाप्य षट्शतसहस्त्र ६०००० घ. २० प. ४० अ. ४०।

पूजा मानसिकी प्रोक्ता सोऽहंभावेन पूजयेत्।
अत्र गन्धादि समर्पयेत्।

ॐ सप्तद्वीपवती पृथ्वी नवखंडा तथोच्यते। अहंकार उकारकं अहं तत्त्वहेतुर्विराट् शेष प्रकृति देह सहज अधिमात्रा १०।

द्वीप	अतल पाताले१
जंबूद्वीपः १	गोविन्दिगणः उच्चभालश्रृंगः१
प्लक्षद्वीपः २	गर्दभभालश्रृंगः २
कुशद्वीपः ३	महिष्यश्रृंगः ३
क्रौञ्चद्वीपः ४	माल्यवन्तश्रृंगः ४
शाकद्वीपः ५	वैडूर्यश्रृंगः ५
शाल्मलीद्वीपः ६	विलसश्रृंगः ६



पुष्करद्वीप: ७ पुंडरीकश्रृंग: ७

महापुंडरीक श्रृंग: ८

वितल पाताल: २ वराह:

सुतल पाताल: ३ शेष:

शेष प्रमाणं सहस्त्रकोटि: १००००००००००

अर्धकोटि नेत्रं

पाताल पाताल: ४ इच्छाशक्ति:

महातल पाताल: ५ मायाशक्ति:

रसातल पाताल: ६ कालाग्निरुद्रा:

तलातल पाताल: ७ कूर्म:

अय कूर्मविस्तरं मुखकोटि: १००००००००

मद्रक:

ॐ मत्स्यप्रमाणं पृष्ठ कोटि: ५०००००० नेत्र १८ नासा चारु कोटि पादद्वयं द्वयं दशयोजन कोटि सप्तपातालाश्रयी पृथ्वी १९ सहस्त्रविस्तार ऊर्ध्वगता: सुवामेरुरष्टश्रृंग: तस्याननाम अष्टश्रृंग: निलिखने नवखंडमयी पृथ्वी विस्तार ४६००००००० भारतखंड, १०००००० योजनं किन्नर खंड: ९०००० योजन २ यलदं खंड: ९००००० योजन ३ रसि खंड: ९००००० योजनं ४ धर्महिरण्यखंड:, ९००००० योजनं ५ ब्राह्मण वर्ण राजा १८ कुरु खंड: ९००००० योजनं ६ लोक युग ४ भारद्वाज खंड: ९०००००, योजन ७ लोक ३ वर्ण कौतुमाल खंड: ९००००० योजन ८ संध्या ३ वेद ४ विन्ध्याचल पर्वत २००००० योजनं मलयाचल पर्वत २००००० योजनं विखंडाचल पर्वत २००००० योजनं अस्ताचल पर्वत २००००० योजनं द्रोणाचल पर्वत २००००० योजनं नम: विशुद्धचक्रं प्रति चतुर्दलचक्रं तावत् एकविंशति स्वर्गा: २१ विश्वकर्मालोक: २१ देवलोक: २० स्वर्गलोक: १९ पिप्यलोक: १८, दिव्यलोक: १७ सत्यलोक: १६ महर्लोक: १५ तपोलोक: १४, पितृलोक: १३ गंधर्वलोक: १२ धर्मराजलोक: ११ चित्ररथलोक: १० काललोक: ९ राक्षसलोक: ८ ब्रह्मराक्षसलोक: ७ चित्रलोक:६ यक्षलोक: ५ यमलोक: ४ अन्तरिक्षलोक: ३ भूतस्वर्गलोक: २ प्रथमं वासुक्यलोक: १ एकविंशत्ति स्वर्गाणि २१।

विशेष कुण्डलिनी योग

तेल मालकंगनी (६० तोला) पाताल यंत्रसे निकालकर किसी दुधवा घीसे चिकनी हुई हाँडी में डाले। फिर (१६० तोला) गो घृत (६० तोला), तिलका तेल (१६० तोला) तथा मधु डालकर हाँडीका मुख बंद करके कपड़ मिट्टी कर दे। मिट्टीके साथ नमक तथा घोड़ेकी लीदकी पतली लेप दे देना। (हाँडीके गलेका हिस्सा छोड़ देना, वहाँ केवल आटाही लगाना) कपड़ा चौड़ा हो सुखाकर तरेड़ देखकर ठीक कर देना। आग पर रखना। फिर हाँड़ीको चूल्हेपर रखकर (२२ घं.) एक लाटकी आँच देना। फिर ठंढाकर बोतलमें भर लेना।



प्रयोग शीत ऋतुमें करना। दिन, तिथि मुहूर्त देख लेना।

प्रात:काल पद्मासनसे बैठकर ही औषध खाना। दोनों हाथ गोड़ों पर रखना, एवं सीधे रखना। छह माह तक निरंतर औषधि खाना।

पहला प्रयोग ४८ दिनका है।

१।। तोला दवामें २ तोला शहद मिलाकर खानेसे ४८ दिनमें हृदयका कमल सीधाहो जाता है। तब ऐसा वायु उत्तेजित होता है। शरीरमें कम्पन होता है। भीतर रुई धुननेका सा शब्द सुन पड़ता है। मृत्युका भय भी प्रतीत होता है। दु:स्वप्न आते हैं। किन्तु निर्भय रहे। अच्छा स्वप्न आवे तो समझना सिद्धि निकट है। ३-६ वा १६ घंटे तक अचल अभ्यास करे। थकै तो सो जावे। शांति मिले तब फिर उठे। ३ घंटे बैठकर फिर प्रयोग करे तथा फिर सो जावे। वैदिक मंत्रोंका ॐ का अर्थ बिचारे तथा प्रणवका जप करे। नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रक्खे। श्वास को देखे। वह स्थिर हो तो ॐ ॐ का जप करे। जितना जोरसे ॐ का जप हो उतनी जल्दी सिद्धि मिले। जपते जपते कपाल थक जावै तो हृदय के द्वादश दल कमल में जो स्वर्ण– हैं उनमें १२ अक्षरोंका ध्यान करे। हृदयमें सूर्य रुप ज्योतिका ध्यान करे। फिर ॐ का जप करै। थक जावै तो सो जावै।

दूसरा प्रयोग ५० दिनका है। १।। तोला दवामें १० तोला गौ का घृत मिलाकर नित्य खावै तो स्वर्ग एवं सौर मंडलके ग्रहोंके स्थान की घटनाका ज्ञान हो। भूत-भविष्य-वर्तमानका ज्ञान आसन पर ही होने लगे। अष्ट सिद्धियोंके चमत्कार स्वप्नमें दिखलाई देने एवं साधक आधा सिद्ध बन जाता है। किन्तु किसी से कुछ कहै नहीं।

तीसरा प्रयोग २१ दिन का है। १।। तोला दवा ५ तोला घीके साथ मिलाकर खाना तो काल एवं आयु के तत्व का ज्ञान हो।

चौथा प्रयोग २१ दिन का है। १।। तोला दवामें १ तोला सरसोंका तेल मिलाकर खावै तो सब शास्त्रोंको बोध हो। सरसों का तेल अधिक भी कर सकते हैं। ऐसे सरसोंके तेलका प्रयोग ३ वा ४ बार करना तो ब्रह्माण्ड भर का ज्ञान होकर कुण्डलिनी जाग जाती है।

दूध में घी डालकर खावै। न रहा जावै तो हल्का भोजनकर लेवै। दूधमें चीनी डालकर पीवै। कब्जका डर हो तो दूधमें बादाम का तेल डालकर पीवै। और कुछभी नहीं खावै।

२५ वर्ष से लेकर ६० वर्ष तकका पुरुष ही यह प्रयोग कर सकता है। रोगी या विषयी मनुष्य यह प्रयोग नहीं करे। अन्यथा मृत्यु हो जाती है।





२५



तन्त्राचार



तन्त्र-विज्ञानमें आचारका सबसे बड़ा महत्व है क्योंकि आचारके अनुसार ही तन्त्रकी विविध पद्धतियोंकी अलग अलग साधना होती है। नीचे समस्त तान्त्रिक आचारोंका विस्तृत परिचय दिया जा रहा है।

पश्वाचार

वेदोक्तेन यजेद्देवीं कामसंकल्पपूर्वकम्।
स एव वैदिकाचारः पश्वाचारः स उच्यते॥

(आचारभेदतन्त्र)

कामना और संकल्पपूर्वक वेदोक्त विधानसे जो देवीकी पूजा की जाती है, वही वैदिकाचार है। इसी वैदिकाचारको पश्वाचार भी कहते हैं। दिव्य, वीर और पशु इन तीन भावोंमें साधना की जाती है। किन्तु कलिकालमें दिव्य और वीराचार विहित नहीं है अर्थात् कोई भी साधक वीरभावमें साधना न करे। कलिमें केवल पश्वाचार ही प्रशस्त है। सभी साधकोंको पशुभावमें पूजा करनी चाहिए। इसी पशुभावसे साधकको मन्त्र-सिद्धि होगी।

दिव्यवीरमयो भावः कलौ नास्ति कदाचन।
केवलं पशुभावेन मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥

(महानिर्वाणतन्त्र)

निम्नलिखित नियमोंका पालन करनेको पश्वाचार कहते हैं— नित्यस्नान, नित्यदान, त्रिसन्ध्या, जप और पूजा, निर्मल वस्त्रपरिधान, वेदशास्त्रका दृढ ज्ञान, गुरु और देवतामें भक्ति, मन्त्रमें दृढ विश्वास, पितृ और देवपूजा, बलि, श्राद्ध और नित्य कर्म, शत्रु और मित्रका समदर्शन, गुरुके अतिरिक्त दूसरेका अन्न परित्याग, कदर्य और निष्ठुर कार्यका परिवर्जन। देवनिन्दकसे भेंट हो जानेपर उससे बातचीत नहीं करनी चाहिए। झूठ कभी भी नहीं बोलना चाहिए। जो इस प्रकारके आचरण करते हैं उन्हें पश्वाचारी कहते हैं।

पशुभावमें शक्तिसाधनकारी पश्वाचारी और दूसरे वीराचारी कहलाते हैं।

पशुभाव और पश्वाचारसे वीरभाव तथा वीराचारका यह प्रभेद है कि वीरभाव और वीराचारमें मद्य-मांसका व्यवहार होता है, पशुभाव और पश्वाचारमें वह भाव निषिद्ध है।

कुलार्णव तन्त्रमें इन दो प्रधान आचारोंका विभाग करके उन्हें सात प्रकारोंमें निष्पन्न किया गया है। वेदाचार सर्वापेक्षा उत्तम, वेदाचारकी अपेक्षा वैष्णवाचार उत्तम वैष्णवाचारकी अपेक्षा शैवाचार उत्तम शैवाचारसे दक्षिणाचार उत्तम, दक्षिणाचारसे सिद्धान्ताचार और भी उत्तम, सिद्धान्ताचारसे कौलाचार श्रेष्ठ और कौलाचारसे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। (कुलार्णव पञ्चम खण्ड)

ये सब आचार किस प्रकारके हैं उनका विवरण तन्त्रमें विशद्ररूप से लिखा मिलता है।

वैष्णवाचारः



वेदाचारके व्यवस्थानुसार सर्वदा निम्नलिखित कार्य करनेमें तत्पर रहे- मैथुन और तत्संक्रान्त कथाकी कल्पना कभी न करे। हिंसा, निन्दा, कुटिलता, मांसभोजन, रात्रिमें माला और यन्त्र-स्पर्श आदि कार्य सर्वतोभावसे वर्जनीय हैं। (नित्यतन्त्र १ पटल)

शैवाचार

वेदाचारके नियमानुसार ही शैव और शाक्ताचार की व्यवस्थाकी गई है। शाक्तकी विशेषता यह है कि उसमें पशु-हत्याका विधान है। (नित्यतन्त्र १ पटल)

दक्षिणाचार

वेदाचारके नियमानुसार भगवतीकी पूजा और रात्रियोंमें विजया ग्रहण करके तद्गत चित्तसे मन्त्रका जप करे। (नित्यातन्त्र १ पटल)

वामाचार

कुलस्त्रीकी पूजा के साथ इसमें मद्य-मांसादि पञ्चतत्त्व और खपुष्पका व्यवहार करना होता है इसीको वामाचार कहते हैं। इसमें वामास्वरूपा होकर परमशक्तिकी पूजा करनी होती है।

(आचारभेदतन्त्र)

सिद्धान्ताचार

शुद्ध या अशुद्ध, सभी द्रव्य शोधन-द्वारा विशुद्ध होते हैं, सिद्धान्ताचारका यही लक्षण है। समयाचार-तन्त्रके द्वितीय पटलमें लिखा है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन देवपूजामें अनुरक्त रहकर तथा दिवाभागमें विष्णुपरायण होकर रात्रिकालमें साध्यानुसार और भक्तिपूर्वक यथाविधि मद्यादिका दान तथा सेवन करता है, उस सिद्धान्ताचारीको सभी फल प्राप्त होते हैं। (समयाचारतन्त्र २ पटल)

कौलाचार

यथार्थमें कौलाचारका कोई नियम नहीं है। इसमें स्थानास्थान, कालाकाल और कर्माकमका कुछ विचार नहीं करना होता। महामन्त्रसाधनमें दिक् और कालका नियम नहीं है।

कहीं शिष्ट, कहीं भ्रष्ट और कहीं भूत-पिशाच-तुल्य नानावेशधारी कौलसमुदाय पृथ्वीपर विचरण करते हैं। कर्दम और चन्दनमें, मित्र (पुत्र) और शत्रुमें, श्मशान और गृहमें तथा काञ्चन और तृणमें जिसको भेद-ज्ञान नहीं है वही व्यक्ति कौल कहलाता है।

श्यामारहस्यमें लिखा है कि जो भीतरसे शाक्त, बाहरसे शैव और मध्यभागसे वैष्णव है वैसे नाना वेशधारी योगी कौल कहलाते हैं।

अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधरा कौलाः विचरन्ति महीतले॥

वीराचार और पश्वाचारमें मद्यमांसादिका व्यवहार निषिद्ध रहनेपर भी दोनों आचारोंमें ही पशु बलिका विधान है। पशुबलिदान तन्त्रोक्त शक्ति-उपासनाका एक प्रधान अंग है। तदनुसार गो, व्याघ्र, मनुष्य-प्रभृति कोई भी जीव पशुबलिके अयोग्य नहीं है।

तन्त्रादिमें सात प्रकारके आचारोंका लक्षण और व्यवस्था निरूपित होनेपर भी शास्त्रोंमें प्रधानतः दो ही सम्प्रदाय देखनेमें आते हैं, दक्षिणाचारी और वामाचारी। जो प्रकाश्य भावमें वेदाचारके नियमानुसार भगवतीकी अर्चना करते और वामाचारियोंके अनुष्ठेय मद्यव्यवहार और शक्तिसाधन आदि नहीं करते



वे ही साधारणतः दक्षिणाचारी नामसे प्रसिद्ध हैं। वे लोग सुरापान तो नहीं करते, पर पश्वाचारके नियमानुयायी इच्छाक्रमसे थोड़ा बहुत बलिदान अवश्य देते हैं। काशीनाथ-प्रणीत दक्षिणाचारतन्त्रराजमें इनके कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विशेष विवरण लिखा है।

मद्यादि दान और सेवन वामाचारियोंका आवश्यक कर्त्तव्य है। जो साधक इसका उल्लंघन करते हैं उनको किसी प्रकार सिद्धि नहीं मिलती। श्यामारहस्यमें लिखा है— मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इस पञ्च-मकारसे महापातक विनष्ट होता है। दिवाकालमें इसका व्यवहार करनेसे पीछे हास्यास्पद होना पड़ता है, इस कारण रात्रिकालमें ही इसका अनुष्ठान बतलाया गया है।

निरुत्तरतन्त्रके प्रथम पटलमें लिखा है कि साधक रातको कुलक्रिया और दिनको वैदिक क्रिया करे। इसी प्रकार भिन्न भिन्न योगोंकी साधना करके योगी व्यक्ति दिन-रात देवीकी अर्चना करे। (निरुत्तरतन्त्र १ पटल)

पूजा दो प्रकारकी होती है— बाह्यपूजा और अन्तर्याग। गन्ध, पुष्प, भक्ष्य और पानीय-प्रदानादि-द्वारा जो पूजा की जाती है, उसका नाम बाह्यपूजा और चित्तरूप पुष्प, प्राणरूप धूप, तेजोरूप दीप, वायुरूप चामर आदि कल्पित उपचारादिके द्वारा जो'आन्तरिक साधन किया जाता है उसका नाम अन्तर्याग है। षट्चक्रभेद इस अन्तर्यागका प्रधान अङ्ग है।

ऐसा लिखा है कि साधक अपने गुरुके उपदेशानुसार शरीरस्थ वायुके योगसे अग्निकी गति-द्वारा कुण्डलिनी-शक्तिको उत्तेजित करे। पीछे हं बीजमन्त्रका उच्चारण करके उन्हें चेतन करे और चित्रिणी नाडी अध्यगत पथसे होकर मूलाधारसे आज्ञापर्यन्त छह पद्मोंको तथा मूलाधार, अनहत और आज्ञा इन तीन पद्मोंमें अवस्थित तीन शिवोंको भेद कर डालें। अनन्तर कुण्डलिनीको सहस्रदल कमलपर स्थापन करके तन्त्रस्थित परमशिवके साथ संयुक्त करे। इसके पश्चात् दोनोंके संयोगसे उत्पन्न परमामृत पान करके पूर्वोक्त कुलपद्मसे होकर कुण्डलिनी-को मूलाधार पद्ममें ला पहुँचावे। इस प्रकार अन्तर्याग-साधनमें प्रवृत्त जो सब वीराचारी व्यक्ति मद्य-मांसादि-द्वारा भगवतीकी उपासना करते हैं, तन्त्र मतसे वे ही उनके प्रिय साधक हैं। (कुलार्णव)

वीराचारी लोग बीच बीचमें चक्र करके देवीकी साधना करते हैं। श्रीचक्रका विवरण यह है— साधक चक्राकारमें श्रेणीक्रमसे अपनी अपनी शक्तिके अनुसार ललाटपर चन्दन लगा क्रमसे भैरव-भैरवीके भावमें उपवेशन करें तथा मध्य-स्थित किसी स्त्रीको साक्षात् काली समझकर मद्य-मांसादि-द्वारा उसकी अर्चना करे। कैसी स्त्रीका इस प्रकार पूजन करना होता है, उसकी विधि गुप्त साधनमें इस प्रकार लिखी है-''नटस्त्री, कापाली, वेश्या, रजकी, नापितकी भार्या, ब्रह्माणी, शूद्रकन्या, गोपकन्या और मालाकारकी कन्या, ये नौ प्रकारकी स्त्रियाँ कुलकन्याएँ हैं। निरुत्तर तन्त्रके मतसे ये सब शब्द वर्णबोधक नहीं हैं, उसके विशेष विशेष कार्यानुष्ठानके गुणज्ञापक हैं। विशेषतः परपुरुष-गामिनी विदग्धा होनेपर सभी स्त्रीयाँ कुलस्त्री ही होती हैं। रूपवती, युवती, सुशीला और भाग्यवती स्त्रियोंकी यदि यत्नपूर्वक पूजा की जाय तो अवश्य सिद्धिलाभ होता है, इसमें सन्देह नहीं।''



उक्त चक्रपर पुरुष ही इन समस्त कुलस्त्रियोंके पति हैं, कुलधर्मसे विवाहित पति पति नहीं हैं। पूजाकालके अतिरिक्त अन्य समयमें कभी भी परपुरुषको चित्तमें न लावे, पूजाकालमें वेश्याकी तरह सबोंसे परितुष्ट रहे। (उत्तरतन्त्र) निरुत्तरतन्त्रमें दूसरे स्थानपर इस प्रकार लिखा है— आगमोक्त पति

शिवस्वरूप हैं, वे ही गुरु हैं। वे ही पति कुलस्त्रियोंके प्रकृत पति हैं। विवाहित पति पति नहीं हैं। कुलपूजासे विवाहित पतिका त्याग करनेसे दोष नहीं होता। केवल वेदोक्त कार्यमें विवाहित पतिका त्याग निषिद्ध बतलाया है।

साक्षात् कालीरूपा उक्त कुलनारीकी पूजा करके मद्यशोधनादिपूर्वक पान करना होता है। ललाटमें सिन्दूर-चिह्न और हाथमें मदिरा-पात्र-धारणपूर्वक गुरु और देवताका ध्यान करके पान करनेकी विधि है। (प्राणतोषिणी) हाथमें सुरापात्र लेकर तद्‌गतचित्तसे इस प्रकार वन्दना करनी होती है—

श्रीमद्‌भैरवशेखर प्रविलसच्चन्द्रामृतप्लावितं।
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीसुरगणैः सिद्धैः समाराधितम्।
आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षात् त्रिखण्डामृतं।
वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजगतं प्राप्तं विशुद्धिप्रदम्।।

(श्यामारहस्य)

इस प्रकार विशेष विशेष मन्त्र-द्वारा पाँच बार पात्रकी वन्दना करके पाँच पात्र ग्रहण करें। पीछे जबतक इन्द्रियाँ (दृष्टि और मन) चञ्चल न हो जायँ, तबतक पान करते रहें। इसके पश्चात् पान करनेसे पशुपान किया जाता है, ऐसा जानना चाहिए। चक्रादिके कल्याण और तदीय विपक्षियोंके विनाशके उद्देश्यसे शान्तिस्तोत्रका पाठ करके अन्यान्य कुलकायका अनुष्ठान करे। कुलभैरव-स्वरूप साधक मद्यपान करके स्तव पाठ करें और कुलस्त्री संसर्गमें प्रवृत्त होकर कुलकायका अनुष्ठान विधेय है। इसके अनन्तर आनन्दोल्लासका आरम्भ होता है। (इस व्यापारका सविशेष वर्णन अत्यन्त अश्लील है। इसकी व्यवस्था कुलार्णवके पञ्चमुख खण्डमें लिखी है।)

मनुष्यका मन कितना भी विकृत क्यों न हो, तो भी मनुष्यके सामने वैसा काम करनेमें लज्जा आती है। प्राणतोषिणी तन्त्रमें लिखा है कि चक्रके मध्य मदिरामुग्ध व्यक्तियोंको देखकर हास्य और निन्दा न करे और न उस चक्रकी वार्त्ता ही प्रकट करे, न उनके समीप भोजन करे, अहित आचरणसे विरत रहें, भक्तिपूर्वक उनकी रक्षा करे और यत्नपूर्वक छिपाये रक्खे।

तन्त्रमें लतासाधनादि और भी अधिक लज्जाकर और घृणाकर व्यापारका उल्लेख है। इसी कारण उसका वर्णन नहीं दिया गया क्योंकि कलियुगमें उसका प्रयोग वर्जित है। सामान्यतः लता साधनमें एक स्त्रीको भगवती मानकर मद्यपानादिके साथ उसकी साधना करनी होती है। इसमें उसके शरीरके गुह्यागुह्य नाना स्थानोंमें मन्त्र जप एवं अपने और उसके अंगविशेषकी पूजा-वन्दनादि-पुरःसर स्त्री-पुरुष घटित व्यापारके अनुष्ठानकी पराकाष्ठा प्रदर्शित हुई है। तन्त्रविहित सुरापान और परस्त्री-गमन आदिकी भाँति मारण, मोहन, उच्चाटन प्रभृति, नरहत्या और पर-पीडा भी शास्त्रीय क्रियाके विरुद्ध गिनी जाती है।

ऊपर जो नाना प्रकारके साधकोंकी कथा लिखी गई है वह पश्वाचारों और वीराचारों दोनों सम्प्रदायोंके मतसे सिद्ध है। किन्तु शवसाधन ही वीराचारियोंका प्रधान साधन है।

(शवसाधन देखिए)



किन्तु यह पश्वाचार अत्यन्त निन्दित और निषिद्ध है इसलिये इस पश्वाचार का प्रयोग नही करना चाहिए।

वीराचार

यह एक वाममार्ग या शैव पन्थ है जिसमें अपने इष्ट देवताओंकी वीरभावसे उपासना की जाती है उसमें मद्यको शक्ति और मांसको शिवस्वरूप माना जाता है और इन दोनोंके भक्तोंको भैरव समझा जाता है। इसमें चक्रमें बैठकर पूजा की जाती है और बीच बीचमें किसी स्त्रीको काली मानकर उसपर मद्य-मांस आदि चढ़ाया जाता है। इसमें प्राय: शव लाकर उसकी पूजा की जाती है और उसी-से अनेक प्रकारके साधन किए जाते और पूजन किया जाता है।

वामाचार

इसमें पञ्चतत्त्व (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन) या पञ्च मकार और खपुष्प (रजस्वला स्त्रीके रज)-द्वारा कुलस्त्रीकी पूजा तथा वामा होकर पराशक्तिकी पूजा की जाती है। इसीसे वामाचार होता है। जो वामाचारी हों, वे इसी विधानसे कार्यादि करें। किन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें लिखा है कि जो लोग इस आचारके अनुसार चलेंगे, उन्हें नरक प्राप्त होगा।

चारों वेदोंमें पशुभाव प्रतिष्ठित है अर्थात् वेद-विहित आचार या वैदिक-आचार ही तान्त्रिक मतसे पश्वाचार है तथा वामादि जो तीन आचार हैं वे दिव्य और वीरभावमें प्रतिष्ठित हैं अर्थात् वामादि जो आचार हैं वे दिव्य और वीराचार हैं। आचारमें वेदाचार श्रेष्ठ है। वेदाचारसे वैष्णवाचार तथा वैष्णवाचारसे शैवाचार, शैवसे दक्षिणाचार, दक्षिणसे वामाचार, वामसे सिद्धान्ताचार और सिद्धान्तसे कौलाचार श्रेष्ठ है।

वामाचारके मतसे मद्यादि-द्वारा देवीकी अर्चना करनी तो होती है पर यह किसीके लिये उचित नहीं है क्योंकि यह व्यवहार असामाजिक, अनैतिक और घृणित होता है। ब्राह्मण वामाचारी होकर भी देवीको न तो मद्यमांस चढ़ावें और न स्वयं सेवन करें।

कुलस्त्रीकी पूजा, मद्य मांसादि पञ्चतत्त्व और खपुष्पका व्यवहार वामाचारके प्रधान लक्षण हैं।

पञ्चतत्त्वं खपुष्पं च पूजयेत् कुलयोषिताम्।
वामाचारो भवेत्तत्र वामा भूत्वा यजेत् पराम्।।

मद्यादि दान और सेवन वामाचारियोंका प्रधान कर्त्तव्य है। इसके पश्चात् वामास्वरूपा होकर परमाशक्तिकी पूजा करनी होती है, न करनेसे सिद्धि लाभ नहीं होता।

मद्यं मांसं च मत्स्यं च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं चैव महापातकनाशनम्।।

इसमें रातको छिपकर कुलक्रिया और दिनको वैदिक क्रिया करनेका विधान है। वामाचारी कौलगण चित्तरूप पुष्प, प्राणरूप धूप, तेजोरूप दीप, वायुरूप चामर आदि कल्पित उपचार-द्वारा आन्तरिक साधना करते हैं। इसका नाम अन्तर्याग है। षटचक भेद इस अन्तर्यागका प्रधान अंग है।



अन्तर्याग-साधनमें प्रवृत्त वीराचारी या वामाचारी मद्यमांसादि-द्वारा भगवतीकी अर्चना करते हैं। कुलार्णवमें ऐसे साधकको देवीका प्रिय कहा है। यहाँतक कि कुल-शास्त्रकारोंने सभीको मद्यमांस-द्वारा पूजा करनेकी विधि दे दी है—

शैवे च वैष्णवे शाक्ते सौरे च गतदर्शने।
बौद्धे पाशुपते सांख्ये व्रते कालमुखे तथा॥

सदक्षवामसिद्धान्तवैदिकादिषु पार्वति।
विना लिपिशिताभ्यां च पूजनं विफलं भवेत॥

(कुलार्णव)

कुलार्णवमें यह भी लिखा है कि सुरा शक्तिस्वरूप, मांस शिवस्वरूप और उस शिवशक्तिके भक्त स्वयं भैरवस्वरूप हैं।

इस देशमें वीराचारी साधारणत: चक्र बनाकर उपासना करते हैं। चक्रनिर्माणकी प्रणाली इस प्रकार है— साधकगण चक्राकारमें या श्रेणीक्रमसे अपनी अपनी शक्तिके साथ ललाटमें चन्दनका प्रलेप देकर जोड़ेके साथ भैरव-भैरवी भावमें बैठें। वे दलमध्यस्थित किसी स्त्रीको साक्षात् काली समझकर मद्यमांसके साथ उसकी पूजा करें। कैसी स्त्रीकी इस प्रकार पूजा करनी होती है, तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापिताङ्गना।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका॥
मालाकारस्य कन्या च नवकन्या: प्रकीर्त्तिता:।
विशेषवैदग्ध्ययुता सर्वा एव कुलाङ्गना:॥
रुपयौवनसम्पना श़ीलसौभाग्यशालिनी।
पूजनीया प्रयत्नेन तत: सिद्धिर्भवेद ध्रुवम्॥

(गुप्तसाधनतन्त्र प्रथम पटल)

चक्रगत परपुरुष ही उन सब कुलस्त्रियोंके पति हैं, कुलधर्मसे विवाहित पति पति नहीं हैं। किन्तु पूजाकालके अतिरिक्त अन्य समयमें वे परपुरुषको हृदयमें स्थान न देवें। पूजाके समय वेश्याकी तरह सबोंको परितोष करना उचित है।

साक्षात् कालीस्वरूपा ऊपर कही गई कुलनारीकी पूजा करके वामाचारी लोग मद्यादिका शोधन करके पीते हैं। प्राणतोषिणी तन्त्रमें लिखा है कि ललाटमें सिन्दूर चिह्न और हाथमें मदिरासव धारण करके गुरु और देवताका ध्यान करते हुए उसे पान करे। सुरापात्र हाथसे पकड़कर तद्गत भावमें मद्यपात्रकी इस प्रकार वन्दना करनी होती है—

श्रीमद्‌भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रामृतप्लावितम्।
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीसुरगणै: सिद्धै: समाराधितम्॥
आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षात् त्रिखण्डामृतम्।
वन्दे श्रीप्रमथं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम्॥

(श्यामारहस्य)



इस प्रकार विशेष मन्त्रों-द्वारा पाँच बार पात्रकी वन्दना करके पाँच पात्र मद्य ग्रहण करना चाहिए।

जबतक इन्द्रियाँ चंचल न हो जायँ, तबतक पान करता रहे। पीछे चक्रादिके कल्याण और उनके विपक्षके विनाशके उपदेशसे शान्तिस्तोत्र-का पाठकर कुलक्रियाका अनुष्ठान करना होता है। इसके अनन्तर आनन्दोल्लास होता है। कुलार्णवके पंचम खण्डमें इस बीभत्स क्रियाका विस्तृत अश्लील वर्णन दिया हुआ है।

दक्षिणाचार

इसमें अपने आपको शिव मानकर पञ्चतत्त्वसे शिवाकी पूजा की जाती है और मद्यके स्थानपर विजयारस दिया जाता है। विजयारस भी पञ्च मकारमेंसे एक है। यह आचार वामाचारसे श्रेष्ठ और प्राय: वैदिक माना जाता है।

कुलाचार

तन्त्रसारमें कहा गया है कि प्रत्येक तान्त्रिकको समस्त काम्य कर्मका परित्याग करके नित्यकर्मके अनुष्ठानमें तत्पर होना चाहिए और कर्मफल अपने इष्ट देवताको अर्पण करना चाहिए। अन्य मंत्रकी अर्चना, श्रद्धा अथवा अन्य मंत्रकी पूजा करना उचित नहीं है। कुलस्त्री अथवा वीराचारीकी निन्दा करना सर्वदा अनुचित है। स्त्रीके प्रति रोषका परित्याग करना चाहिए। संपूर्ण संसारको स्त्रीमय समझना चाहिए। पेय, चव्य, चौष्य, भक्ष्य, लेह्य (पीने, चबाने, चूसने, खाने, चाटने) आदि पदार्थोंसे लेकर सभी पदार्थोंको युवतीमय समझना चाहिए। कुलजा (कुलमें उत्पन्न) युवतीको अवलोकन करके समाहित चित्तसे नमस्कार करना चाहिए। यदि साधकको भाग्यक्रमसे कुलस्थान दिखाई पड़े तो भगिनी, भगचित्त, भगास्या, भगमालिनी, भगनासा, भगस्तनी, भगस्था और भगसर्पिणी देवताकी पूजा करनी चाहिए। बाला, युवती, वृद्धा, सुन्दरी अथवा कुत्सिता किसी प्रकारकी क्यों न हो स्त्रीको देखते ही नमस्कार करना चाहिए। स्त्रियोंके प्रति प्रहार, निन्दा अथवा किसी प्रकारकी दूसरी कुटिलता नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे साधकको सिद्धि मिलना कठिन हो जाता है। स्त्रीसंगी साधकको समझना चाहिए कि स्त्री ही देवता, स्त्री ही प्राण और स्त्री ही अलंकार है। स्त्रियोंके हस्तरचित पुष्प, जल एवं अन्य द्रव्य देवताको निवेदन करने चाहिएँ। जपस्थानमें महाशंख स्थापन करके कुलजा युवतीके साथ विहार करते करते अथवा उसको स्पर्श या अवलोकन करके जप करनेका विधान है। फिर स्त्रीका भुक्तावशिष्ट ताम्बूल लेकर भक्षण करके जप करना चाहिए। इस आचारमें दिक्काल अथवा अवस्थानका कोई नियम नहीं है। उपासक अपनी इच्छाके अनुसार किसी समय तथा कहीं भी उपासना कर सकता है। वस्त्र, आसन, स्थान, शरीर, गृह, पुष्प, जल लेकर शुद्धिकी भी आवश्यकता नहीं होती।

कुलार्णव तन्त्रमें कहा गया है-

कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापविशुद्धये।
याचयेदमृतं कौलं तदभावे जलं पिबेत्॥

कुलाचारेण यद्दत्तं कृत्वा पात्रेण भक्तितः।
नमस्कृत्वा च गृह्णीयादन्यथा नरकं व्रजेत्॥



कुलाचार-गृहमें जाकर पापकी विशुद्धिके निमित्त कुलाचारीसे अमृत प्रार्थना करनी चाहिए। अमृत न मिलनेपर जलपान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुलाचारी जो कुछ भी दे उसीको

भक्तिपूर्वक नमस्कार करके ग्रहण कर लेना चाहिए।

तन्त्रसारमें भी कहा गया है-

न वृथा गमयेत् कालं द्यूतक्रीडादिना सुधीः।
गमयेद् देवता-पूजाजपयागादिना सदा।।

वीराणां जपयज्ञस्तु सर्वकाले प्रशस्यते।
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्त्तव्यो नात्र संशयः।।

साधकको द्यूतक्रीडा आदि-द्वारा वृथा काल अतिवाहन नहीं करना चाहिए। इसमें देवता-पूजा, जपयोग आदि करके कालयापन किया जाता है। वीराचारियोंका जपरूप यज्ञ सदा ही प्रशस्त है। किन्तु संपूर्ण स्थान और संपूर्ण आसनपर जप करना आवश्यक है।

शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्मा जनार्द्दन।
शक्तिरिन्द्रो रविः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो ग्रहा ध्रुवम्।।

शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न जानाति नारकी।।

शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य एवं अन्य ग्रह सारे ही शक्तिमय हैं। जो इस प्रकार नहीं समझता वह नारकी कहलाता है। (शिवागम)

स्नानादि मानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः।
मानसं पूजनं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम्।।

सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यये क्वचित्।
न विशेषो दिवारात्रौ न संध्यायां तथा निशि।।

सर्वदा पूजयेद्देवीमस्नातः कृतभोजनः।
महानिशाशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दीपयेत्।।

स्नान आदि का मानस शौच, मानसिक जप, मानस-पूजा एवं मानसिक तर्पण आदि सर्वश्रेष्ठ है। वह सभी समयमें शुभ होता है। उसके लिये कोई भी समय अशुभ नहीं होता। दिन, रात, सायं अथवा महारात्रिका विशेष नियम नहीं होता है। बिना स्नान किए अथवा भोजन करके भी देवीकी पूजा करनी चाहिए। महानिशाको अशुचि देशमें भी मन्त्र-पूर्वक बलि प्रदान की जा सकती है। (वीरतन्त्र)

गन्धर्वतन्त्रमें कहा है-

पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं यदि नित्यशः।
तथा वादी स्वसिद्धान्तहतः क्षितितलं विशेत्।।

पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः।

कवितां लभते सोऽपि अमृत्वं चापि गच्छति।।



स्त्रीको ऋतुमती देखकर सोलह दिन-तक प्रतिदिन सहस्र बार जप करनेसे वादी अपने सिद्धान्तपर पराजित होकर क्षितितलमें प्रवेश करता अर्थात् बहुत लज्जित रहता है। भयरहित एवं स्थिर-मन होकर

स्तनमण्डलपर हस्तप्रदानपूर्वक सोलह दिन तक प्रतिदिन सहस्र बार जप करनेसे साधक-कवित्य शक्ति और अमरत्व लाभ कर सकता है। (गन्धर्वतन्त्र)

पद्मं दृष्ट्वा तथा बिल्वं खञ्जनं शिखरं तथा।
चामरं रविबिम्बं च तिलपुष्पं सरोरुहम्॥
त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभावनः।
सुखप्रसादं सुमुखं सुलोचनसुहास्यकम्॥
सुवेशं सुगतिं गन्धं सुगन्धं सुखमेव च।
लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति सादरम्॥

मुख, अधर, चक्षु, मस्तक, केश, कपोलका सिन्दूर, नासिका, नाभि एवं त्रिवली अवलोकन करके सौ बार जप करनेसे साधक यथाक्रम प्रसाद, सुन्दरमुख, सुन्दर लोचन, सुन्दर हास्य, सुवेश, सुगति, गन्ध और सुगन्ध पाते हैं। (नीलतंत्र)

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने निर्जने वने।
शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् सदा॥
महाचीनद्रुमे देवीं ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत्।
तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद् भक्तिभावतः॥
स भवेत् कुलदेवश्च कुलद्रुमगतः शुचिः॥

निर्जन देश, श्मशान, वन, शून्यगृह अथवा नदीके किनारे निःशंक होकर सदा विचरण करना चाहिए। महाचीनद्रुममें देवीका ध्यान करके पूजा की जाती है। महाचीनद्रुमके पुष्पद्वारा भक्तिभावसे पूजा करनेपर साधक कुलदेव हो सकता है। (भावचूडामणि)

कुलचूडामणिमें भी कहा गया है-

शृणु पुत्र! रहस्यं मे समयाचारसम्भवम्।
येन हीना न सिद्ध्यन्ति जन्मकोटिसहस्रतः॥
मानवः कुलशास्त्राणां कुलचर्यानुसारिणाम्।
उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः॥
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा।
पर्वते विपिने वापि निर्जने शून्यमण्डपे॥
चतुष्पथे कलामध्ये यदि दैवात् गतिर्भवेत्।
क्षणं स्थित्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद् यथासुखम्॥



साधकको सदा कुलाचारका रहस्य श्रवण करना चाहिए। यदि उसको न समझ पायँ तो कोटिसहस्र जन्ममें भी सिद्धि मिलना कठिन है। उसे कुलशास्त्र और कुलाचारीके प्रति श्रद्धावान होकर वैष्णवाचारमें तत्पर रहना चाहिए। किसी मन्दमति-द्वारा कुलाचारीकी निन्दा करनेपर दुखी नहीं होना

चाहिए और सदा परोपकारमें लगे रहना चाहिए। पर्वत, विजन कानन, शून्य गृह, चतुष्पथ अथवा नृत्य, गीत आदिके मध्य किसी कार्यसे उपस्थित होनेपर कुछ काल अवस्थान करके साधकको मन्त्रजप करना चाहिए। उसके पश्चात् नमस्कार करके जहाँ इच्छा हो उसी स्थानपर चला जाय।

(कुलचूडामणि)

कुलाचारी कोई गीध, क्षेमङ्कारी, जम्बुकी, काक, श्येनपक्षी, नीलवर्ण कपोत और कृष्णवर्ण मार्जार अवलोकन करके निम्नलिखित मन्त्रपाठ-पूर्वक महाकालीको नमस्कार करे।

कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये।
कुलाचार-प्रसन्नास्ये नमस्ते शंकरप्रिये॥

श्मशान और शवको देखकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर नमस्कार किया जाता है।

घोरदंष्ट्रे करालास्ये किटिशब्दनिनादिनि।
घोरघोररवास्फाले नमस्ते चितिवासिनि॥

इसी प्रकार लाल वस्त्र एवं पुष्प देखकर त्रिपुरसुन्दरी और कृष्णवर्ण पुष्प, राजा, राजपुरुष, महिष, हस्ती, अश्व, रथ, अस्त्र, वीरपुरुष तथा कुलदेवताको अवलोकन करके जयदुर्गा अथवा महिषमर्दिनीकी अर्चना करनी चाहिए।

कुलार्णवतन्त्रके ग्याहरवें उल्लासमें कुलाचारका कर्त्तव्याकर्त्तव्य इस प्रकार वर्णित हुआ है— दीक्षित ज्येष्ठके कुलपूजादि वर्जित होनेपर क्रमशः कनिष्ठ ही कुलपूजाका अधिकारी है। पूजाके समय ज्येष्ठ, गुरु अथवा कनिष्ठके समागत होनेसे उनके साथ सादर संभाषण करके उन्हींकी अनुमतिके अनुसार पूजादि कार्य करना चाहिए। कौलिक दिनकी नित्यपूजा, रात्रिकालको नैमित्तिक और रात-दिन दोनों समय काम्य कर्मका अनुष्ठान करते हैं। कुलाचारियोंको अस्नात, अङ्गस्थ अथवा भुक्त गन्ध पुष्प, वस्त्र तथा अलंकार-द्वारा भूषित न होनेपर अथवा अविन्यस्त शरीर सर्वदा कुल-पूजासे अलग रहना चाहिए। बिना मांस अथवा बिना मद्य कुलपूजा करनेसे कोई फल नहीं मिलता। कुलाचारीको शक्तिरहित होकर मद्यपान नहीं करना चाहिए। एकाकी श्रीचक्रका अनुष्ठान, एक पात्र अथवा एक हाथसे अर्चना, एक हाथसे जलपान और मद्यमांस-द्वारा पशुके सन्निधानमें देवीकी अर्चना आदि कुलाचारीके लिये निषिद्ध है। कौलिकको प्रणाम करके ही श्रीचक्रसे बाहर निकलना चाहिए क्योंकि श्रीचक्रका दर्शन करनेसे पाप विनष्ट होते हैं। श्रीचक्रमें उपविष्ट, शक्तिको गौरी और कौलिकको साक्षात् शिव समझना चाहिए। अस्नात भुक्त अथवा अभुक्त होकर कुल-द्रव्य (मद्य) सेवन नहीं करते अर्थात् भोजनके समय मद्य पीते हैं। उष्णोषधारी, कञ्चुकी, नग्न, मुक्तकेश, दिगम्बर, व्यग्र, रुष्ट और विवादीको कभी कुलामृत नहीं पीना चाहिए। मद्यपानके बाद निष्ठीवन, मद्यभाण्डका परिभ्रमण, ऊर्ध्वनालमें मद्यपान, दूसरेके साथ आसनपर बैठकर एक पात्रमें भोजन अथवा एक पात्रमें मद्यपान कुलाचारमें अकर्त्तव्य है।

भ्रमण, गर्जन, हास्य, विवाद, वाद-प्रतिवाद, ज्ञानीकी निन्दा, परिहास, प्रलाप, वितण्डा, बहुभाषण, औदासीन्य, भय और क्रोध चक्रके मध्य वर्जनीय है।



गुरु, उनका पुत्र अथवा उनके वंशसे उत्पन्न कोई व्यक्ति अथवा कौलिक ज्येष्ठ यदि एक ग्रामवासी हो तो उसकी अनुमति स्वीकार न करके अकेले ही कुलद्रव्यका सेवन करनेसे अलग ही

रहना चाहिए। हाथ धोकर कुल द्रव्यका अर्पण, मधुभाण्ड उत्तोलन करके (तोलकर), बर्तन भरके, सुधाकुण्डमें भोगपात्र-का नि:क्षेप, चक्रके मध्य अशुचिमनसे हाथ धोकर, निष्ठीवन, मलमूत्र-परित्याग अथवा वायु नि:सारण नहीं करना चाहिए। चक्रके मध्य दैवात घटभंग, पात्रस्खलन अथवा दीपनिर्वाण होनेसे दोष-शान्तिके लिये पुनर्वार चक्र बनाना चाहिए।

पात्रहस्त चक्रके मध्य भ्रमण, पूर्णपात्र हाथमें लेकर बहुत देरतक अवस्थान, पात्र-हस्त आलाप, पदद्वारा पात्रस्पर्श, भूमितलपर बिन्दु-पात, एक हाथसे देना, एक स्थानसे दूसरे स्थानको पात्रका चलाना, पात्रसंकर, सशब्द पान अथवा शब्द करके पात्र पूरण करना कुलाचारियोंके लिये नितान्त अकर्त्तव्य है। पात्रके साथ पात्रका संघट्टन, मिट्टीमें रखना, आधारके साथ बर्तन तोलना अथवा खाली बर्तन नहीं देखना चाहिए। पात्रको धोकर छिपा लेना चाहिए। कौलिक यदि कुल-द्रव्य पानसे उल्लसित होकर पशुको देखे तो पशुशास्त्र पाठ करके उसको पशुभाव दिखलाना चाहिए। फिर पशुके प्रसंग और पशुके कार्यका अनुष्ठान करना चाहिए। अपनी इच्छा, धन-लोभ अथवा किसी प्रकार भीत होकर भी श्रीचक्रस्थ कुलद्रव्य किसी पश्वाचारीको अर्पण नहीं करना चाहिए क्योंकि वैसा करनेवालेका धन, आयु और यश विनष्ट होता है। चक्रके मध्य रहकर शत्रुसे भी विरोध नहीं करना चाहिए। चक्रस्थित कौलिकोंको पिताके समान और शक्तियोंको माताके समान मानना चाहिए। इस प्रकारकी चिन्ता करना ही कौलिकोंका प्रधान कार्य है। ब्रह्मासे स्तम्बतक संपूर्ण गुरुकी सन्तान हैं। मैं सभीका शिष्य हूँ और सब मेरे पूज्य हैं। जपकालमें भिन्न गुरुका नाम नहीं लेना चाहिए। गुरु, कुलशास्त्र और पूजा-स्थानको देखकर नमस्कार करना चाहिए। कौलिकको अपनी पत्नीकी भाँति कुलशास्त्रका सर्वदा सेवन करना चाहिए। परदाररत लोग पशुशास्त्रको परित्याग करते हैं। पशुसे कुल-धर्मकी कोई व्यथा नहीं सुननी चाहिए। गुरु-पत्नी, गुरुकन्या, कुमारी, व्रतधारिणी, वक्रांगी (टेढ़े-मेढ़े अंगोंवाली), विकृतांगी (बेडौल अंगोंवाली), कुब्जा (कुबड़ी), अपनी कन्या, बहन, पौत्री और पुत्रवधू अलंघनीया होती है। कौलिकोंको कभी उनकी कामना नहीं करनी चाहिए। गुरुसे कभी कोई बात नहीं छिपानी चाहिए। काले वस्त्र धारणकरनेवाली, काले रंगवाली, कृशोदरी और युवती कुमारीको देवता समझ करके पूजा करनी चाहिए। आममांस, सुराकुम्भ, मत्तगज, सिद्धिसूचक चिह्न, विशिष्ट व्यक्ति, सहकारवृक्ष, अशोक वृक्ष, क्रीडाकुला कुमारी, श्रीफल वृक्ष, श्मशान, शक्तिसमूह अथवा लाल वस्त्र धारण करनेवाली कुल-कामिनीको देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिए। कुलद्रव्य और कौलिक कुलधर्मके सूचक शिक्षक अथवा बोधक मनुष्य (ज्ञानी मनुष्य)-को भक्तिभावसे नमस्कार करना कुलाचारीका कर्त्तव्य है। स्त्रीजातिकी निन्दा, उनके अप्रिय कार्यका अनुष्ठान अथवा उनकी अवमानना, भक्तकी परीक्षा, वीरका कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विचार, अनावृतस्तनी, उल्लङ्घिनी एवं उन्मत्ता कामिनीका अवलोकन और दिनमें स्त्रीसंभोग अथवा स्त्रियोंको देखना कुलाचारमें निषिद्ध है। सारी स्त्रियाँ मातृकुलसे उत्पन्न हैं। उनकी किसी प्रकार अवमानना करनेसे कुलयोगिनी असन्तुष्ट होती है। सौ सौ अपराध करनेपर भी किसी प्रकार उनका अप्रिय आचरण नहीं करना चाहिए। कुलवृक्ष अथवा अर्कके पत्रमें भोजन, कुलवृक्षके तलपर शयन अथवा कुलवृक्षपर किसी प्रकार उपद्रव करना निषिद्ध है। कुलवृक्षको देखकर अथवा उसका नाम सुनकर नमस्कार करना चाहिए। कभी कुलवृक्षको काटना या उसको कहींसे भी छेदना नहीं चाहिए। श्लेष्मातक (कफकाल), करञ्ज, निम्ब, अश्वत्थ (पीपल), कदम्ब, बिल्व, वट और उदुम्बर तन्त्रशास्त्रमें कुलवृक्षके नामसे अभिहित हुए हैं। कौलिकोंको प्रायश्चित्त, भृगुपात, संन्यास, व्रतधारण और तीर्थयात्रा आदि कार्योंका परित्याग करना चाहिए। वीरहत्या,



चक्रभिन्न मद्यपान, वीरपत्नीमें अभिगमन, वीरद्रव्यका अपहरण और उक्त समस्त कर्मके अनुष्ठानकारीका संसर्ग पाँच महापातक तन्त्रशास्त्रमें अभिहित हुए हैं। कुलशास्त्रमें अविश्वास अथवा कुलगुरु-के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। माता-पिता-पत्नी, भाई, बन्धु अथवा कुलधर्मकी निन्दा करनेवाले अन्य व्यक्तिका वध कर देना चाहिए। अशक्त होनेपर उनके प्रति शत्रुता प्रकट करके स्वयं प्राण-त्याग कर देना चाहिए। कुलधर्म, कुलदेवता, कौलिक और कुलशास्त्रकी रक्षाके लिये प्राणीकी हत्या करनेसे पाप नहीं लगता। शूद्र व्यक्तिके सामने जैसे वेदपाठ करना न करनेके बराबर है वैसे ही पश्वाचारीके निकट कुलाचारका प्रसंग भी नहीं छेड़ना चाहिए। कुलाचारको कभी प्रकाश नहीं करना चाहिए क्योंकि मन्त्र प्रकाश करनेसे सम्पत्ति बिगड़ती है और अवस्था घटती है। शास्त्रमें महापातककी निष्कृति निरूपित हुई है, किन्तु कुलाचार-परिभ्रष्ट कौलिकका कोई उपाय नहीं बताया गया।

इस प्रकार कुलाचारका प्रतिपालन करनेसे साधक सर्वसम्पत्ति-शाली होनेके अनन्तर परमात्मामें लीन हो सकता है। संपूर्ण धर्म परित्याग करके मंत्र, तंत्र और अभिषेक न करनेसे भी केवल कुलाचारके प्रतिपालनसे ही कुलाचारियोंको सिद्धि मिल जाती है।

निरुक्त-तंत्रमें कुलाचारका विषय इस प्रकार लिखा है—

कुलाचारं च भो वत्स सुंगोप्यं कुरू यत्नतः।
स्वशक्ति कौलिकी कृत्वा तत्र पूजां प्रकल्पयेत्।।

सिद्धमन्त्री यजेच्छक्ति कायेन मनसापि वा।
परयोषां विशेषेण सिद्धमन्त्री प्रपूजयेत्।।

एतानि कुलधर्माणि गुरुभिर्रुदितानि च।
यावन्नैव सिद्धमन्त्री तावच्च स्वकुलं व्रजेत्।।

हे वत्स! तंत्रमें कुलाचार बलपूर्वक छिपाना चाहिए। अपनी शक्ति (स्त्री)-को कौलिकी मानकर पूजा करनी चाहिए। सिद्ध मंत्री मन और प्राणमें सर्वदा शक्तिकी अर्चना किया करते हैं। फिर जो सिद्ध मंत्री नहीं हो सके अर्थात् जिनका मंत्र सिद्ध नहीं उनको अपनी शक्तिकी ही पूजा करनी चाहिए। परस्त्रीका सहारा लेना सर्वथा निषिद्ध है। परमगुरुने कुलधर्मका कथन इसी प्रकार किया है।

कुलाचारीकी मंत्रसिद्धि प्रणाली निरुक्त-तंत्रके नवम पटलमें इस प्रकार कही गई है-

शुभकर अथवा मनोरम्य समस्त कुलद्रव्य भक्तिपूर्वक लाना चाहिए। उसके पीछे चक्र बनाकर शक्ति-कपालके वीरकोणमें कामकलामंत्र और मध्यमें कामबीज युक्त मूलमन्त्र लिखना चाहिए, फिर उसी शक्तिकी कुलदेवीका आवाहन और ध्यान करके पूजा करनी चाहिए। उसके पीछे साधक स्थिरचित्त होकर लक्ष जप करता है। जप समाप्त होनेपर शक्तिके बाँएँ कानमें ऋषिछन्दःयुक्त मूलमन्त्र तीन बार कहकर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करना चाहिए।

अद्यप्रभृति शक्तिस्थं कुलदेवार्चनं चर।
गुरोराज्ञां समादाय घृणालज्जाविवर्जिता।।



शिवोक्तविधिना देव करिष्यामि कुलार्चनम्।
त्राहि नाथ कुलाचारकामिनी-कामनायकः।।

त्वत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मे कुलवर्त्मनि।।

इसी प्रकार रात्रिका प्रथम प्रहर बीत जानेपर शक्तिको अनेक आभरणसे विभूषित करके अपनी बाँई ओर बैठाकर उसके कपालपर नामयुक्त मन्त्र लिखना चाहिए। साधकको ताम्बूल (पान) खाकर कुलाकुल-मन्त्र जप करना चाहिए। इसी प्रकार साधना करनेसे मंत्र सिद्ध होता है। जबतक सिद्धि नहीं होती तबतक इसी प्रकार अनुष्ठान करके अथवा श्मशानमें परस्त्रीकी पूजा करनी चाहिए। इसके पीछे देवकन्याको आकर्षित करना चाहिए। फिर देवताको आकर्षित करके साधक शिवके समान हो सकता है।





२६



मात्तृकाएँ



चौदह मातृकाएँ

शिवजीके पुत्र स्कन्द अर्थात् कार्त्तिकेयजीने चौदह मातृकाओंकी स्थापना की थी। इन मातृकाओंके मन्त्र तो अत्यन्त सरल हैं और सक्षिप्त भी किन्तु उनकी साधना बहुत कठिन है। इन मातृकाओंकी सिद्धिके लिये यह आवश्यक है कि रात्रिके द्वितीय प्रहरसे अर्थात् रातके नौ बजेसे इनका आराधन अर्थात् जप यथानिर्दिष्ट दिशाकी ओर मुँह करके प्रारम्भ करना चाहिए और बिना हिले-डुले यथानिर्दिष्ट जप पूरे करके केवल आज्य (पिघले हुए गऊके घी)-की आहुति देकर हवन करना चाहिए।

१. **सिद्धाम्बिका**— इनका जप मंत्र है **'ॐ नमः सिद्धाम्बिकायै'** और हवनके लिये आहुति-मंत्र है **'ॐ सिद्धाम्बिकायै स्वाहा'**। यह मन्त्र पैंसठ हजार एक आसनसे जपना चाहिए और पैंसठ सौ आहुतियाँ देनी चाहिए।

२. **तारा**— यह मातृका दक्षिण दिशामें स्थित हैं इसलिये रात्रिके द्वितीय प्रहरसे दक्षिणकी ओर मुख करके **'ॐ नमः तारायै'** का पचास हजार जप करना चाहिए और **'ॐ तारायै स्वाहा'** कहकर पाँच हज़ार घीकी आहुतियाँ देनी चाहिएँ।

३. **भास्करा**— यह मातृका पश्चिम दिशाका पालन करती हैं और नक्षत्रोंको प्रकाश देती हैं इसलिये रात्रिके द्वितीय प्रहरसे पश्चिम दिशाकी ओर मुँहँ करके **'ॐ नमः भास्करायै'** का पचास हज़ार जप करना चाहिए और **'ॐ भास्करायै स्वाहा'** कहकर पाँच हजार आहुतिसे घीसे हवन करना चाहिए।

४. **योगीश्वरी**— यह मातृका उत्तर दिशामें रहती हैं। इनके सिद्ध होनेपर दृष्टिपातसे ही सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) योगी बने थे। इन्हें सिद्ध करनेके लिये उत्तर दिशाकी ओर मुख करके रात्रिके द्वितीय प्रहरसे पैंतालीस हज़ार मन्त्रका जप करें और चार हज़ार पाँच सौ आहुतियोंसे हवन करें। मन्त्र है **'ॐ योगीश्वर्यै नमः'** और हवनके लिये **'ॐ योगीश्वर्यै स्वाहा'**।

५. **त्रिपुरा**— इस मातृकाने त्रिपुरासुरका नाश करनेमें शिवजीकी सहायता की थी। इन्हें सिद्ध करनेके लिये रात्रिके द्वितीय प्रहरसे साठ हज़ार बार मन्त्रका जप करना चाहिए और छह हज़ार घीकी आहुतियाँ देनी चाहिएँ। मन्त्र है— **'ॐ त्रिपुरायै नमः'** और हवनके लिये **'ॐ त्रिपुरायै स्वाहा'**। यह जप और हवन ईशान कोणकी ओर मुख करके करना चाहिए।

६. **कोलम्बा**— यह मातृका पूर्व दिशामें वराहगिरिपर रहती हैं इसलिये रात्रिके द्वितीय प्रहरसे पूर्वकी ओर मुख करके **'ॐ कोलम्बायै नमः'** मन्त्रका साठ हज़ार बार जप करना चाहिए और **'ॐ कोलम्बायै स्वाहा'** से छह हज़ार घीकी आहुतियाँ देनी चाहिएँ।

७. **कपालेशी**— यह मातृका भी कोलम्बाके साथ ही पूर्व दिशामें वराहगिरिपर रहती हैं इसलिये उन्हें सिद्ध करनेके निमित्त रात्रिके द्वितीय प्रहरसे पूर्वकी ओर मुख करके **'ॐ नमः कपालेश्यै'** का साठ हज़ार जप करना चाहिए और **'ॐ कपालेश्यै स्वाहा'** से छह हज़ार घीकी आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए।



८. **स्वर्णाक्षी**— यह मातृका भी पूर्वकी ओर रहती हैं। इनके लिये पूर्वकी ओर मुख करके

रात्रिके द्वितीय प्रहरसे **'ॐ स्वर्णाक्ष्यै नमः'** का पचास हज़ार जप करना चाहिए और **'ॐ स्वर्णाक्ष्यै स्वाहा'** कहकर पाँच हजार घीकी आहुतियोसे हवन करना चाहिए।

९. चर्चिता— यह मातृका भी पूर्वमें ही रहती है। रात्रिके द्वितीय प्रहरसे पूर्वकी ओर मुख करके **'ॐ नमः चर्चितायै'** का पचास हज़ार जप करना चाहिए और **'ॐ चर्चितायै स्वाहा'** कहकर पाँच हज़ार घीकी आहुतियोंसे हवन करना चाहिए।

१०. त्रैलोक्यविधेया— इनकी साधना सबसे अधिक कठिन है किन्तु यदि यह मातृका सिद्ध हो जायँ तब किसी प्रकारकी सिद्धिकी आवश्यकता नहीं रहती। सब सिद्धियाँ स्वयं साधकके पास आ पहुँचती हैं और वह दूसरेके उपकारके लिये कुछ भी कर सकता है। यह मातृका पश्चिम दिशामें रहती हैं इसलिये रात्रिके द्वितीय प्रहरसे पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके **'ॐ त्रैलोक्यविधेयायै नमः'** मन्त्रका सवा लाख जप करना चाहिए और **'ॐ त्रैलोक्य विधेयायै स्वाहा'** कहकर दस हजार घीकी आहुतियोसे हवन करना चाहिए।

११. वीरा— यह मातृका भी पश्चिम दिशामें रहती हैं। रात्रिके द्वितीय प्रहरमें पश्चिमकी ओर मुख करके पैंतीस हज़ार बार **'ॐ वीरायै नमः'** का जप करना चाहिए और **'ॐ वीरायै स्वाहा'** कहकर पैंतीस सौ घीकी आहुतियाँ देनी चाहिएँ।

१२. हरिसिद्धि— यह मातृका प्रलयकी देवी हैं इसलिये केवल देवता ही इनकी सिद्धि तब करते हैं जब वे प्रलय करना चाहते हैं। इन्हें सिद्ध करनेकी विधि भी देवता ही जानते हैं।

१३. चण्डिका— यह मातृका ईशान कोण (उत्तर-पूर्वके कोने)-में रहती हैं और इन्होंने ही चण्ड और मुण्डका वध किया था जिसका वर्णन देवी भागवत और सिद्ध पुराणमें है। शत्रु-नाशके लिये इनकी सिद्धि रात्रिके द्वितीय प्रहरसे ईशान कोणकी ओर मुख करके इक्यावन हज़ार **'ॐ नमश्चण्डिकायै'** मन्त्रका जप करके **'ॐ चण्डिकायै स्वाहा'** से पाँच हज़ार एक सौ घीकी आहुतियाँ देनी चाहिएँ।

१४. भूतमातृका— इनका जन्म कार्त्तिकेयकी भौंहोंके बीचसे हुआ था। इन्हें सिद्ध करनेके लिये रात्रिके द्वितीय प्रहरसे ईशान कोणकी ओर मुख करके **'ॐ भूतमातृकायै नमः'** मन्त्रका पैंतीस हज़ार बार जप करना चाहिए और **'ॐ भूतमातृकायै स्वाहा'** कहकर पैंतीस सौ घीकी आहुति से हवन करना चाहिए।

इन चौदह मातृकाओंकी सिद्धि प्रायः दक्षिणमें ही होती रही है। उत्तर भारतमें इन मातृकाओंके सम्बन्धमें बहुत कम लोग जानते हैं। दक्षिण भारतमें ही स्कन्द, षण्मुखम् तथा कार्त्तिकेय आदि नाम बहुत पाए जाते हैं।

इन मातृकाओंकी सिद्धिके लिये किसी प्रकारकी पूजाका विधान नहीं है। किसी निर्जन, पवित्र, एकान्त स्थानमें जप और हवनसे मातृका सिद्ध हो जाती हैं। इनमेंसे सिद्धाम्बिका प्रचुर धन और पुत्र पौत्रादि देती हैं, तारा शत्रु-नाश करती हैं, भास्करा तेज और कीर्त्ति प्रदान करती हैं, योगीश्वरी, विद्या, बुद्धि और ज्ञान देती हैं, त्रिपुरा शत्रुओंपर विजय प्राप्त करती है। कोलम्बा भूमि, भवन, विभूति (ऐश्वर्य) प्रदान कराती हैं कपोलेशी रोग और पाप हरती है, स्वर्णाक्षी सुन्दर पत्नी देती हैं, चर्चिता



अनेकों श्रृंगारकी सामग्री, वस्त्र और आभूषण देती हैं, त्रैलोक्यविधेया सारी मनोकामनाएँ पूरी करती हैं, वीरा बल, शक्ति, वीरता प्रदान करतीं हैं, चण्डिका शत्रु-नाश करती हैं और भूतमात्तृका पशुधन प्रदान करती और पशुओंकी रक्षा करती हैं इन मात्तृकाओंको सिद्ध करनेके लिये आहार, आचार और विचार-शुद्धि परम आवश्यक है अन्यथा अनेक प्रकारकी बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। किसी सिद्ध गुरुसे मन्त्र-दीक्षा लेकर ही जप और हवन करना चाहिए।





२७



अघोर–पंथ



शिवजीके पाँच नामों (सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान)मेंसे अघोर भी शिवजीका एक नाम है। अघोरपंथ इस नामके कारण चला या कोई अलग सिद्धान्त है। इसका कोई भी विवरण कहीं भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि अघोरपंथके किसी भी आचार्यने न तो अघोरपंथके दार्शनिक पक्षका विवरण लिखा न दीक्षा-पद्धति या साधनाका। किन्तु अघोरपंथ भारतके कई स्थानोंमें अपना केन्द्र बनाए हुए है और कई अघोरपंथी सिद्ध अपनी सिद्धिके कारण बड़ा यश प्राप्त कर चुके हैं। काशीमें शिवाला मौहल्लेके पास कृमिकुंड या क्रीमकुंडके पास बाबा किनारामजीकी बड़ी प्रसिद्ध गद्दी है। वे बड़े ही सिद्ध पुरुष थे और वे जो कह देते थे वही हो जाता था। इसी प्रकार राजस्थानमें पिलानीके पास गणेश नामके एक प्रसिद्ध अघोरपंथी सिद्ध पुरुष थे जिनकी कृपासे ही बिडला-परिवार इतना समृद्ध हो पाया है। यद्यपि तंत्र साहित्यमें अघोरपंथका कोई उल्लेख नहीं है तथपि बहुतसे तांत्रिक अघोरपंथको भी एक तांत्रिक सम्प्रदाय मानते हैं।

अघोरपंथ एक साधकोंका सम्प्रदाय है जो मल-मूत्रसे भी घृणा नहीं करता। इस पंथके माननेवाले अघोरी कहलाते हैं। यह शैव सम्प्रदायका ही एक भेद है। इसका आदिस्थान बड़ोदा-अञ्चलमें था। इसके अतिरिक्त काठियावाड़, करांची और अन्यान्य स्थानोंमें भी अनेक अघोरी रहते थे। आजकल राजपूतानेके अन्तर्गत आबू पहाड़पर अघोरपंथी शैव दीख पड़ते हैं। ये नितान्त अपरिष्कृत, निर्घृण और विकार-रहित होते और मद्य, मांस यहाँतक कि अपना मल-मूत्र भी खाते हैं। क्या कच्चा क्या पक्का और क्या दुर्गन्धित अखाद्य जो कुछ लोग देते, अघोरी अम्लान मुखसे उसीको भक्षण करते हैं क्योंकि निर्विकार रहना इनकी धर्मनीतिका प्रथम सूत्र है। कहीं भी शवदाह होनेसे अघोरपंथी मद्यके साथ उसी मनुष्य-मांसको उठाकर भोजन कर जाते हैं। इनके सिरपर बड़े बड़े बाल होते और कोई कोई जटा भी रखते हैं। केश रूक्ष और विशृंखल रहते हैं। मुँहँपर दाढ़ी-मूँछ भरी होती है। ये कौपीन और बहिर्वास पहनते हैं। ये मुँहँ नहीं धोते। मद्यपान करनेको इनके साथ कपाल-पात्र अर्थात् मनुष्यकी खोपड़ी रहती है। अन्यान्य धर्मसम्प्रदायके लोग जिस प्रकार माला या अन्यान्य विशेष परिच्छद रखते हैं, अघोरियोंके पास वैसा कुछ भी नहीं होता। धर्मकथा सुननेकी इच्छावालोंको ये कुछ भी नहीं कहते। बड़ोदा राज्यमें अघोरेश्वर नामक इनका एक मठ था। अघोर स्वामी उसी स्थानमें वास करते थे। आजकल यह सम्प्रदाय क्रमश: निर्मूल होता चला जा रहा है। कहीं कहींपर कभी कभी कोई अघोरपंथी योगी इतस्तत: घूमते-घामते कहीं दीख पड़ जाते हैं।

अघोरपन्थियोंका मत नूतन नहीं। इसका प्रमाण भी मिलता है कि अति प्राचीन कालमें यह सम्प्रदाय विद्यमान था। मार्कोपोलो, प्लिनी, अरस्तू प्रभृति विदेशीय पंडितोंने इसके विषयोंका कुछ कुछ उल्लेख किया है। ईरान देशमें भी बहुत पुराने समयमें इसी प्रकारके एक सम्प्रदायके साधक वास करते थे। इसलिये अनुमान होता है कि अघोरी शैव देश-विदेशमें विस्तीर्ण हो गए थे। कभी कभी हिन्दुस्तानमें स्थान स्थानपर अघोरिनें दलबद्ध होकर जाती हैं। इनके सिरपर जटा रहती है, गलेमें अनेक प्रकारके प्रस्तर और स्फटिककी माला झूमती है, कमरपर घाघरा लटकता और किसीके हाथमें त्रिशूल दिखाई देता है। ये जनपदोंमें जाकर महाउपद्रव मचाती हैं।



अघोर-पन्थके विषयमें न तो किसी पुराणमें ही कोई उल्लेख मिलता न उनका कोई परिचयात्मक ग्रन्थ ही प्राप्त है। इसलिये उनके इतिहास, उनकी दीक्षा-पद्धति, उनके स्थान, देवता, पूजा-उपासना, साधना तथा मन्त्र आदिका ही कोई विवरण मिलता। काशीमें बाबा किनाराम की गद्दीके वर्त्तमान

महात्माके पास षट्चक्र-भेदके बदले द्वादश-चक्र-भेदका एक पटल प्राप्त हुआ है जिसका विवरण पीछे दिया जा चुका है। इसके आधारपर यह अनुमान किया जा सकता है कि ये लोग भी योग-क्रियाका अभ्यास करते, कुंडलि जगाते और द्वादश-चक्र भेदनकी कोई क्रिया करते और जानते थे।

श्रीनारायण स्वामीजी ने अघोर-पंथकी सरल एवम् विस्तृत व्याख्या की है:

औघड़ पंथ अघोरका नहीं घोरका वाचक है। घोरका अर्थ है कठोर, भयंकर जिसपर चलना सबके बूते के बाहर हो। पर जो अपना जी कड़ा करके एक बार उस पर पैर बढ़ाता चला जाय, मस्तीके साथ झूमता हुआ सब कष्टों और संकटोंको ललकारता हुआ, वह उस घोर को अघोर बना देता है। यही अघोर पंथ है। इस पर चलने वाला घोर साधना करता है। ऐसी घोर साधना कि उसे देखने वाले आँखे बन्द कर लें। हाय हाय कर उठें किन्तु साधकके माथे पर बल तक ना पड़े। वह रावणके समान अपना सिर काट-काटकर चढ़ाता जाए और सिर ज्यौं का त्यौं बना रहे।

बहुत से सामान्य लोग समझते हैं कि औघड़ शराब पीते हैं, नशे में रहते हैं, दुनिया भर का पाखंड करते हैं। पर अघोरी साधकको किसीभी घोर कर्ममें नशा नहीं होता। जिसे लोग नशा समझते हैं वह उसकी परम सिद्धिकी वह अवस्था होती है जिसमें वह परमात्माके साथ एकात्म हो जाता है। उसे दीन-दुनियाँकी सुधि नहीं रहती। वह बहुत ऊपर उठ जाता है, इतने ऊपर की उसे कोई पकड़ नहीं पा सकता, समझ नहीं पा सकता। सब सिद्धियाँ उसकी मुट्ठी में आ समाती हैं। बोल, तुझे क्या चाहिये? अभी दिए देता हूँ। यह शक्ति आ जाती है। पर स्वयं वह मेरी तरह फक्कड़ बना रहता है और बड़े बड़े करोड़पति आकर पैर दबाते हैं। उन्हें भी टुकड़ा फेंक देता हूँ। उसीमें मगन रहते हैं।





: अष्टादशी यंत्र :

१	२	३	४	६	२६	२७	२८	२९	३१५	३१४	३१३	३१२	३११	३१०	३०९	३०८	३०७
१९	३५	३६	३७	३८	५५	५६	५७	५८	२८२	२८१	२८०	२७९	२७८	२७७	२७६	२७५	३०६
२०	४१	६५	६६	६७	६८	८५	८६	८८	२५३	२५२	२५१	२५०	२४९	२४८	२४७	२८४	३०५
२१	५१	७९	८१	९२	९३	१०६	१०७	१०८	२२८	२२७	२२६	२२५	२२४	२२३	२४६	२७४	३०४
२३	५२	८०	१०३	११३	११५	११७	१२७	१२८	२०७	२०६	२०५	२०४	२०३	२२२	२४५	२७३	३०२
२४	६०	८१	१०४	१२३	१३१	१३२	१४१	१४२	१९०	१८९	१८८	१८७	२०२	२२१	२४४	२६५	३०१
२५	६१	८२	१०५	१२४	१३९	१४५	१५१	१५३	१७६	१७७	१७३	१८६	२०१	२२०	२४३	२६४	३००
३०	६३	८९	१११	१२९	१४३	१५०	१६२	१५५	१६४	१६९	१७५	१८२	१९६	२१४	२३६	२६२	२९५
२९१	२६१	२३५	२१३	१९५	१८१	१७१	१६७	१६६	१५७	१६०	१५४	१४४	१३०	११२	९०	६४	३४
२९२	२६३	२३८	२१५	१९९	१८५	१७८	१६५	१६८	१५९	१५८	१४७	१४०	१२६	११०	८७	६२	३३
२९३	२६६	२४१	२१६	२००	१९१	१७९	१५६	१६१	१७०	१६३	१४६	१३४	१२५	१०९	८४	५९	३२
२९४	२७१	२४२	२२९	२०९	१९२	१५२	१७४	१७२	१४९	१४८	१८०	१३३	११६	९६	८३	५४	३१
३०३	२७२	२५४	२३०	२११	१३८	१९३	१८४	१८३	१३५	१३६	१३७	१९४	११५	९५	७१	५३	२२
३१६	२८३	२५५	२३१	१२२	२१०	२०८	१९८	१९७	११८	११९	१२०	१२१	२१२	९४	७०	४२	९
३१७	२८५	२५६	१०२	२३३	२३२	२१९	२१८	२१७	९७	९८	९९	१००	१०१	२३४	६९	४०	८
३१८	२८६	७८	२५९	२५८	२५७	२४०	२३९	२३७	७२	७३	७४	७५	७६	७७	२६०	३९	७
३२०	५०	२८९	२८८	२८७	२७०	२६९	२६८	२६७	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	२९०	५
१८	३२३	३२२	३२१	३१९	२९९	२९८	२९७	२९६	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	३२४

२८



शव–साधन



तन्त्र-शास्त्रके अनुसार श्मशानमें शवके ऊपर बैठकर किया जानेवाला यह साधन अब उतना प्रचलित नहीं है परन्तु एक समय तान्त्रिक समाजमें उसका विशेष प्रचार था। किस प्रकार यह शवसाधन होता था उसकी प्रणाली संक्षेपमें नीचे लिखी जाती है—

शवसाधन और काल-वीरतन्त्रमें लिखा है कि कृष्ण अथवा शुक्ल पक्षकी अष्टमी या चतुर्दशी तिथिमें वीरसाधन करें। परन्तु कृष्णपक्षमें ही विशेष भावसे वीर-साधन कर्त्तव्य है। डेढ़ प्रहर रात बीत जानेपर साधक स्थिरचित्तसे चितास्थानमें जाकर एक शव लाकर मन्त्रध्यानपरायण होकर अपने हितके लिये कार्य करे। इस समय कभी भी डरना, हँसना और इधर-उधर ताकना नहीं चाहिए, केवल मन्त्र जप करते रहना चाहिए।

भावचूडामणितन्त्रमें लिखा है कि शून्य गृहमें, नदीके किनारे, निर्जन स्थानमें, बिल्व वृक्षके नीचे, श्मशान या उसके निकटवर्त्ती वनमें कृष्ण और शुक्ल पक्षकी अष्टमी या चतुर्दशी तिथिमें मंगलवार दो पहर रातको उत्तम सिद्धिके लिये शवसाधन करे।

साधनयोग्य शव

भैरवतन्त्रमें लिखा है कि लाठी आदिके आघातसे मृत या जलमें मृत व्यक्तिका ही शव लेना कर्त्तव्य है। स्वेच्छासे स्त्रीके वशीभूत, पतित, अस्पृश्य, न्यायपथभ्रष्ट, श्मश्रुविहीन, क्लीव, कुष्ठ रोगी, वृद्ध, दुर्भिक्षमें मरा या सड़ा शव ग्राह्य नहीं है। स्त्री या स्त्रीकी तरह जिसका रूप हो वैसा शव भी सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

भावचूडामणिमें लिखा है कि जो व्यक्ति लाठी, शूल या खड्गके आघातसे या जलमें डूबकर मरा हो, वज्रपात या साँपके काटनेसे जिसके प्राण गए हों तथा चाण्डालका शव, तरुण, सुन्दर, वीर, युद्धमें निहत, समुज्ज्वल और सम्मुख युद्ध-से जो भागा न हो, ऐसे मृत व्यक्तिका शव ही प्रशस्त है।

कालीतन्त्रके मतसे चाण्डालका शव ही महाशव कहलाता है। सभी सिद्धियों-में यही महाशव प्रशस्त है।

अधिकारी

सभी व्यक्ति शवसाधनके अधिकारी नहीं हैं। तन्त्रके मतसे महाबलिष्ठ, अति बुद्धिमान्, महासाहसिक, पवित्रचेता, महास्वच्छ, दयालु और सर्वभूतके हितमें रत व्यक्ति ही शवसाधनके योग्य है।

साधन-विधि

बलिके लिये उड़द, भात, तिल, कुश, सरसों और धूपादि पूजाके उपकरण आवश्यक हैं। ये सब वस्तुएँ लेकर पूर्वनिर्दिष्ट किसी स्थानमें जावे। पहले सामान्य अर्घ्य स्थापन करके याग-स्थानका अभ्युक्षण करे। पीछे पूर्वकी ओर गुरु, दक्षिणमें गणेश, पश्चिममें वटुकभैरव और उत्तरमें ६४ योगिनियोंकी पूजा करके धरतीपर वीरार्दन मन्त्र लिखना होगा। वीरार्दन मन्त्र इस प्रकार है—



"हुं हुं ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शवशरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हुं फट्।"

इसके पश्चात्—

ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः।
पिशाचा सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरा स्त्रियः।
सिद्धिदास्ता भवन्त्यत्र तथा च मम रक्षकाः॥

इत्यादि मन्त्रोचारण कर ३ बार पुष्पाञ्जलि दे। पीछे पूर्व दिशामें श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव और महाकालकी पञ्चोपचारसे पूजा करके निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर बलि देनी होगी—

"ॐ हुं श्मशानाधिप इमं सामिषान्नबलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णपय विघ्न-निवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा।"

इस मन्त्रसे श्मशानाधिपकी तथा **'ॐ हुं भैरव भयानक इमं सामिषान्नमित्यादि'** मन्त्रसे भैरव, कालभैरव और महाकालकी बलि देनी होगी। इसके बाद—**'ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट् चट् प्रचट् प्रचट् कह कह बम बम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट् सहस्त्रारे हुं फट्'** इस अघोर सुदर्शन मन्त्रके अंतमें शिखाबंधन करके और छातीपर हाथ रखकर 'आत्मानं रक्ष रक्ष' इत्यादि मन्त्रोंसे आत्मरक्षा करें।

पीछे भूतशुद्धि और न्यासजाल करके **'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा'** यह दुर्गा-मन्त्र उच्चारण करके चारों ओर सर्षप तथा—

ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः।
पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः॥
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः॥

यह मन्त्र उच्चारण करके चारों ओर तिल छिड़ककर विहित शवके समीप उपस्थित होवे। शवके पास बैठकर **'हुं फट्'** इस मन्त्रसे शवके ऊपर अमयुक्षण करे। पीछे **'ॐ हुं मृतकाय नमः फट्'** इस मन्त्रसे ३ बार पुष्पाञ्जलि देकर शव-स्पर्श करके नमस्कार करे। प्रणाम-मन्त्र इस प्रकार है—

वीरेश परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर।
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्क शङ्कर॥
वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्च्चने॥

प्रणामके बाद **"ॐ हुं मृतकाय नमः"** इस मन्त्रसे शवका प्रक्षालन और सुगन्धित जलसे स्नान कराकर कपड़ेसे पोंछ डाले। पीछे धूप जलाकर शवकी देहमें चन्दनादि लगावे। शव यदि रक्तवर्ण हो जाय, तो वह साधकको खा डालता है। इसके बाद शवके मुँहमें जायफल, खैर, अदरक और पान भरकर उसे औंधे मुँह कर रक्खे। शवपृष्ठ-पर चन्दनादि लेपकर बाहुयूलसे कटिपर्यन्त चौकोन मण्डल बनावे। चौकोनके मध्य अष्टदल पद्म और चतुर्द्वार अंकित करके पद्ममें ॐ ह्रीं फट् यह मन्त्र और उसके साथ कल्पोक्त पीठ-मन्त्र लिखे। बादमें उसके ऊपर कम्बलादि आसन बिछा दे।



शवका कटिप्रदेश पकड़कर पूजा-स्थानमें लाना होता है। लाते समय यदि किसी प्रकारका उपद्रव

करे तो शवको थुकथुका दे तथा फिरसे प्रक्षालन करके जपस्थानमें लावे। इसके बाद द्वादशांगुल यज्ञकाष्ठ जपस्थानके दसों दिशाओंमें रखकर यथाक्रम इन्द्रादि दशदिक्पालोंकी पूजा करनी होती है।

इन्द्रकी पूजा और बलिमन्त्र

'ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय वज्रहस्ताय स्वशक्तिपारिषदाय सपरिवाराय नमः' इस मन्त्रसे पाद्य तथा **'ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मां सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा'** इस मन्त्रसे उड़द-भातकी बलि देकर **'ॐ लां इन्द्राय स्वाहा'** उच्चारण करे।

अग्निकी पूजा और बलिमन्त्र—'ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये मेषवाहनाय सपरिवाराय शक्तिहस्ताय सायुधाय नमः' इस मन्त्रसे पूर्ववत् पूजा और **'ॐ रां अग्नये तेजोधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण'** इत्यादि मन्त्रसे पूर्ववत् बलि दे।

यमका मन्त्र—'ॐ मां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय सायुधाय नमः' इस मन्त्रसे पूजा और **'ॐ मां यमाय प्रेताधिपतये इमं बलिं'** इत्यादि मन्त्र से पूर्ववत् बलि चढ़ावे।

निर्ऋतिका मन्त्र—'ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये असिहस्तायाश्ववाहनाय सपरिवाराय नमः' इस मन्त्रसे पूर्ववत् पूजा और **'ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये'** इत्यादिसे पूर्ववत् बलि दे।

वरुणका मन्त्र—'ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनाय सायुधाय नमः' इस मन्त्रसे पूजा तथा **'ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये'** इत्यादिसे पूर्ववत् बलि दे।

वायुका मन्त्र—'ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये हरिणवाहनाय अंकुशहस्ताय नमः' और **'ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये'** इत्यादिसे पूर्ववत् बलि दे।

कुबेरका मन्त्र—'ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवाराय नमः' और **'ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये'** इत्यादिसे पूर्ववत् बलि दे।

ईशानका मन्त्र—'ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय सपरिवाराय नमः' और **'ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये'** इत्यादिसे पूर्ववत् बलि दे।

ब्रह्माका मन्त्र—'ॐ इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवाराय सायुधाय नमः' और **'ॐ इन्द्रेशानयोमध्ये आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये'** इत्यादि से पूर्ववत् बलि दे।

अनंतका मन्त्र—'ॐ नैर्ऋतवरुणयोर्मध्ये ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः' और **'ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये'** इत्यादिसे पूर्ववत् बलि दे।



दस दिक्पालोंके उद्देश्यसे पूजा-बलि देनेके बाद सर्व भूतके उद्देश्यसे बलि दें। सभी जगह सामिषान्न बलि देनेकी विधि है। इसके बाद अधिष्ठात्री देवता, चौंसठ योगिनी और डाकिनियोंके उद्देश्यसे भी बलि देनी होती है।

इसके बाद साधक अपने पास पूजाद्रव्य और कुछ दूरमें इतर साधनको रखकर **'ॐ ह्रीं फट् शवासनाय नमः'** इस मन्त्रसे शवकी पूजा करे। पीछे **'ह्रीं फट्'** यह मन्त्र पढ़कर अश्वारोहण क्रमसे शवपृष्ठपर बैठकर अपने पैरके नीचे कुछ कुश रक्खे तथा शवके केशको फैलाकर, जूड़ा बाँधकर गुरु, गणपति और देवीको प्रणाम करे। इसके बाद प्राणायाम और षडङ्गन्यास करके पूर्वोक्त वीरार्दन मंत्र पढ़कर दसों दिशाओंमें ढेले फेंककर सङ्कल्प करे। **'अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुक देवतायाः सन्दर्शनकामः अमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये'** संकल्पके बाद **'ॐ ह्रीं आधारशक्त्यै कमलासनाय नमः'** इस मन्त्रसे आसनकी पूजा करके अपने वामभागमें शवके निकट अर्घ्य रखकर पूजा करे। पीछे साधक यथाशक्ति षोडशोपचार, दशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे देवीकी पूजा करके शवके मुखमें सुगन्धित जलसे तर्पण करे, इसके बाद उठकर शवके सामने खड़े होकर यह मंत्र पढ़े—**'ॐ वशो मे भव देवेश मह्यं वीरसिद्धिं देहि देहि महाभाग कृताश्रयपरायण'**।

अनन्तर पाटके सूतसे शवके दोनों पैर बाँधकर मूलमंत्रसे शवदेहको मजबूतीसे बाँध रक्खे। मंत्र इस प्रकार है—

ॐ मद्वशो भव देवेश वीरसिद्धिकृतास्पद।
ॐ भीम भीरु भयाभाव भवमोचन भावुक॥
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप॥

यह मंत्र पढ़नेके बाद शवके पादमूलमें त्रिकोण यन्त्र अंकित करें। शवके ऊपर बैठकर उसके दोनों हाथ फैलाकर उसपर कुश बिछा दें। उस कुशके ऊपर साधक पैर रखकर फिरसे तीन बार प्रणाम करे और शिरःस्थित पथसे गुरुदेवका तथा अपने हृदयमें देवीका ध्यान करते करते दोनों ओर संपुटकी तरह निर्भय हृदयसे मौन भावमें विहित माला ले श्मशानसाधनके क्रमानुसार जप करे। इस प्रकार जप करनेसे भी यदि आधी राततक कुछ दिखाई न पड़े तो फिरसे पूर्ववत् सरसों और तिल फेंककर उपविष्ट स्थानसे सात कदम आगे जाकर पुनः जप कर। जपकालमें शवके हिलनेपर डरना नहीं चाहिए। यदि डर मालूम हो तो इस प्रकार कहे— **"दिनान्तरे कुञ्जरादिकं दास्यामि मम स्थाने स्वनाम कथय"** अर्थात् दूसरे दिन गजादि दूँगा, तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है। साफ़ साफ़ कहो। इस प्रकार संस्कृतमें कहकर फिरसे निर्भय होकर जप शुरू कर दे। मधुर वाक्यसे यदि शव अपना नाम बतावे तो साधकको भी फिर इस प्रकार कहना चाहिए— प्रतिज्ञा करो कि तुम मुझे वर दोगे, इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध करके साधक वर माँगे। यदि प्रतिज्ञा न करे और वर भी न दे तो ऐकान्तिक मनसे फिर जप करे। शव अपना मुँहँ ऊपर घुमाकर कभी हाथी-घोड़े, कभी धन, कभी स्त्री, कभी और कुछ देनेको कहेगा पर उसका उत्तर नहीं देना चाहिए। जब अपना इष्ट वर दे तभी संतुष्ट होना चाहिए। किन्तु प्रतिज्ञा करके वर देनेमें राज़ी होनेपर फिर जपकी जरूरत नहीं। ऐसी हालतमें अभीष्ट वर लेकर कार्य सिद्ध हुआ समझना चाहिए। पीछे शवका जूड़ा खोलकर उसे धो डाले और दूसरी जगह रखकर शवके पैर भी खोल दे। इसके बाद पूजोपकरणको जलमें फेंककर तथा शवको भी जल या गर्त्तमें डालकर साधक स्नान करे।



साधक घर आकर शवके प्रार्थनानुसार दूसरे दिन प्रतिश्रुत हाथी, घोड़े, आदमी या सूअरकी पिष्टमय बलि चढ़ाकर उपचार करे। बलिमन्त्र इस प्रकार है—

अन्तिमरात्रौ येषां यजमानोऽहं ते गृह्णन्त्विमा बलिम्।

दूसरे दिन साधक प्रातःकृत्यादि नित्यक्रिया करके पञ्चगव्य पान करे तथा २५ ब्राह्मण-भोजन करावे। अक्षम होनेपर शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन करानेमें भी दोष नहीं। ब्राह्मण-भोजन हो जानेपर साधक स्नान करे, बादमें भोजन करके उत्तम आसनपर जा बैठे। मन्त्रसिद्धिके बाद तीन या नौ राततक उसे गोपन रक्खे। किसीको भी मन्त्र-सिद्धिकी बात न कहे। मन्त्रसिद्धिके बाद स्त्री-शय्यापर जानेसे व्याधिग्रस्त, गीत सुननेसे बधिर, नाच देखनेसे अंध और दिनको बोलनेसे साधक मूक हो जाता है। पाँच दिनतक साधकको सभी काम-काज छोड़ देने होंगे। इस समय साधकके शरीरमें देवी वास करती हैं। एक पक्षतक साधक गंधपुष्प न ले, बाहर जानेका यदि मौका हो तो परिधेय वस्त्र छोड़कर दूसरा वस्त्र पहने, गो-ब्राह्मणकी निन्दा, अथवा दुर्जन, पतित और क्लीवको भी स्पर्श न करे, सवेरे नित्यकर्मके बाद विल्वपत्रोदक पान करे, सोलहवें दिन गंगास्नान करके स्वाहान्त मन्त्र उच्चारण करके तीन सौ बार जलसे देवताओंका तर्पण करे। तर्पणके अन्तमें नमः कहना होता है। स्नान और पितृ-तर्पण किए बिना देवतर्पण नहीं करना चाहिए। अनन्तर दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करना होता है। उक्त प्रकारसे शवसाधन करनेपर साधक सिद्धि-लाभ करते हैं तथा इस लोकमें उत्कृष्ट भोगकर अन्तमें हरिपद जाते हैं।

शव-साधनका विधान बड़ा बीभत्स, भयानक और दुःसाध्य होता है क्योंकि एक तो निर्दिष्ट विधानके अनुकूल शव कभी प्राप्त नहीं हो पाता और दूसरे कोई ऐसा निर्जन, नीरव, एकान्त स्थानवाला श्मशान नहीं मिल पाता जहाँ कोई आता-जाता न हो। सबसे भयावह बात यह है कि ऐसा कोई सिद्ध गुरु नहीं रह गया जो शव-साधनमें पथ-प्रदर्शक हो सके और यदि कहीं इस साधनमें किसी प्रकारकी त्रुटि हो जाय तो तत्काल साधककी मृत्यु हो जाती है। कभी कभी शव बिना कुछ बोले अपना मुँहँ खोल देता है। उसे तत्काल अपने दाहिने हाथका अंगूठा चीरकर उसके मुँहँमें रक्त टपका देना चाहिए अन्यथा वह भयंकर उपद्रव करके साधकका गला घोटने लगता है। यों भी यह बड़ा अमंगल कार्य है जिसमें कभी प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।





२६



परकाया-प्रवेश



भारतीय इतिहासमें ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ किसी व्यक्तिने स्वयं अपना शरीर छोड़कर किसी दूसरे मृत शरीरमें प्रविष्ट होकर उसे जीवित कर दिया और उस जीवित शरीरके द्वारा उसने कुछ अपना कार्य सिद्ध कर लिया। आद्य शंकराचार्यजीके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि जब वे पंडित मण्डनमिश्रकी पत्नी 'भारती'से शास्त्रार्थमें हार गए तब उन्होंने उनसे अवकाश माँगकर अपने शरीरको सुरक्षित रखवाकर अपना सूक्ष्म शरीर तत्काल मृत राजा अमरुकके शरीरमें प्रविष्ट कर दिया।

हृदयके दुर्बल लोगों और बालकोंपर जो प्रेतका आवेश हो जाता है वह स्थायी नहीं होता, कुछ समयके लिये होता है और उस प्रेताविष्ट अवस्थामें वह बकझक करता है, अपना परिचय देता है, कुछ माँग करता है। ओझा और सोखा लोग झाड़-फूँककर ऐसे प्रेतोंका आवेश दूर कर देते हैं या उन्हें किसी अन्य प्रकारसे भगा देते हैं; किन्तु परकाया-प्रवेशकी स्थिति इससे भिन्न होती है।

परकाया-प्रवेश कई प्रकारसे होता है। या तो आद्य शंकराचार्यजीके समान अपना शरीर सुरक्षित रखवाकर कोई व्यक्ति दूसरे मृत शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है या पहला शरीर पूर्णत: छोड़कर किसी अन्य सद्य:मृत शीररमें प्रविष्ट होकर अपनी साधना चलाता है, किन्तु ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ कोई व्यक्ति सशरीर किसी दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट हो गया हो जैसे विदुरजी सशरीर युधिष्ठिरके शरीरमें प्रविष्ट हो गए थे।

जिस प्रकार भूत, प्रेत आदिका किसी पुरुष, स्त्री या बालकपर आवेश होता है, वैसा ही किसी देवता या देवीका आवेश उस देवता या देवीके भक्त या पुजारीपर किसी विशेष दिन, पर्व या मुहूर्त्तपर हो जाता है जिसमें वह व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत चेतना खोकर हबुआने अर्थात् बड़े वेगसे झूमने, सिर हिलाने लगता है। उस अवस्थामें उससे जो प्रश्न किए जाते हैं उनका भी वह उत्तर देता है। ये उत्तर कभी कभी ठीक भी निकलते हैं। भारतवर्षमें ऐसे बहुतसे मन्दिर, देवस्थान और तीर्थ हैं जहाँ इस प्रकारके देवाविष्ट लोग अनेक प्रकारकी क्रियाएँ करते हैं। प्राय: देवी, हनुमान्, भैरव, नृसिंह आदि देवताओंके भक्त इस प्रकारसे देवाविष्ट हुए मिलते हैं, किन्तु यह आवेश भी कुछ ही समयतक रहता है और विशेष अवसरोंपर ही उसकी अभिव्यक्ति होती है।

परकाया-प्रवेशमें तो कोई जीवित व्यक्ति अपना शरीर सुरक्षित छोड़कर किसी दूसरे सद्य:मृत, स्वस्थ, सुन्दर, हट्टे-कट्टे, शक्तिशाली, पराक्रमी और विशिष्ट महापुरुषके शरीरमें ही प्रविष्ट होकर अपना संस्कार सिद्ध करता है और फिर अपना कार्य सिद्ध करके उस शरीरमेंसे निकलकर पुन: अपने शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। कुछ ऐसे भी साधक हैं जो अपना शरीर पूर्णत: छोड़कर दूसरे सुन्दर, सुपुष्ट शरीरमें प्रविष्ट होकर अपनी साधना चलाए रखते हैं। यह क्रिया कोई सामान्य पुरुष नहीं कर सकता। किसी विशेष उद्देश्यसे कोई योगी ही इस प्रकारसे परकाया-प्रवेश करता है और यदि उस शरीरसे भी उसे अपनी साधना सफल होती दिखाई नहीं देती तो वह किसी अन्य शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। यह क्रिया कोई सशक्त योगी या दिव्य पुरुष ही कर सकता है।

परकाया-प्रवेशके समान ही दूसरी क्रिया है-बहुकायाधारण अर्थात् एक शरीर होनेपर भी वैसे ही अनेक शरीर बना लेना।



भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भागवतमें लिखा है कि एक बार नारदजीको जब यह जिज्ञासा हुई कि अपनी सोलह हज़ार एक सौ आठ रानियोंके साथ भगवान् कृष्ण कैसे रहते हैं तब द्वारकामें

उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी अनेक रानियोंके भवनोंमें दौड़ दौड़कर जाकर देखा कि कहीं वे हवन कर रहे हैं, कहीं बालक खिला रहे हैं, कहीं चौसर खेल रहे हैं, कहीं घुड़सवारी कर रहे हैं आदि। अर्थात् भगवान् कृष्णने अपनी योग-शक्तिसे अपने इतने सहस्र रूप बना रक्खे थे कि वे सब रानियोंके साथ अपने अलग अलग रूपोंमें निवास और व्यवहार करते थे। इस प्रकारके बहुरूप-निर्माणके अधिक प्रमाण नहीं प्राप्त होते किन्तु परकाया-प्रवेशके अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे विवरण तो अनेक मिलते हैं जहाँ कोई मृत व्यक्ति अपने परिवारमें जाकर जनम ले लेता है, किन्तु यह क्रिया परकाया-प्रवेशकी नहीं है। यह तो पुनर्जन्मके सिद्धान्तका पोषण करनेवाली घटना है। एक बार डा. ऐनी बेसेण्टने देखा कि काशीके सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके एक अध्यापकने किसी छात्रको पीट दिया। उन्होंने तत्काल उन अध्यापक महोदयको बुलाकर अत्यन्त भावाविष्ट होकर कहा, 'मित्र! यह तुमने क्या किया? तुमने तो एक राम, एक कृष्ण और एक बुद्धको पीट दिया।' तात्पर्य यह है कि हम लोग क्रोधमें आकर किसी भी बालकको अपशब्द कह देते हैं, पीट देते हैं, उसके प्रति दुर्व्यवहार भी करते हैं; किन्तु यह नहीं समझते कि न जाने इस बालकके भीतर किस पूर्व महापुरुषका आत्मा विराजमान है।

परकाया-प्रवेशकी विधि

परकाया-प्रवेश एक विशिष्ट यौगिक क्रिया है जो केवल सद्गुरुसे शिक्षा पाया हुआ कोई पहुँचा हुआ योगी ही कर सकता है। उसकी प्रणाली यह बताई गई है—

जब कोई योगी यह देखता है कि मेरा शरीर साधनाकी व्यथा नहीं सहन कर पा सक रहा है तब यह प्रतीक्षा करता रहता है कि कोई सशक्त, बलिष्ठ, पराक्रमी और सुन्दर व्यक्ति शरीर छोड़े तो उस शरीरमें प्रविष्ट हो जाया जाय। इस क्रियाके लिये वह योगी अपने प्राणको ऊपर मस्तिष्कमें (सहस्रार-चक्रमें) ले जा चढ़ाता है और इस प्रकार वह अपनी देहको सप्राण ऊपर मस्तिष्कमें चढ़ा लेता है। समाधि-अवस्थामें पहुँचे हुए योगीका आत्मा तो स्थूल और सूक्ष्म शरीरके सब तत्त्वोंसे भिन्न होकर परमानन्दमें लीन हुआ रहता है किन्तु परकाया-प्रवेशका इच्छुक योगी अपने सूक्ष्म शरीरको लेकर अपेन पूर्व शरीरको ज्योंका त्यों सप्राण छोड़कर किसी दूसरे सशक्त शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है और फिर उस शरीरके द्वारा वह अपना जो उद्देश्य सिद्ध करना चाहता है उस उद्देश्यकी सिद्धिके पश्चात् वह पुन: अपने पूर्व शरीरमें लौट आता है। यदि किसी प्रकार वह पूर्व शरीर जला दिया जाता या नष्ट कर दिया जाता है तब वह दूसरे शरीरमें ही रह जाता है। दूसरी प्रक्रियामें योगी पूर्णत: अपने सूक्ष्म शरीरको लेकर पूर्व शरीरसे निकल आता है और किसी सद्य:मृत राजा, तपस्वी, सिद्ध, साधक, धर्मात्मा या अन्य किसी पुरुषके शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है जिससे वह मृत पुरुष तत्काल जीवित हो उठता है।

परकाया-प्रवेशकी पद्धतिसे जो योगी दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है वह अपने समस्त संस्कार, स्वभाव और गुणोंके साथ दूसरे शरीरमें चला जाता है। दूसरे शरीरका जो संस्कार, स्वभाव या गुण होता है वह इस प्रविष्ट आत्माके संस्कार, गुण और स्वभावसे पूर्णत: भिन्न होता है, इसीलिये जब अमरुकके शरीरमें आद्यशंकराचार्यजीने प्रवेश किया तब उनके मंत्रियोंको यह विश्वास हो गया कि राजा अमरुक नहीं जीवित हुए वरन् कोई दूसरा महापुरुष उनके शरीरमें प्रविष्ट हो गया है और उन्होंने निश्चय किया कि राज्य-भरमें देखा जाय कि कहीं कोई शरीर सुरक्षित तो नहीं रक्खा हुआ है। यदि



हाँ, तो उसे नष्ट कर दिया जाय जिससे राजा अमरुक दीर्घ कालतक जीवित रहें।

इसी प्रकार कभी कभी किसी मृत शरीरको जलाने या गाड़नेसे पूर्व उसमें किसी अन्य प्रेतात्माका भी प्रवेश हो जाता है जिससे वह व्यक्ति जीवित हो उठता है और उस प्रेतके पिछले जन्मके गुण, स्वभाव और संस्कारके अनुसार कार्य और व्यवहार करने लगता है।

परकाया-प्रवेश स्वतः एक विज्ञान है, जिसका प्रयोग वे ही लोग कर सकते हैं जो अपने सूक्ष्म शरीरको अपनी इच्छाके अनुसार किसी भी दूसरे शरीरमें प्रविष्ट कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त परकाया-प्रवेशके समान ही कुछ और भी विलक्षण क्रियाएँ हैं जैसे अन्य लोगोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो जाना, एक ही समयपर कई स्थानोंपर पहुँच सकना, आकाशचारी होना, क्षण-भरमें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँच जाना आदि। नारद, गरुड और हनुमान्‌जीके सम्बन्धमें तो ऐसी कथाएँ प्रसिद्ध ही हैं; किन्तु और भी बहुतसे लोगोंके सम्बन्धमें इस प्रकारके उल्लेख मिलते हैं।

परकाया-प्रवेशकी शास्त्रीय क्रिया

महर्षि पतञ्जलिके अनुसार इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें चित्तको प्रवृत्त करनेवाली चित्तवाहा नाडीके स्वरूप और चित्तके परिभ्रमण-मार्गको जान लेनेसे साधकके चित्त (सूक्ष्म शरीर)-का दूसरे जीवित या मृत व्यक्तिके शरीरमें आवेश हो जाता है। भोजवृत्तिके अनुसार चित्तवाहा नाडीके स्वरूपको जानकर योगी किसी भी प्राणीके शरीरमें अपने चित्त या सूक्ष्म शरीरका प्रवेश करा सकता है। चित्त अर्थात् सूक्ष्म शरीरके साथ सब सूक्ष्म इन्द्रियाँ भी दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट हो जाती हैं। यही बात व्यास-भाष्यमें भी कही गई है। योगवाशिष्ठके अनुसार रेचक प्राणायामका अभ्यास करके मुख-द्वारा ऊपर ऊपर १२-१२ अंगुल-तकके प्रदेशमें शरीरके भीतर प्राणको देरतक स्थिर रखनेकी शक्ति आनेपर योगी अन्य शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है। शौनक ऋषिके अनुसार परकाया-प्रवेश और कामोर्ध्व-गमनकी सिद्धिके लिये इडा-पिंगला-सुषुम्णाको साधना चाहिए और सुषुम्णादि सात सूक्त और निवर्त्तध्मसे प्रारम्भ होनेवाले सात सूक्तोंका पाठ करते रहना चाहिए। यह परकाया-प्रवेशकी साधना मार्गशीर्ष माससे प्रारम्भ की जानी चाहिए जिससे ११ महीनोंमें परकाया-प्रवेशकी सिद्धि हो जाती है।

श्रीशङ्कराचार्यजीके मतसे नीचे दिए गए विधानके अनुसार सौन्दर्य-लहरीका ८०वाँ श्लोक नित्य एक सहस्र बार जपनेसे परकाया-प्रवेशकी सिद्धि हो जाती है।

श्लोक यह है—

कुचौ सद्यः स्विद्यत्तटघटितकूर्पाभिदुरौ।
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता।
तव त्रातुं भङ्गादुदरमवलग्नं तनुभुवा।
त्रिधा नद्धं देवि त्रिवलिलवलीवल्लिभिरिव।।



तन्त्रशास्त्रके अनुसार प्रातःकाल आकाश-तत्त्वके उदय होनेकी स्थितिमें निरन्तर आकाश-तत्त्वको भली प्रकार समझकर सिद्ध किया जाय। जब आकाश-तत्त्व अपने अधिकारमें आ जाय, तब खेचरी

मुद्रा सिद्ध करनेपर परकाया-प्रवेशकी शक्ति आ जाती है। एक विधि यह भी बताई गई है कि दोनों भौंहोंके बीचमें त्राटक साधते हुए यह भावना की जाय कि मैं और मेरा सूक्ष्म शरीर इस स्थूल शरीरसे बाहर जा रहा है। प्रबल इच्छा-शक्तिसे नियमित प्रतिदिन यह भावना करनेसे यथासमय सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरसे निकलकर किसी भी दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जा सकता है।

पाश्चात्य परलोक-तत्त्ववेत्ताओंका मत है कि स्वप्न-नियंत्रणकी साधना करनेसे सूक्ष्म शरीरका स्थूल शरीरसे प्रादुगमन हो सकता है। इस सिद्धिके लिये साधनाके आरम्भमें ही साधक यह सोचकर सो जाता है कि मैं आज अमुक स्वप्न देखूँगा या अमुक व्यक्तिसे मिलूँगा या अमुक स्थानपर जाऊँगा या अमुक कार्य करूँगा। यह अभ्यास तबतक निरन्तर करते रहना चाहिए जबतक साधक अपनी भावनाको स्वप्नमें पूर्णत: देख नहीं लेता। इस भावनाको दृढ करनेसे साधकका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरसे निकलकर जिसके पास चाहे उसके पास जाकर वार्त्ता कर सकता है।

भगवान् शङ्कराचार्यजीने तो सुधन्वा (अमरुक)-के मृत शरीरमें प्रवेश किया ही था। एक कथा योगवाशिष्ठमें आई है कि राजा शिखिध्वजको समाधिसे हटानेके लिये उनकी पत्नी चुडाला अपना शरीर वहीं छोड़कर अपने पतिके अन्त:करणमें प्रविष्ट हो गई थी अर्थात् उसके पतिका सूक्ष्म शरीर भी वही था और चुडालाका भी। इसी प्रकार पद्मके मृत शरीरमें राजा विदूरथका सूक्ष्म शरीर प्रविष्ट हो गया था और राजा पद्म जीवित हो उठे थे।

गोरख छबीलेके अनुसार गौरी ही मक्खीका रूप धारण करके गोरखनाथजीके उदरमें प्रविष्ट हो गई थी। नाथ-चरित्रके अनुसार जब मत्स्येन्द्रनाथ टहलते हुए एक नगरमें गए तो देखा कि एक राजाका शव जा रहा है। उन्होंने अपना शरीर शिष्योंको सौंपकर उस मृत राजाके शरीरमें प्रवेश कर लिया जिन्हें फिर गोरखनाथने यह कहकर चेतावनी दी-'जाग मछिन्दर गोरख आया'। नाथ-पुराणके अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ कामरूपमें तप करते समय किसी मृत राजाके शरीरमें प्रविष्ट हो गए थे।

इस प्रकारकी सिद्धिके लिये किसी सिद्ध योगीका ही आश्रय लेना चाहिए। केवल पुस्तकके सहारे इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। वास्तवमें जो सिद्ध योगी होते हैं उन्हें परकाया-प्रवेशकी आवश्यकता ही नहीं होती। वे अपने शरीरको स्वस्थ और चिरजीवी बनाए रखकर अपनी साधना चलाए रख सकते हैं।

पुनर्जन्मकी जितनी भी घटनाएँ हैं, वे सब परकाया-प्रवेशकी ही हैं। उनके अध्ययनसे यही सिद्ध होता है कि सूक्ष्म शरीर (जीवात्मा) अत्यन्त सशक्त है। वह जब चाहे जिस शरीरमें स्वयं प्रविष्ट हो सकता है।

इस सिद्धान्तको मान लेनेपर कर्मवादका सिद्धान्त शिथिल हो जाता है। हमारे यहाँ माना जाता है कि जो व्यक्ति जैसा पाप या पुण्यके कार्य करता है या अन्त समयमें उसकी जैसी मति होती है उसीके अनुसार उसके सूक्ष्म शरीरको भोग भोगना पड़ता है; किन्तु पुनर्जन्मके जो असंख्य उदाहरण मिले हैं, उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि उनके कर्मके अनुसार जन्म मिला। उनसे सीधे सीधे यही निष्कर्ष निकलता है कि जब उनका सूक्ष्म शरीर उनके स्थूल शरीरसे निकला तब वे किसी दूसरे शरीरमें जा प्रविष्ट हुए। कुछ उदाहरण ऐसे भी मिले हैं कि वे बहुत दिनोंतक प्रेत-योनि भोगते रहे। जो अतृप्त आत्मा होते हैं अर्थात् जो सूक्ष्म शरीर अतृप्त होकर निकलता है वह अपनी तृप्तिके लिये भटकता



रहता है और जब वह तृप्त हो जाता है तब वह प्रेत-योनिसे मुक्त हो जाता है। यह कहा गया है कि बदला लेनेके लिये भी कोई जन्म ले लेता है। ऐसे सात प्रकारके पुत्रोंका विवरण मिलता है जो बदला लेनेके लिये जन्म लेते हैं। (१) अपने पूर्व जन्मकी रक्खी धरोहर लेनेके लिये, (२) अपने पूर्व जन्मका ऋण चुकानेके लिये, (३) पूर्व जन्मका वैर निकालनेके लिये, (४) पूर्व जन्ममें प्राप्त अपकारके बदलेमें अपकार करनेके लिये, (५) पूर्व जन्ममें प्राप्त सेवा-सुख देनेके लिये, (६) पूर्व जन्मका ऋण उगाहनेके लिये, (७) पूर्व जन्ममें प्राप्त उपकारके बदलेमें उपकार करनेके लिये और (८) निरपेक्ष। इनमें जो जिस कामके लिये पुत्र बनकर आता है, वह अपना काम पूरा करके मर जाता है या जीवित रहकर बदला लेता रहता है। किन्तु जो अनेक उदाहरण मिले हैं उनमें बदला लेनेके लिये उत्पन्न कोई नहीं मिला।

चैतन्य महाप्रभु एक दिन जगन्नाथपुरीमें वहाँके गरुडस्तम्भके पीछेसे दर्शन न करके सीधे मन्दिरके भीतर बढ़े चले गए। उनके भीतर जाते ही मन्दिरके द्वार अपने आप बन्द हो गए और वे जगन्नाथजीके विग्रहमें लीन हो गए।

मीराँबाईके सम्बंधमें भी प्रसिद्ध है कि डाकोर (राजस्थान)-में जो रणछोड़जीकी मूर्त्ति है, उनके सामने एक दिन मीराँबाई तल्लीन होकर गा और नाच रही थीं। सहसा एक दिव्य ज्योति भगवान्के श्रीविग्रहसे निकली और उसने मीराँबाईको अपने बाहुपाशमें लपेट लिया। वे उसी ज्योतिमें समा गईं। अब भी मीराँबाईका चीर मूर्त्तिके बगलमें लटका हुआ है।

परकाया-प्रवेशकी घटनाएँ

दक्षिण भारतके ही प्रसिद्ध सन्त तिरुमुलु नायनार घूमते-घामते जब कावेरी नदीके तटपर पहुँचे तो देखा कि बहुतसे पशु, गाय, बछड़े अपने ग्वाले मूलनकी मृत्यु हो जानेपर, उसके शवको घेरकर करुण विलाप कर रहे हैं, डकर रहे हैं। इस घटनासे तिरुमुलु इतने अधिक द्रवित हुए कि उन्होंने अपना शरीर एक सुरक्षित स्थानपर छोड़ दिया और अपने योगबलसे मूलनके मृत शरीरमें प्रविष्ट हो गए। यह देखकर सब गाय और बछड़े प्रसन्न हो उठे। साँयकाल उस गोधनके पीछे-पीछे गाँवँमें जाकर चौराहेपर ही मूलनके शरीरमें स्थित तिरुमुलु खड़े हो गए। मूलनकी पत्नीके आनेपर उन्होंने उनसे कहा कि आजसे हमारा-तुम्हारा शारीरिक सम्बन्ध समाप्त हो गया है। कुछ दिनोंतक उस गाँवँके एक मठ में रहकर अपने शरीरका पता न चलनेपर वे तिरु अवदत्ततरेमें आकर शिवकी उपासना करते हुए शेष जीवन वहन करते रहे।

पुराणोंमें प्रह्लाद, नारद, बलि, नल-दमयन्ती, कुब्जा, कालियनाग, काकभुशुण्डि और पूतना आदिके पुनर्जन्मकी कथाएँ प्राय: मिलती हैं। योगवाशिष्ठमें चुडालाकी कथा दी गई है कि वह योगिनी परकाया-प्रवेशकी कला जानती थी। एक बार जब उनके पति शिखिध्वज समाधिस्थ हो गए, उन दिनों वह कुम्भ नामक एक व्यक्तिके शरीरमें प्रविष्ट होकर तो दिनमें राजाकी देखभल करती थी और रात्रिमें मदनिका नामक उनकी जीवन-संगिनीके रूपमें उनकी सेवा करती थी। अन्तमें चुडाला अपना शरीर वहीं छोड़कर अपने पतिके शरीरमें प्रवेश कर गई और अपने स्वामीको चेतन करके फिर निकलकर अपने शरीरमें आ गई।



आद्य शंकराचार्यजीके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि जब उन्होंने मिथिलाके प्रसिद्ध विद्वान् मण्डनमिश्रको

हरा दिया तब उनकी पत्नी भारतीने शास्त्रार्थ करनेका प्रस्ताव किया और कामशास्त्रपर प्रश्न पूछने आरम्भ किए। शङ्कराचार्यजीने समय माँगा और वे तत्काल मृत नवयुवक राजा अमरुकके शरीरमें प्रविष्ट हो गए जहाँ उन्होंने कामशास्त्रका अध्ययन और अनुभव किया। फिर आकर उन्होंने अपने शरीरमें प्रविष्ट होकर पंडित मण्डनमिश्रकी पत्नी भारतीको भी हरा दिया।

मृत्यु-पश्चात् परकाया-प्रवेश

पिलखुआके श्रीरामशरणदासजीने मुज़फ़्फ़रनगर ज़िलेके रसूलपुर जाटानके चौधरी गिरधारीसिंहके लड़के जसबीरसिंहके बारेमें लिखा है कि ३ वर्ष ४ महीनेका होनेपर चेचकसे उसकी मृत्यु हो गई। ज़िला मुज़फ़्फ़रनगरके ही ग्राम बहेड़ीके पास रोहना मिलके चौधरी शंकरलाल त्यागीका २३-२४ वर्षका युवा पुत्र शोभाराम दो लड़कियों और एक लड़केको छोड़कर एक बारातमें जाते समय रथसे ऐसा गिरा कि उस झटकेमें पहियेके नीचे आ गया और रातको रुहाना मिलके अस्पतालमें मृत्यु हो जानेपर उसका दाह-संस्कार भी कर दिया गया। यह घटना ठीक उसी दिनकी है जिस दिन रसूलपुर जाटान गाँवँके गिरधारीसिंहका पुत्र जसबीर चेचकसे मरा था। अगले दिन जब जसबीरके घरवाले उसका अन्तिम संस्कार करनेके लिये ले जाने लगे तब उन्होंने देखा कि उसके शरीरमें जीवनका संचार हो गया है और वह स्वस्थ हो गया है, पर उसे देखकर सबको यही आश्चर्य हुआ कि उसके शरीरमें किसी दूसरेका जीवात्मा प्रविष्ट हो गया है। वास्तवमें वह शोभाराम त्यागीका जीवात्मा था। अब वह बालक निरन्तर कहने लगा कि यह मेरा घर नहीं है, बहेड़ी मेरा गाँवँ है, मैं त्यागी ब्राह्मण हूँ, मैं तुम्हारे यहाँका खाना नहीं खाऊँगा आदि। जब वह बहेड़ी गाँव लाया गया तब उसने वहाँ सबको पहचान लिया। अब वह जसबीर कभी बहेड़ी, कभी रसूलपुर जाटानमें रहता है, पर उसका मन बहेड़ीमें ही लगता है। इतना ही नहीं, उसने यह भी बताया कि जब मैं रथके नीचे आकर निष्प्राण हो गया तो तत्काल रसूलपुर जाटानमें पड़े हुए गिरधारीसिंह जाटके पुत्र जसबीरके शरीरमें जा घुसा।

यह भी एक प्रकारसे परकाया-प्रवेशकी ही घटना है।

भारतीय सेनाके भूतपूर्व प्रधान सेनापति एल.पी. फ़ैरलने लिखा है कि आसाम-बर्माकी सीमापर एक नदीके तटपर खड़े होकर मैंने देखा कि एक नवयुवकका शव बहा चला जा रहा है। इतनेमें उस पारके घने जङ्गलसे निकलकर सक अस्थिपंजर-मात्र वृद्धने उस शवको बाहर निकाला और निकालकर वह उसे एक पेड़के पीछे ले गया। इतनेमें हम देखते क्या हैं कि नीली पोशाकमें वह शव जीवित होकर चला आ रहा है। मैंने सिपाही भेजकर उसे बुलवाया तो उसने कहा कि वह बूढ़ा आदमी मैं ही हूँ, मैं इस जवान शरीरमें आ पहुँचा हूँ। मैं दूसरे शरीरमें प्रवेश करनेकी विद्या जानता हूँ। मैंने उस नवयुवक बने हुए वृद्धको अपने यहाँ ठहरनेको कहा, पर वह उसी रात वहाँसे चला गया। वह कहाँ चला गया इसका कभी कोई ज्ञान नहीं हो पाया।

उन्होंने ही एक दूसरी घटना श्रीचम्पानाथ योगीके सम्बन्धमें लिखी है जो जम्मूमें उनके पास आते थे। वे ६० वर्षके थे पर अचानक किसीने उनको मदिरा पिला दी, जिससे वे दुर्बल हो गए। एक दिन रातके समय उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे साथ क़ब्रिस्तानपर चलो। उसी दिन मुसलमान रँगरेज़का एक सुन्दर जवान लड़का मरनेपर वहाँ लाकर गाड़ दिया गया था। योगीने मुझसे कहा कि मैं तुम्हारे चारों ओर रेखा खींचे देता हूँ, इससे बाहर न निकलना चाहे कुछ भी हो और मुझे एक बोतल शराब, एक कटोरा मांस और एक कटोरा खीर देकर कहा कि जो जो वस्तु मैं माँगता चलूँ, वह वह देते



रहना। उन्होंने क़ब्रके पास धरती साफ़ की, कब्र खोदकर उस शवको निकाला और स्वयं उस साफ़ की हुई धरतीपर उसे लिटा दिया तत्पश्चात् वे वहीं पास ही लेट गए। तब उस जीवित हुए युवकने मुझे पुकारा, मैं अपने स्थानपर डटा रहा। जब उसने मेरी ओर हाथ बढ़ाकर सब वस्तुएँ खा-पी लीं तब वह मुझे बुलाने लगा। मैंने कह दिया कि मैं नहीं आ सकता। वह स्वयं मेरे पास आया और मेरी सहायतासे उस वृद्ध योगीका शरीर उसी क़ब्रमें गाड़कर बोला-मैं जाता हूँ, १०-१२ वर्ष पश्चात् तुमसे मिलकर पुरस्कार दूँगा। थोड़े दिनोंके पश्चात् मुझे ज्ञात हुआ कि उस मृत लड़केके मकानके सामने रहनेवाला एक सुनार जब अमृतसरमें अपनी ससुराल गया तब वहाँ उसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछनेपर उसने कहा कि पिताजीसे अनबन हो जानेसे मैं यहाँ चला आया हूँ। रातमें वह लड़का (योगी) उसके यहाँ सोया पर सबेरे ही उठ कर चला गया। जब उसने उसके पिता रँगरेजसे यह बात कही और उन्होंने जाकर क़ब्र खोदी तो देखा कि वहाँ एक बूढ़ेका शरीर पड़ा हुआ है।

शरीर-लोप

महाभारतके युद्धमें जब द्रोणाचार्यका सिर धृष्टद्युम्नने काट लिया तब उनका शरीर लुप्त हो गया, मिला नहीं। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका शरीर भी किसी-को नहीं मिल पाया।

कश्मीरकी योगिनी लल्लेश्वरीकी दृष्टिमें कोई भी पुरुष नहीं था, सब शिवकी उपासिकाएँ थीं। एक दिन ज्यों ही सूफ़ी सन्त शाह हमदानीको उन्होंने देखा त्यों ही वे 'पुरुष' चिल्लाकर झट दौड़ी और एक धधकते तन्दूरमें जा कूदीं। हमदानीने उनका पीछा करते हुए तन्दूरवालेसे पूछा तो उसने कहा कि तन्दूरमें पड़कर तो वे राख हो गई होंगी। किन्तु थोड़ी ही देरमें वे देवी हरे रंगके वस्त्र पहनकर सन्त हमदानीके आवाहनपर बाहर आ गईं। यह ऐतिहासिक घटना है। किन्तु यह नवकाया-धारण कैसे हुआ, इसका समाधान किसी प्रकार नहीं किया जा सकता।

सन्त कबीरका जब शरीर छूटा तब काशीके हिन्दू और मुसलमान आपसमें झगड़ने लगे। हिन्दू कहने लगे हम समाधि बनाएँगे, मुसलमान कहने लगे-हम मज़ार बनाएँगे। थोड़ी देरमें वे देखते क्या हैं कि जिस चादरके नीचे उनका शरीर ढका रक्खा था वह चादर नीची हो गई है। चादर हटानेपर देखा कि वहाँ उनके फूल (अस्थि-अवशेष) बचे पड़े हैं, जिन्हें हिन्दू-मुसलमान दोनोंने बाँटकर समाधि और मज़ार बनाई।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी वैश्वानरके अवतार थे। वे काशीमें हनुमान् घाटपर गङ्गाजीकी धारामें मध्याह्न-स्नान करनेके लिये बढ़ते चले गए और ज्यों ही जलमें लुप्त हुए, त्यों ही लोगोंने देखा कि जहाँ उन्होंने डुबकी लगाई थी वहाँ एक प्रचण्ड आगकी लपट उठती हुई आकाशकी ओर बढ़ी चली जा रही है।

मराठी साहित्यके प्रसिद्ध महाकवि मोरोपन्तने लिखा है कि संवत् १७०६ वि. की चैत्र कृष्णा द्वितीयाको सन्त तुकारामने वैसे ही सदेह वैकुण्ठकी यात्रा की थी जैसे भगवान् राम सदेह स्वर्ग (साकेत-लोक) चले गए थे।



दक्षिण भारतके प्रसिद्ध योगी श्रीरामलिंगम्ने शरीर छोड़नेसे दो वर्ष पहले बता दिया था कि मैं ५४ वर्षकी अवस्थामें सशरीर लुप्त हो जाऊँगा। अन्तिम समय जब उनके शिष्योंने उन्हें भली प्रकार सुला दिया तब उन्होंने कहा कि ''मैं अब अदृश्य होनेवाला हूँ। मैं शुद्ध निर्विकल्प समाधिमें हूँ, मेरा शरीर

जलाने या समाधिके लिये नहीं मिल पावेगा। सब खिड़कियाँ और द्वार बन्द कर दो।'' उनकी आज्ञाके अनुसार द्वार बन्द करके ताले लगा दिए गए। बहुत देर पश्चात् द्वार खोलनेपर देखा गया कि वहाँ कोई नहीं है।

स्वकाया-प्रवेश

बहुतसे ऐसे लोग भी हुए हैं जो मृत घोषित कर दिए जानेपर कुछ देर पश्चात् जीवित हो उठे हैं। इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ निरन्तर होती रहती हैं जिनमेंसे कुछ समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हो जाती हैं और कुछ यों ही छोड़ दी जाती हैं। यह स्वकाया प्रवेशकी घटना है।

परकाया-प्रवेशकी क्रिया स्वयं विशिष्ट यौगिक क्रिया है जो योगी लोग ही जानते हैं और वे ही उसका रहस्य और विधान बता सकते हैं।





: एकोनविंशति यंत्र :

१	२	३	४	५	६	७	८	९	३३४	३३६	३३७	३३८	३३९	३४०	३४१	३४२	३४४	३४३
१०	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	३०१	३०३	३०४	३०५	३०६	३०७	३०८	३१०	३०९	३५२
१२	४५	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	२७२	२७४	२७५	२७६	२७७	२७८	२८०	२७९	३१७	३५०
१३	४७	७६	९७	९८	९९	१००	१०१	१०२	२४७	२४९	२५०	२५१	२५२	२५४	२५३	२८६	३१५	३४९
१४	४८	७८	१०३	१२१	१२२	१२३	१२४	१२५	२२६	२२८	२२९	२३०	२३२	२३१	२५९	२८४	३१४	३४८
१५	४९	७९	१०५	१२६	१४१	१४२	१४३	१४४	२०९	२११	२१२	२१४	२१३	२३६	२५७	२८३	३१३	३४७
१६	५०	८०	१०६	१२८	१४५	१५७	१५८	१५९	१९६	१९८	२००	१९९	२१७	२३४	२५६	२८२	३१२	३४६
१७	५१	८१	१०७	१२९	१४७	१६०	१६९	१७०	१८७	१८८	१९१	२०२	२१५	२३३	२५५	२८१	३११	३४५
३२६	२९४	२६६	२४२	२२२	२०६	१९४	१८६	१८०	१७९	१८४	१७६	१७८	१५६	१४०	१२०	९६	६८	३६
३२७	२९५	२६७	२४३	२२३	२०७	१९५	१८९	१८५	१८१	१७७	१७३	१६७	१५५	१३९	११९	९५	६७	३५
३२८	२९६	२६८	२४४	२२४	२०८	१९७	१९०	१७८	१८३	१८२	१७२	१६५	१५४	१३८	११८	९४	६६	३४
३२९	२९७	२६९	२४५	२२५	२१०	२०१	१७१	१९२	१७५	१७४	१९३	१६१	१५२	१३७	११७	९३	६५	३३
३३०	२९८	२७०	२४६	२२७	२१६	१६३	२०४	२०३	१६६	१६४	१६२	२०५	१४६	१३५	११६	९२	६४	३२
३३१	२९९	२७१	२४८	२३५	१४९	२२०	२१९	२१८	१५३	१५१	१५०	१४८	२२१	१२७	११४	९१	६३	३१
३३२	३००	२७३	२५८	१३१	२४०	२३९	२३८	२३७	१३६	१३४	१३३	१३२	१३०	२४१	१०४	८९	६२	३०
३३३	३०२	२८५	१०९	२६४	२६३	२६२	२६१	२६०	११५	११३	११२	१११	११०	१०८	२६५	७७	६०	२९
३३५	३१६	८३	२९२	२९१	२९०	२८९	२८८	२८७	९०	८८	८७	८६	८५	८४	८२	२९३	४६	२७
३५१	५३	३२४	३२३	३२२	३२१	३२०	३१९	३१८	६१	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५२	३२५	११
१९	३६०	३५९	३५८	३५७	३५६	३५५	३५४	३५३	२८	२६	२५	२४	२३	२२	२१	२०	१८	३६१

३०



कामरूपता
(इच्छानुसार रूप-परिवर्त्तन)



यद्यपि कामरूपता अर्थात् इच्छानुसार रूप बदलनेकी क्रियाका सीधा सम्बन्ध तन्त्र-विज्ञानसे नहीं है तथापि सिद्ध तान्त्रिक लोग जनरव और लोकदृष्टिसे बचे रहनेके लिये अपना रूप परिवर्त्तित करके एकान्तवास और एकान्तसाधना करते थे। कभी कभी जब कोई दुष्ट प्रकृतिके लोग उन्हें तंग करने चले आते थे या उनकी परीक्षा लेने आते थे तब वे उनका रूप परिवर्त्तित करके बकरा, कबूतर, तोता, कुछ भी बना रखते थे और बहुत दिनोंपर उन्हें मुक्त करते थे। यह क्रिया विशेष रूपसे कामाख्यामें ही होती थी और इसीलिये असम प्रदेशका नाम ही कामरूप पड़ गया था। इसी कारण इस ग्रन्थमें कामरूपताका भी विवेचन कर दिया जा रहा है।

मन्त्र एवं द्रव्य-द्वारा किसी वस्तु या व्यक्तिको अन्य रूपमें परिवर्त्तित कर देना कामरूपता नामक स्वतन्त्र शास्त्रके अन्तर्गत आता है जिसका प्रयोग सिद्ध तान्त्रिक लोग किया करते थे। गुरुसे दीक्षा लिए बिना इसे सिद्ध करना सम्भव नहीं है। इसके अन्तर्गत अनेक विषय आते हैं जिनमेंसे कुछका विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

१. एक प्रस्थ (२ सेर परिमाण) महाकाल या लाल इन्द्रायणके बीजमें धात्री (आँवलेके) रसकी सात भावना दे और उसे गोली-जैसा बनाकर मुखके भीतर रखें तो मनुष्य कपोत बन जाता है।

२. छागल (बकरे)के मस्तकपर काली मिट्टी रखकर उसमें धतूरेका बीज बोनेसे जो फूल आता है, उसको गात्रमें लगाते ही मनुष्य बकरा बन जाता है।

३. कृष्ण चतुर्दशीको मयूरके मस्तकपर काली मिट्टी चढ़ाकर सनका बीज डालनेसे जब फल-फूल उतरे, तब उसको गलेमें बाँधते ही मनुष्य मयूरका रूप धारण कर लेता है।

४. कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको मयूरके मस्तकपर काली मिट्टी लगाकर कपासका बीज बोनेसे जब फल-फूल लगे, तब उसे कूट-पीसकर गात्रपर मलनेसे मनुष्य पानीमें नहीं डूबता और भूमिकी तरह जलपर खड़ा रह सकता है।

५. काले कौवेके मस्तकपर मिट्टी डालकर बृहती या बढ़न्तेका बीज बो दे उसके फलको मुखमें दबा लेनेपर मनुष्य कौवेकी तरह उड़ता है, किन्तु उसे उगल देनेपर वह फिर मनुष्य हो जाता है।

६. कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको कबूतरके माथेपर मिट्टी डालकर तिल बोकर दूधमें पानी मिलाकर उसे सींचता रहे। फूल निकलनेपर उसे मुखमें रखनेसे कोई उस मनुष्यको देख नहीं सकता। और उस तिलके फलको कूट-पीसकर गालमें लगा देनेसे मनुष्य ऐसा किङ्कर बन जाता है कि अपनी समग्र धन-सम्पत्ति स्वेच्छाक्रमसे छोड़ बैठता है।

७. फिर उसी तिलको कपिला गायके दूधमें पीसकर गोली बनावे और सात रातों तक पकाता रहे। पीछे गोली मुखमें दबा लेनेसे देवता भी उस मनुष्यको नहीं देख सकते। किन्तु गोली उगल देनेपर उसे सब लोग फिर देख सकते हैं। वह सौ वर्षतक जीता है और क्या स्त्री क्या पुरुष सब कोई उसके वशमें हो जाते हैं।



८. कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको शकुनिके मस्तकपर मिट्टी डालकर लहसुन लगाए और फूल आनेपर पुष्य नक्षत्रमें तोड़कर कपिला गौके घृतसे काजल पारिए। उस फूलको उक्त काजलमें मिलाकर

आँखमें लगानेसे सौ योजन-पर्यन्त दीख पड़ता है, दिनके समय नक्षत्र दृष्टिगोचर होते हैं। ऊँट, गर्दभ, महिष प्रभृति बड़े बड़े जन्तुके मस्तकपर यदि लहसुन बोवे और फल-फूल तोड़ रक्खे तो फिर इस फल-फूलको मुँहँमें डालनेसे उक्त जन्तुके जीवित हो जानेमें कोई सन्देह नहीं रहता।

कामरूपता (इच्छानुसार रूप परिवर्त्तन)

उक्त सकल साधनाका मन्त्र **'ॐ ह्रीं ह्रों ह्रें ऐं लं लं ॐ भौ स्वाहा'** लक्ष जप करनेसे पुरश्चरण और सहस्त्र जप करनेसे होम होता है। घृत-द्वारा तर्पण और मार्जन करना चाहिए। ब्राह्मण भोजनादि करानेसे सिद्धि मिलती है।

उल्लूकी खोपड़ीमें घृतसे कज्जल पारकर उसे आँखमें आँजनेपर अन्धकारमें भी पुस्तक पढ़ सकते हैं। **'ॐ नमो नारायणाय विश्वम्भराय इन्द्रजाल-कौतुकानि दर्शय सिद्धिं कुरु स्वाहा'** मन्त्र १०८बार जपनेसे कार्यसिद्धि होती है। उक्त मन्त्र सिद्ध न होनेसे कार्यमें सफलता नहीं मिलती। **'ॐ नमः परं ब्रह्म परमात्मने मम शरीरं पाहि पाहि कुरु कुरु'** रक्षामन्त्र है। इसी मन्त्रसे रक्षा बाँधकर कार्य करना चाहिए।

बृहस्पतिवारको हाथीकी खोपड़ीमें अङ्कीलका बीज बोकर मन्त्रपाठपूर्वक जलसेचन करे और फल लगनेपर एक बीजको त्रिलौहसे लपेटकर मुखमें दबा ले। इस प्रक्रियासे मनुष्य हस्ती-जैसा बलवान और वायुतुल्य पराक्रमी हो सकता है। त्रिलौह सकल कार्यमें प्रसिद्ध है। दस भाग सोना, बारह भाग ताँबा और सोलह भाग रूपा (चाँदी) मिलानेसे त्रिलौह बनता है। महादेवका वाक्य मिथ्या नहीं होता। किसी बीजको अंङ्कीलके बीजमें मिलाकर मिट्टीमें बोवे और फिर मन्त्र पढ़कर त्रिलौहसे लपेट उसे मुखमें रक्खे तो साधक बिल्कुल वैसा ही बन जाता है। कई बीज अङ्कीलमें मिलाकर बोनेसे उसी समय वृक्ष उग जाता है। अङ्कीलके फलका तेल एक बिन्दु मुखमें डालनेसे मुर्दा प्रहरके मध्य ही जी उठता है।

शोभाञ्जनाका तैल, कपोतकी बींट, शूकर तथा गर्दभकी चर्बी, हरताल और मनःशिला एकमें मिलाकर टीका लगानेसे मनुष्य हाथी-जैसा बन सकता है।

पेचककी बींट एरण्डतैलके साथ रगड़कर गात्रमें लगाते ही लोग पागल हो जाते हैं।

सर्पका दन्त, बिच्छूका कण्टक और छिपकली (कृकलास)-का रक्त एक-में पीसकर गात्रपर लगाते ही मनुष्य मर जाता है।

सिन्दूर, हरताल, गन्धक तथा मनःशिला (मैनसिल)-को एकत्र पीसकर वस्त्रपर डालकर उसी वस्त्रको मस्तकपर बाँधनेसे समस्त जगत् अग्निमय दीख पड़ता है।

विकीरण, वट और उडुम्बरका दुग्ध किसी पात्रके मध्य लगाकर जल डालनेसे दूध बन जाता है।

अङ्कीलके फलका तैल अङ्गमें मलनेसे मनुष्य राक्षस-जैसा लगने लगता है और उसे देखते ही सब कोई भय खाकर भाग जाते हैं।



अङ्कीलके फलका तैल रात्रिको प्रदीपमें जलानेसे आकाशका भूत सकल भूमिपर दीख पड़ता है।

बुध या शनिवारको कृकलास (छिपकली) मारकर शत्रुगणके मूत्रोत्सर्ग स्थानमें गाड़ दे। उसे न उखाड़नेसे शत्रु क्लीव हो जाते हैं।

गन्धक, हरताल, गोमूत्र और विष एकत्र पीसकर अग्निमें छोड़नेसे समस्त विघ्न मिट जाता है।

वशीकरण एवं आकर्षण वसन्त, विद्वेषण ग्रीष्म, स्तम्भन वर्षा, मारण शिशिर, शान्तिकर्म शरत् और उच्चाटनकार्य हेमन्तकी पूर्णिमाको करना चाहिए। दिनके पूर्वाङ्ग बसन्त, मध्याह्न ग्रीष्म, अपराह्ण वर्षा, सन्ध्या शिशिर, अर्धरात्र हेमन्त और फिर शरद् ऋतुका समय आता है।

पक्षादि निर्णय— मारणादि अभिचार कृष्णमें और शान्ति-प्रभृति मङ्गलकर्म शुक्लपक्षमें करना उचित है। द्वादशी तथा एकादशीको मारण; तृतीया एवं नवमी-को वशीकरण; चतुर्दशी, चतुर्थी तथा प्रतिपत्को स्तम्भन और द्वितीया, षष्ठी एवं अष्टमीको शान्तिकर्म होता है।

अश्विनी, मृगशिरा, मूला, पुष्य तथा पुनर्वसुमें वशीकरण और अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा एवं रोहिणी नक्षत्रमें क्रमशः मारण, विजय, शान्ति तथा स्तम्भन किया जाता है। इस सकल कार्यमें तिथि और नक्षत्रकी विवेचना आवश्यक होती है, नहीं तो मन्त्रादिकी सिद्धि बिगड़ जाती है।

जय— पुष्य नक्षत्रमें गोजिह्वा और अपामार्गका मूल उखाड़कर मस्तकपर रखनेसे सकल विवादमें जय मिलता है।

सौभाग्य— पुष्य नक्षत्रमें श्वेत विकीरणका मूल उखाड़कर दक्षिण बाहुपर बाँधनेसे सौभाग्य बढ़ता है।

क्रोधोपशम—**'ॐ शान्ते प्रशान्ते सर्वक्रोधोपशमनी स्वाहा'** मन्त्र इक्कीस बार जपकर जो मनुष्य मुख धोता है, उसके प्रति किसीको क्रोध नहीं होता।

श्वेत अपराजिताका मूल हस्तपर बाँधने और शिवजटाका मूल मुखमें डालनेसे हस्ती निकट नहीं आ सकता।

बृहती-मूल हस्त और मुखमें धारण करनेसे व्याघ्रका भय छूट जाता है।

'ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं स्वाहा' पढ़कर पत्थर फेंकनेसे व्याघ्र न तो मुख झुका सकता है और न चल ही सकता है। नारिकेल-मूल कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको धारण करनेसे व्याघ्रका भय नहीं होता।

स्तम्भन— जिस व्यक्तिके मुखमें सफ़ेद चिरभिटीकी जड़ रहती है उसके सामने किसीकी बात नहीं चलती।

'ॐ ह्रीं ह्रीं रक्ष रक्ष चामुण्डे कुरु कुरु अमुकं मे वशमानय वशमानय स्वाहा' मन्त्रसे कार्यसिद्धि होती है। रविवारको पुष्यनक्षत्रमें यष्टिमधुका मूल उखाड़कर सभामें फेंक देनेसे सबका मुँह बन्द हो जाता है।

मेघस्तम्भन— एक ईंटपर चार चतुष्कोण रेखा खींच दूसरी ईंटसे दबावे और **'ॐ मेघान स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा'** मन्त्र पढ़कर किसी बागमें गाड़ देवे तो मेघ-की वृष्टि रुकती है।



नौका-स्तम्भन— भरणीनक्षत्रमें उदुम्बर प्रभृति क्षीरीवृक्षके मूलको और पाँच अंगुल परिमाण एक खण्ड काष्ठको नौकामें डाल देनेसे उसकी चाल रुक जाती है।

निद्रास्तम्भन— यष्टिमधु और बृहतीका मूल बारीक पीसकर सूँघनेसे निद्रा नहीं आती।

अस्त्रस्तम्भन— कपित्थका मूल कृत्तिका-नक्षत्रमें उखाड़कर धारण करनेसे देवगणका अस्त्र भी स्तम्भित होता है।

गुलञ्चका मूल उखाड़कर हस्तपर धारण करनेसे शस्त्रभय छूट जाता है।

'ॐ अहो कुम्भकर्ण महाराक्षस निकषागर्भसम्भूत परसैन्यस्तम्भन महाभय रणरुद्र आज्ञापय स्वाहा' मन्त्र १०८ जप करने और अपामार्गका मूल शुभ नक्षत्रमें उखाड़कर शरीरपर मलनेसे समस्त शस्त्रका स्तम्भन होता है।

पेटकी हड्डी गोष्ठकी चारों ओर भूमिमें गाड़ देनेसे गो, मेष, महिष, अश्व प्रभृति स्तम्भित हो जाते हैं।

भृङ्गराज, अपामार्ग, श्वेत सर्षप, सहदेविका, अर्शघ्न, वच और श्वेत विकीरण-का मूल उखाड़कर लौह पात्रमें रक्खे और दो दिनके बाद निकाले। फिर उसका तिलक लगावे और **'ॐ नमो भगवते विश्वामित्राय नमः सर्वसुखीभ्यां विश्वामित्र आगच्छ स्वाहा'** मन्त्रका जप करे तो सब प्राणियोंकी बुद्धि स्तम्भित हो जाती है।

'ॐ ब्रह्मवेशिनि शिरे रक्ष रक्ष स्वाहा' मन्त्र पढ़कर सात पांसे उठाइए। उनमें-से तीन कटि में बाँधनेपर और बाक़ी हाथमें रखनेपर चौरगति रुक जाती है।

देहरञ्जन— कदम्बपत्र, लोध और अर्जुनपुष्पी एकत्र पीसकर अङ्गमें लगानेसे दुर्गन्ध दूर होती है।

एला, शटी, तेजपत्र, रक्तचन्दन, हरीतकी, शोभाञ्जन , मुस्तक, कुष्ठ और अन्यान्य सुगन्ध द्रब्य पीसकर गात्रमें मलनेसे जो सौरभ उठता है, उससे सकल ही मोहित हो जाते हैं।

आम्र एवं जम्बुको गुठली तथा पद्ममूल पास मधुके साथ रात्रिको मुखमें रखनेसे पुरुषके मुखका दुर्गन्ध दूर होता है और सुगन्ध आने लगती है। मुरामांसी, नागकेशर एवं कुष्ठको बाँटकर पन्द्रह दिनतक प्रातः तथा सन्ध्याकाल चाटनेसे स्त्रीके मुखमें कर्पूरकी गन्ध भर जाती है।

लोहका मल, जवापुष्प और आमलकी बाँटकर सिरापर लगानेसे तीन मास के मध्य सफ़ेद बाल काले हो जाते हैं।

छागीके दुग्ध-द्वारा सात दिन पर्यन्त भावना देकर तिलका तैल निकाले और फिर उसे सिरमें लगावे तो काले बाल सफ़ेद हो जाते हैं।

अश्विनी नक्षत्रमें वटकी जीवन्तिका दुग्धके साथ खानेसे पुरुष बलवान् बनता है। पुष्य नक्षत्रमें विकीरणका मूल उखाड़कर गोदुग्धसे बाँटकर खानेपर सात दिनमें वृद्ध भी युवाके समान कूदने लगता है।

जन्मवन्ध्या-चिकित्सा— रविवारको मूल, पत्र तथा शाखा-सहित गन्धनाकुली उखाड़कर एकवर्ण गौके दुग्धमें अविवाहित कन्यासे पिसाकर ऋतुकालमें चार तोले परिमाण सात दिन पर्यन्त खावे और दुग्ध एवं मूँगकी दाल प्रभृति लघु पथ्य खावे तो वन्ध्याके भी गर्भ रह जाता है। इस औषधको खाकर उद्वेग, भय, शोक और दिवानिद्रा त्याग देनी चाहिए। परिश्रमका कार्य करना भी मना

कामरूपता (इच्छानुसार रूप परिवर्त्तन)



है। केवल पतिका सहवास कहा है। अन्यथा होनेसे गर्भ नहीं रहता।

कृष्ण अपराजिताका मूल छागीके दुग्धमें बाँटकर ऋतुकाल आनेपर पीनेसे वन्ध्या गर्भ धारण करती है।

गोक्षुरका बीज निसिन्धुके रसमें बाँटकर तीन या सात दिन सेवन करनेसे वन्ध्या गर्भवती होती है।

काकवन्ध्या-चिकित्सा— रविवारको पुष्य नक्षत्रमें अश्वगन्धाका मूल महिषीके दुग्धमें बाँटकर ४ तोले परिमाण सात दिन खानेसे काकवन्ध्याको गर्भ रहता है।

मृतवत्सा चिकित्सा— कृत्तिका नक्षत्रमें पूर्वमुख होकर पीतघोषा लताका मूल जलके साथ पीस दो तोले परिमाण खानेसे मृतवत्सा दोष दूर होता है।

दाड़िमका मूल दुग्धके साथ बाँटकर पीने और निज पति-सहवास करनेसे मृतवत्सा दीर्घायु पुत्र प्रसव करती है।

मञ्जिष्ठा, यष्टिमधु, कुष्ठ, त्रिफला, शर्करा, मेदालता, क्षीरयुक्त भूमिकुष्माण्ड, काकोली, अश्वगन्धामूल, यमानी, हरिद्रा, क्षीरकाकोली, श्वेतचन्दन, दारुहरिद्रा, हिङ्गुल, कटुकी, नीलोत्पल, कुमुद एवं द्राक्षाको दो दो तोले लेकर चार सेर घृतमें पकाइए और पाकके समय शतमूलीका रस तथा दुग्ध छह छह सेर डाल दीजिए। नियमपूर्वक पकाकर इस घृतको जो नारी पीती है, वह सुन्दर पुत्र प्रसव करती है। अल्पायु सन्तान और केवल कन्या प्रसव करनेका दोष इस घृतसे छूट जाता है। योनि एवं रजोदोष और गर्भस्त्रावमें यह विशेष उपकार पहुँचाता है। इसके पानसे प्रजा तथा आयुर्वृद्धि और ग्रहदोषकी शान्ति होती है। इसे फलघृत कहते हैं। यह अति आयुष्कर है। वैद्य इस घृतमें श्वेत कण्टकारी भी डालनेकी व्यवस्था देते हैं। जंगली बेरकी आगसे इसे पकाना पड़ता है।

गर्भस्त्राव-चिकित्सा— प्रथम मासके गर्भस्त्रावपर पद्मकेशर और रक्तचन्दन समभाग गोदुग्धके साथ बाँटकर खानेसे दोष दूर हो जाता है अथवा यष्टिमधु, देवदारु, शरबीज और क्षरकाकोली गोदुग्धमें पीसकर पीनेसे गर्भस्त्राव रुकता है।

द्वितीय मासमें नीलोत्पल, पद्ममृणाल, यष्टिमधु और कर्कटशृङ्गी गोदुग्धके साथ बाँटकर पीनेसे वेदना मिटती है।

तृतीय मासमें रक्तचन्दन, तगर, कूट, मृणाल और पद्मकेशर शीतल जलमें पीसकर पीनेसे पीड़ा छूटती है। अथवा क्षीरकाकोली, बला और अनन्तमूलको दुग्धमें रगड़कर पीना चाहिए।

चतुर्थ मासमें श्वेत उत्पल, मृणाल, गोक्षुर और केशरको दुग्धमें बाँटकर सेवन करनेसे गर्भस्त्राव रुकता है अथवा यष्टिमधु, रासना, श्यामालता, ब्राह्मणयष्टिका और अनन्तमूल गोदुग्धमें पीसकर पीना चाहिए।

पञ्चम मासमें पुनर्णवा, काकोली, तगर तथा नीलोत्पल अथवा बृहती, कण्टकारी, उडुम्बर, कायफल, दारुचीनी और गव्यघृत दुग्धके साथ पीसकर खानेसे उपकार होता है।



षष्ठ मासमें सिता, ह्रीबेरका मूल एवं आखुमज्जा शीतल जलमें बाँटकर गोदुग्धके साथ अथवा गोक्षुर, शोभाञ्जनबीज, यष्टिमधु, पृश्निपर्णी तथा बला दुग्धमें पीसकर पीनेसे गर्भ नहीं गिरता।

सप्तम मासमें पद्मका काष्ठ एवं मूल शृङ्गाटक और नीलोत्पल दुग्धमें बाँटकर सेवन करना चाहिए। अथवा किशमिश, शृङ्गाटक और पद्मका केशर गोदुग्धके साथ सेवन करनेसे गर्भस्राव रुक जाता है।

कामरूपता (इच्छानुसार रूप परिवर्त्तन)

अष्टम मासमें यष्टिमधु, पद्मकाष्ठ, विभीतक, विकीरणमूल, मुस्तक, नागकेशर, गजपिप्पली और नीलपद्म बाँटकर दुग्धके साथ खिलानेसे गर्भस्राव नहीं होता । अथवा बिल्वमूल, कपित्थ, बृहती और शमीकाष्ठ सहित दुग्ध पकाकर देना चाहिए।

नवम मासमें गोरक्षतण्डुलका बीज और कक्कोल मधुसहित पीसकर लेप करनेसे वेदना दूर होती है। अथवा यष्टिमधु, श्यामालता, अनन्तमूल और क्षीरकाकोली सहित दुग्ध पकाकर खिलाते हैं।

दशम मासमें सिता, अङ्गूर, किशमिश, मधु और नीलपद्म गोदुग्ध-सहित खिलानेसे गर्भस्राव रुकता है अथवा केवल दुग्ध पकाकर ही दे सकते हैं। यष्टिमधु और देवदारु दुग्ध-सहित देनेसे भी उपकार होता है।

मधु, वासक, रक्तचन्दन, सैन्धव और महेन्द्रबीज गोदुग्धमें बाँटकर खिलानेसे सर्वप्रकारका गर्भस्रावदोष नष्ट होता है।

गर्भशुष्क-चिकित्सा— गर्भशुष्कता दोषकी शान्तिके लिये सिता मिलाकर गोदुग्ध पिलाना चाहिए अथवा यष्टिमधु और गम्भारीफल समभाग बाँटकर गोदुग्ध-सहित खिलाना योग्य है।

सुखप्रसव-योग— श्वेत पुनर्णवाके मूलका चूर्ण बनाकर योनिमध्य डालनेसे तत्क्षणात् गर्भप्रसव होता है। वासक वृक्षका उत्तरदिक्स्थित मूल उखाड़कर और सप्तगुण सूत्र-द्वारा लपेटकर कटिपर धारण करनेसे प्रसवमें कष्ट नहीं पड़ता। सहदेवीका मूल कुक्षिमें बाँधनेसे भी सुखप्रसव होता है।

चार अङ्गुल अपामाग्रका मूल योनिद्वारमें डालनेसे प्रसवमें विलम्ब नहीं लगता।

अश्वगन्धाका मूल **'ॐ फट्'** मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके एक तोला घृत मिलाकर खिलाने और **'क्लीं'** मन्त्र पढ़कर ३२ तोले दुग्ध एवं २ तोले मरिच पकाकर सहस्र परिमित **'ऐं'** मन्त्र जपकर पिलानेसे मूत्र स्तम्भित होता है।.

इनके अतिरिक्त और भी अनेक तान्त्रिक और ऐन्द्रजालिक प्रयोग अनेक ग्रन्थ में मिलते हैं किन्तु आजकल न तो कोई औषधियोंको पहचानता न औषधियाँ ही सहज प्राप्त होती और न इन सबका किसीको ज्ञान है फिर भी इसीलिये यहाँ दे दिया गया है कि भविष्यमें कोई औषधि-विशेषज्ञ और जिज्ञासु इस ओर प्रवृत्त होकर इनका उद्धार कर डाले।





: विंशति यंत्र :

१	२	३	४	५	२६	२७	२८	२९	३०	३९०	३८९	३८८	३८७	३८६	३८५	३८४	३८३	३८२	३८१
१०	३९	४०	४१	४२	४४	६४	६५	६६	६७	३५३	३५२	३५१	३५०	३४९	३४८	३४७	३४६	३४५	३९१
२२	५७	७३	७४	७५	७६	९३	९४	९५	९६	३२०	३१९	३१८	३१७	३१६	३१५	३१४	३१३	३४४	३७९
२३	५८	७९	१०३	१०४	१०५	१०६	१२३	१२४	१२६	२९१	२९०	२८९	२८८	२८७	२८६	२८५	३२२	३४३	३७८
२४	५९	८९	११७	१२९	१३०	१३१	१४४	१४३	१४६	२६६	२६५	२६४	२६३	२६२	२६१	२८४	३१२	३४२	३७७
२५	६१	९०	११८	१४१	१५१	१५३	१५५	१६५	१६६	२४५	२४४	२४३	२४२	२४१	२६०	२८३	३११	३४०	३७६
३२	६२	९८	११९	१४२	१६१	१६९	१७०	१७९	१८०	२२८	२२७	२२६	२२५	२४०	२५९	२८२	३०३	३३९	३६९
३३	६३	९९	१२०	१४३	१६२	१७७	१८३	१७९	१९१	२१४	२१५	२११	२२४	२३९	२५८	२८१	३०२	३३८	३६८
३६	६८	१०१	१२७	१४९	१६७	१८१	१८८	२००	१९३	२०२	२०७	२१३	२२०	२३४	२५२	२७४	३००	३३३	३६५
३६३	३२९	२९९	२७३	२५१	२३३	२१९	२०९	२०५	२०४	१९५	१९८	१९२	१८२	१६८	१५०	१२८	१०२	७२	३८
३६४	३३०	३०१	२७६	२५३	२३७	२२३	२१६	२०३	२०६	१९७	१९६	१८५	१७८	१७४	१४८	१२५	१००	७१	३७
३६६	३३१	३०४	२७९	२५४	२३८	२२९	२१७	१९४	१९९	२०८	२०१	१८४	१७२	१६३	१४७	१२२	९७	७०	३५
३६७	३३२	३०९	२८०	२६७	२४७	२३०	१९०	२१२	२१०	१८७	१८६	२१८	१७१	१५४	१३४	१२१	९२	६९	३४
३७०	३४१	३१०	२९२	२६८	२४९	१७६	२३१	२२२	२२१	१७३	१७४	१७५	२३२	१५२	१३३	१०९	९१	६०	३१
३८०	३५४	३२१	२९३	२६९	१६०	२४८	२४६	२३६	२३५	१५६	१५७	१५८	१५९	२५०	१३२	१०८	८०	४७	२१
३९२	३५५	३२३	२९४	१४०	३७१	२७०	२५७	२५६	२५५	१३५	१३६	१३७	१३८	१३९	२७२	१०७	७८	४६	९
३९३	३५६	३२४	११६	२९७	२९६	२९५	२७८	२७७	२७५	११०	१११	११२	११३	११४	११५	२९८	७७	४५	८
३९४	३५८	८८	३२७	३२६	३२५	३०८	३०७	३०६	३०५	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	३२८	४३	७
३९५	५६	३६१	३६०	३५९	३५७	३३७	३३६	३३५	३३४	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	३६२	६
२०	३९९	३९८	३९७	३९६	३७५	३७४	३७३	३७२	३७१	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	४००

३१



कायाकल्प



यद्यपि कायाकल्पका सम्बन्ध तन्त्र-शास्त्रसे नहीं है तथापि जब कोई सिद्ध पुरुष यह समझते थे कि लोक-कल्याणके लिये अथवा साधनाको बढ़ानेके लिये शरीरकी रक्षा आवश्यक है और बुढ़ापेके कारण शरीरकी शक्ति क्षीण हो रही है तब वे रसायनके प्रयोगसे कायाकल्प कर लेते थे। यह कायाकल्प रसायनोंके प्रयोगसे किया जाता था जिसका सीधा सम्बन्ध आयुर्वेदसे था जिसमें रसायनके प्रयोगसे कायाकल्प करनेकी अर्थात् शरीरको पुन: युवा बनानेकी विधियाँ आती हैं।

रसायनका लक्षण बताते हुए भावप्रकाशमें लिखा है-

यज्जराव्याधिविध्वंसि वयस्तम्भकरं तथा।
चांक्षुष्यं बृहणं वृष्यम्भेषजं तद्रसायनम्।।

(जिस औषधसे न बुढ़ापा आवे न रोग हो सदा जवानी चढ़ी रहती हो, शरीर दृढ़ बना रहता हो और आँखोंकी ज्योति बनी रहती हो और कामशक्ति बनी रहती हो, वही रसायन है।)

रसायनके प्रयोगके दो विधान चरकसंहितामें बताए गए हैं एक तो कुटीप्रावेशिक और दूसरा वाततपिक।

कुटीप्रावेशिक-विधि

दूसरी विधिकी अपेक्षा पहली अधिक फलवाली है। वृद्धवाग्भटने उत्तरस्थानके चालीसवें अध्यायमें कहा है—

तन्तु द्विविध कुटीप्रावेशिकं वातातपिकं च।
तत्र वीर्यप्रभावप्रयोग-परिहारगुरुत्वात् कुटीप्रावेशिकं महाफलतरम्।।

जहाँ साधु और पुण्यकर्मा राजा, वैद्य तथा ब्राह्मण रहते हों, जो निर्भय और प्रशस्त हो, जहाँ सब उपकरण प्राप्त हो सकें- ऐसे नगरमें अच्छी भूमिपर पूर्व या उत्तर दिशामें ऐसी कुटी बनावे जो पर्याप्त लम्बी-चौड़ी हो, त्रिगर्भा हो अर्थात् एकके अन्दर दूसरा और दूसरेके अन्दर तीसरा कमरा हो, जिसमें छोटी छोटी खिड़कियाँ या रोशनदान हों, दीवार मोटी हो, ऋतुमें सुखकारक हो, प्रकाशयुक्त हो, मनको पसन्द हो, जिसमें अशुभ शब्द आदि न पहुँच सके, स्त्रीरहित हो, जिसमें सब अभीष्ट उपकरण (भोजन आदिकी सामग्री) धरे हों, जहाँ वैद्य, औषध तथा ब्राह्मण सर्वदा तय्यार हों - सर्वदा सन्नद्ध हों।

चरकसंहिताकें चिकित्सास्थानमें दो प्रकारके ब्रह्मरसायन, चतुर्थामलक रसायन हरीतकि रसायन, हरीतक्यादि योग, आमलक घृत, आमलकावलेह, आमलक-चूर्ण, विडङ्गावलेह, नागबल्लरसायन, भल्लातक क्षीर, भल्लातक तैल, आमलकरसायन, ब्रह्मरसायन, केवलामलक रसायन, लौहादि रसायन, कई प्रकारके त्रिफला रसायन, शिलाजत्व-प्रयोग, ऐद्रि रसायन आदि अनेक रसायनोंका उल्लेख किया है जिनके प्रयोगसे मनुष्य पुन: युवा हो सकता है।



इसी प्रसंगमें च्यवनप्राशको भी रसायन बताते हुए उसका पूरा विवरण दिया गया है कि उसमें कौन कौन सी ओषधियाँ पड़ती हैं और उसे कैसे बनाया जाता है। इसे पढ़कर ज्ञात हो जायगा कि बाज़ारमें च्यवनप्राशके नामसे जो कुछ मिलता है वह कितना निरर्थक और प्रभावहीन है।

च्यवनप्राशमें पड़नेवाली सब ओषधियाँ नहीं मिलतीं। इसलिये जो च्यवनप्राश बनाना चाहे उसे यह विवरण जान लेना चाहिए—

च्यवनप्राश

बिल्व (बेल)की छाल, अरणीकी छाल, श्योनाक (अरलू)की छाल, गाम्भारी की छाल, पाटला (पाढ़ल)की छाल (ये सब छालें मूलकी होनी चाहिए), बलामूल (खरैंटीकी जड़), चारों पर्णियाँ अर्थात् शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी और माषपर्णी, पिप्पली, गोखरू, दोनों बृहती अर्थात् छोटी कण्टकारी और बड़ी कण्टकारी अथवा बड़े फलवाली और छोटे (चनेके सदृश)फलवाली दोनों प्रकारकी बृहती, काकड़ासिंगी, आमलकी (भुई आँवला) द्राक्षा (मुनक्का), जीवन्ती, पुष्करमूल (पोहकरमूल), अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक ऋषभक, कपूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, लालचन्दन, नीलोत्पल (नीलाकमल), विदारीकन्द, वासकमूल (अडूसेकी जड़), काकोली, काकनासा (कौआ ठोडी); प्रत्येक १ पल (८ तोले), आँवले ५०० (६१ सेर); इन्हें एक द्रोण (द्रवैद्वेगुण्य परिभाषाके अनुसार २ द्रोण) जलमें पकावें। आँवलोंको ढीली पोटलीमें बाँधकर डालना चाहिए। जब देखें कि ओषधियोंका रस क्वाथमें आ गया है और वे नीरस हो गई हैं तब क्वाथको नीचे उतार लें, आँवलोंकी पोटलीको पृथक् कर लें, क्वाथको वस्त्रसे छान लें, नीरस ओषधियोंको फेंक दें, आँवलोंमेंसे गुठली निकाल दें और हाथसे अच्छी तरह मसल डालें। अब इस पीठीको छाननेके लिये किसी लकड़ी या मिट्टीके पात्रके मुखपर कपड़ेकी जाली बाँध दें। इस जालीपर आँवलोंकी थोड़ी-थोड़ी पीठी डालकर हथेलीसे मसलते जायँ। रेशे ऊपर रह जायँगे और शेष भाग नीचे चला जायगा। रेशोंको फैंक दें। अब आँवलोंकी पीठीको तैल और घी मिलाकर १२ पल (१ सेर १६ तोले)में भूनें। तैल ६ पल और घी ६ पल लेना चाहिए। जब ठीक प्रकारसे ईषद्भृष्ट हो जाय तब उन्हें उतार लें। अब छाने हुए क्वाथमें मत्स्यण्डिका (फाणित, राब अथवा दानेदार खाँड) आधी तुला (५० पल या ५ सेर) डालकर घोल दें। पुन: इसे वस्त्रसे छानकर और इसीमें आँवलोंकी पीठी डालकर आगपर चढ़ा दें। मन्द मन्द आँचसे पकावें। जब लेहकी तरह सिद्ध हो जाय तो नीचे उतार लें। भूनते और पकाते समय लकड़ीके बने खजसे लगातार हिलाते रहना चाहिय अन्यथा ओषधके दग्ध हो जानेका भय रहता है। शीतल हो जानेपर शहद ६ पल (४८ तोले), वंशलोचन ४ पल (३२ तोले), पिप्पली २ पल (१६ तोले), दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर चारों मिलाकर एक पल अर्थात् प्रत्येक २ तोले; इनका प्रक्षेप देकर अच्छी प्रकार आलोड़ित करें। कुछ आयुर्वेदिक ग्रन्थोंने च्यवनप्राशमें पड़नेवाले अष्ट वर्गके अन्तर्गत क्षीरकाकोली और महामेदा डालनेका भी विधान किया है।

इसके अतिरिक्त चरकसंहितामें ही द्रोणीप्रावेशिक रसायनका भी विवरण दिया है जिसके प्रयोगसे मनुष्य १० हजार वर्षतक स्वस्थ और पुष्ट रहकर जीवित रह सकता है।

घेरण्ड-संहितामें बताया गया है कि सूर्योदयसे दो घड़ी (४८ मिनट) पहले जिधरसे हवा आती हो उधर मुँह करके काकीमुख बनाकर अर्थात् जीभको कौवेकी चोंचके समान बनाकर यदि वायुका पान किया जाय तो मनुष्य १ हज़ार वर्षतक स्वस्थ रहकर जीवित रह सकता है।



वात्स्यायनने अपने कामसूत्रमें एक प्रकारकी जीवनचर्याका विधान करके लिखा है—जो मनुष्य इस चर्याके अनुसार जीवनयापन करे वह १६ वर्षसे ७० वर्षतक किशोर अवस्थावाला ही अर्थात् १६

वर्षकी अवस्थावाला ही बना रह सकता है। ओषडशात्सप्ततिपर्यन्तं कैशोरकम्।

रसायनोंके सेवनसे पुरुष नीरोग, दीर्घायु, महाबलशाली, जनतामें अपनी प्रतिभा आदि गुणोंसे चमकनेवाला होता है, उसकी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, चन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है, वेदादि सच्छास्त्रोंको धारण कर लेता है अथवा जो कुछ सुनता है उसे उसी समय समझ लेता है और उसे वह कण्ठस्थ हो जाता है। उसका सत्त्व (मन) आर्ष (ऋषि-जैसा) हो जाता है। वह पर्वतके समान सारयुक्त, डीलडौलवाला, बलशाली, वायुके सदृश विक्रमयुक्त हो जाता है और सेवन करनेवाले पुरुषकी देहमें विष भी अपने विषप्रभावसे रहित हो जाता है।

च्यवनप्राशके प्रयोगसे अत्यन्त वृद्ध च्यवन ऋषि पुन: युवा हो गए थे। इस रसायनके प्रयोगसे पुरुष मेधा, स्मृति, कान्ति, नीरोगिता, दीर्घ आयु, इन्द्रियोंकी सबलता, मैथुनमें समर्थता, देहाग्निकी दीप्ति, वर्णकी निर्मलता, वायुका अनुलोम प्राप्त हो जाता है। कुटीप्रावेशिक विधिसे इसे प्रयोग करनेवाला वृद्ध पुरुष भी वार्द्धक्यके चिह्नोंसे रहित होकर नई जवानीका रूप धारण कर लेता है।

आचार-रसायन

ऊपर जिन रसायनोंका विवरण दिया गया है उन्हें बनाना प्राय: सम्भव नहीं है क्योंकि आजकल उनमें प्रयुक्त होनेवाली ओषधियोंका ज्ञान अच्छे अच्छे वैद्योंको भी नहीं है। इसलिये चरक-संहितामें ही महर्षि चरकने आचार रसायनकी भी व्यवस्था दी है और बताया है कि सत्यवादी, क्रोधरहित, मद्यपान तथा मैथुन न करनेवाला, अहिंसक (मन, वचन और कर्मसे), आयाम (श्रम)-रहित, प्रशान्त, प्रियभाषी (मीठा बोलनेवाला), जप एवं पवित्रतामें तत्पर, धीर, नित्य दान करनेवाला, तपस्वी, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु एवं ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पुरुषोंकी पूजा या सेवा-शुश्रूषामें रत, नित्य क्रूरतासे रहित तथा प्राणियोंपर दया-दृष्टि रखनेवाला, निद्रा और जागरणको समावस्थामें सेवन करनेवाला अर्थात् जितना सोना या जागना आवश्यक हो उतना ही उनका सेवन करनेवाला, नित्य दूध और घी भोजन करनेवाला, देशकाल और पात्रका जाननेवाला, युक्तिको जाननेवाला, अंहकाररहित, सदाचारयुक्त, उदार, जिसकी इन्द्रियाँ अध्यात्म (आत्मज्ञान)-की ओर झुकी हुई हैं, वृद्ध पुरुषों, आस्तिकों और संयमी पुरुषोंका उपासक अर्थात् उनके संग रहनेवाला, धर्मशास्त्रोंका स्वाध्याय करनेवाला तथा तदनुसार आचरण करनेवाला पुरुष नित्य रसायन-सेवी ही है- ऐसा समझना चाहिए अर्थात् इन सद्गुणोंके पालनसे ही उसे रसायनोक्त लाभ हो पाते हैं।

कायाकल्पके जो अनेक प्रयोग ऊपर दिए गए हैं उनका सेवन करनेसे ऋषि, महर्षि और राजर्षि लोग कई कई सहस्र वर्ष जीवित रहते थे। इस प्रसंगमें ध्यान देनेकी एक विशेष बात यह है कि ऐसे तपस्वी या सिद्ध लोग या तो तपस्याके द्वारा सिद्धि प्राप्त करते थे अथवा साधनाके द्वारा। किन्तु इनके अतिरिक्त बहुतसे ऐसे व्यक्ति भी सिद्ध देखे जाते हैं जिन्होंने न तो तपस्या की और न साधना ही की। ऐसे तपस्वी या सिद्ध लोग अपने प्राक्तन जन्मसंस्कारके कारण ही जन्मसे ही सिद्ध हो जाते हैं और किसी भी समय उनके पिछले जन्मकी तपस्या या योगसाधना अथवा विद्या प्रस्फुरित हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा भी गया है कि जिन योगियोंका शरीर सिद्धि प्राप्त करनेसे पूर्व ही नष्ट हो जाता है वे योगभ्रष्ट महापुरुष अगले जन्ममें धनवानों या विद्वानोंके कुलमें जन्म ले लेते हैं। इसीलिये कहा गया है—



गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।
यदिह स्यान्न फलदा सुलभा स्यादन्यजन्मनि॥

(वृद्धावस्था होनेपर भी विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए क्योंकि यदि वह विद्या इस जन्ममें सफल न हुई तो अगले जन्ममें पुनः वह विद्या स्वयं बिना पढ़े आ जाती है और सुलभ हो जाती है।)

सिद्ध पुरुषका लक्षण ही यह है कि वह जो कुछ कह दे वह सत्य हो जाता है। ऐसे सिद्ध लोग वाक्सिद्ध कहलाते हैं। उत्तररामचरितमें लौकिक साधु और आद्य ऋषि (सिद्ध पुरुष)-का लक्षण बताते हुए कहा गया है—

लौकिकानां हि साधूनां अर्थं वागनुवर्त्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

(जो लौकिक साधु होते हैं वे तो वही बात बताते हैं जो होनेवाली होती है। किन्तु जो आद्य ऋषि या सिद्ध पुरुष होते हैं वे तो जो कुछ कह देते हैं वही हो जाता है।)

इन्हीं सब सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये कायाकल्पकी आवश्यकता पड़ जाती है।





: एकविंशति यंत्र :

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	४११	४१३	४१४	४१५	४१६	४१७	४१८	४१९	४२०	४२२	४२१
११	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	३७४	३७६	३७७	३७८	३७९	३८०	३८१	३८२	३८४	३८३	४३१
१३	५०	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	३४१	३४३	३४४	३४५	३४६	३४७	३४८	३५०	३४९	३९२	४२९
१४	५२	८५	१०९	११०	१११	११२	११३	११४	११५	३१२	३१४	३१५	३१६	३१७	३१८	३२०	३१९	३५७	३९०	४२८
१५	५३	८७	११६	१३७	१३८	१३९	१४०	१४१	१४२	२८७	२८९	२९०	२९१	२९२	२९४	२९३	३२६	३५५	३८९	४२७
१६	५४	८८	११८	१४३	१६१	१६२	१६३	१६४	१६५	२६६	२६८	२६९	२७०	२७२	२७१	२९९	३२४	३५४	३८८	४२६
१७	५५	८९	११९	१४५	१६६	१८१	१८२	१८३	१८४	२४९	२५१	२५२	२५४	२५३	२७६	२९७	३२३	३५३	३८७	४२५
१८	५६	९०	१२०	१४६	१६८	१८५	१९७	१९८	१९९	२३६	२३८	२४०	२३९	२५७	२७४	२९६	३२२	३५२	३८६	४२४
१९	५७	९१	१२१	१४७	१६९	१८७	२००	२०९	२१०	२२७	२२८	२३१	२४२	२५५	२७३	२९५	३२१	३५१	३८५	४२३
४०२	३६६	३३४	३०६	२८२	२६२	२४६	२३४	२२६	२२०	२१९	२२४	२१६	२०८	१९६	१८०	१६०	१३६	१०८	७६	४०
४०३	३६७	३३५	३०७	२८३	२६३	२४७	२३५	२२९	२२५	२२१	२१७	२१३	२०७	१९५	१७९	१५९	१३५	१०७	७५	३९
४०४	३६८	३३६	३०८	२८४	२६४	२४८	२३७	२३०	२१८	२२३	२२२	२१२	२०५	१९४	१७८	१५८	१३४	१०६	७४	३८
४०५	३६९	३३७	३०९	२८५	२६५	२५०	२४१	२११	२३२	२१५	२१४	२३३	२०१	१९२	१७७	१५७	१३३	१०५	७३	३७
४०६	३७०	३३८	३१०	२८६	२६७	२५६	२०३	२४४	२४३	२०६	२०४	२०२	२४५	१८६	१७५	१५६	१३२	१०४	७२	३६
४०७	३७१	३३९	३११	२८८	२७५	१८९	२६०	२५९	२५८	१९३	१९१	१९०	१८८	२६१	१६६	१५४	१३१	१०३	७१	३५
४०८	३७२	३४०	३१३	२९८	१७१	२८०	२७९	२७८	२७७	१७६	१७४	१७३	१७२	१७७	२८१	१४४	१२९	१०२	७०	३४
४०९	३७३	३४२	३२५	१४९	३०४	३०३	३०२	३०१	३००	१५५	१५३	१५२	१५१	१५०	१४८	३०५	११७	१००	६९	३५
४१०	३७५	३५६	१२३	३३२	३३१	३३०	३२९	३२८	३२७	१३०	१२८	१२७	१२६	१२५	१२४	१२२	३३३	८६	६७	३२
४१२	३९१	३९३	३६४	३६३	३६२	३६१	३६०	३५९	३५८	१०१	९९	९८	९७	९६	९५	९४	९२	३६५	५१	३०
४३०	५९	४००	३९९	३९८	३९७	३९६	३९५	३९४	३९३	६८	६६	६५	६४	६३	६२	६१	६०	५८	४०१	१२
२१	४४०	४३९	४३८	४३७	४३६	४३५	४३४	४३३	४३२	३१	२९	२८	२७	२६	२५	२४	२३	२२	२०	४४१

३२



अभिचार-क्रिया



यद्यपि अभिचार-क्रियाका विशेष विवरण अथर्ववेदमें ही प्राप्त होता है तथापि तन्त्रमें भी छह प्रकारके अभिचारका उल्लेख है। १. मारण २. मोहन ३. स्तम्भन ४. विद्वेषण ५. उच्चाटन ६. वशीकरण। इनका शब्दिक अर्थ इस प्रकार है-

१. मारण— क्रियादि-द्वारा किसीका प्राणनाश करना।

२. मोहन— किसीके मनको मोह लेना। पहले राजसभा आदि स्थानोंमें जाते समय कोई कोई मनुष्य इसी क्रियाका अनुष्ठान करते थे। पहले लोगोंको ऐसा विश्वास था कि मालिक उनसे मुग्ध होकर उनपर प्रसन्न होंगे।

३. स्तम्भन— मंत्र-द्वारा अस्त्र, अग्नि आदिकी शक्तिका नाश करना।

४. विद्वेषण— दो मनुष्योंमें अधिक प्रीति देखकर विशेष क्रियादि-द्वारा उनके मनमें भेद डालकर विरोध खड़ा कर देना।

५. उच्चाटन— मनको चंचल या उन्मत्त बनाना।

६. वशीकरण— किसी स्त्री आदिको वशीभूत कर लेना।

इन छहों अभिचारोंका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है-

मारण

पहले अनेक प्रकारसे मारण किया जाता था। अब भी कहीं कहीं यह काम होता है। तन्त्रसारके मतसे मारणक्रिया इस प्रकार सम्पन्न की जाती है-

नियमके अनुसार पहले देवीकी पूजा होम आदि करना चाहिए। उसके बाद जिस शुत्रको मारना हो उसका नाम लेकर खङ्गअभिमन्त्रित करना आवश्यक है—'ॐ विरुद्धरूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा'। फिर एक बकरा लेकर—'छागादिकममुकोऽसि' इस तरह शत्रुका नाम कहकर अभिमन्त्रित करना चाहिए। यह प्रकरण समाप्त हो जानेपर बकरेके मुँहँपर तीन जगह लाल सूत बाँधकर शत्रुका नाम लेकर प्राणप्रतिष्ठा करनी पड़ती है। उसका मंत्र यह है-

ॐ अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम्।
विनाशय महादेवि स्पें स्पें खादय खादय।।

इस प्रकार मंत्र पढ़कर बकरेके सिरपर फूल चढ़ाकर उसकी पूजा करके बलिमंत्र पढ़ना चाहिए। फिर यह मंत्र पढ़कर बलिको उत्सर्ग करना पड़ता है—

''अद्याश्विने मासि महानवम्यां अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा अमुकशत्रुनाशाय इमं छागं अमुक दैवतं भगवत्यै दुर्गायै तुभ्यमहं संप्रददे।''



उसके बाद आं क्रूं फट्— यह मंत्र पढ़कर वलिको काट डालना चाहिए। एतद्रुधिरं दुर्गायै नमः— यह कहनेके बाद रक्त और मस्तक देवीको देते हैं। अन्तमें मूल मंत्र पढ़कर अष्टांगके मांससे होम करनेपर उसी क्षण शत्रुका प्राण नष्ट हो जाता है।

तान्त्रिक लोग अब भी मारणादि अभिचार करते हैं। कहते हैं कि शतभिषा नक्षत्रको आधी रातके समय जलमें डुबकी मारकर और शत्रुका नाम लेकर सरौतेसे एक ही बारमें एक सुपारी काट डालनेपर शत्रुका प्राण नष्ट हो जाता है। बड़े वृद्ध लोगोंका कहना है कि पहले जो लोग मारणादि अभिचार क्रिया करते थे उन लोगोंको राजा और जमींदार दण्ड देते थे। यों भी ये क्रियाएँ निन्दित मानी गई हैं और अभिचार-क्रिया करनेवालोंका अन्त बड़ा भयानक होता है।

मोहन

तान्त्रिक होम मंत्र और औषधादिद्वारा लोगोंको मुग्ध कर लेते हैं। कहते है कि, सधवा स्त्रीका चिताभस्म, सुरत और अगुरु चन्दन एक साथ मिलाकर बाँऐं हाथकी प्रदेशिनी था कनिष्ठा उंगलीसे कपालमें बिन्दी लगा लेनेपर उसे देखकर सभी मुग्ध हो जाते हैं।

स्तम्भन

पहले समयमें बहुतसे चतुर तान्त्रिक लोग अनेक प्रकारकी चतुराईसे किसीका वाक्स्तम्भन, किसीका हस्तादि स्तम्भन, शत्रुकी सेनाका आगमन-स्तम्भन आदि अभिचार करते थे। अग्नि-स्तम्भनकी प्रक्रिया इस प्रकार प्रसिद्ध है - बेलका आटा और जोंक दोनोंको एक साथ पीसकर हाथमें लगा लेनेसे अग्निस्तम्भन होता है। तान्त्रिकोंके मतसे शीतकालमें स्तम्भन अभिचार करना श्रेष्ठ है।

विद्वेषण

यह क्रिया ग्रीष्मकालमें पूर्णिमा तिथिको दोपहरके समय की जाती है। जिन लोगोंमें विद्वेष उत्पन्न करना हो भैंसका गोबर और घोड़ेकी लीद गोमूत्रमें मिलाकर उसीसे उन लोगोंका नाम लिखनेपर शीघ्र ही विरोध उठ खड़ा होता है।

उच्चाटन

तंत्रके मतसे कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी या अष्टमीको जब शनिवार पड़ता हो तब यह क्रिया करनी चाहिए। इस अभिचार-क्रियाकी देवता दुर्गा हैं। बालका धागा बनाकर घोड़ेके दाँतकी माला पिरोते हैं। फिर दुर्गाकी पूजा आदि करके जिसके नामसे यह माला जपी जाती है शीघ्र ही उसका मन उच्चाट हो जाता है।

वशीकरण

तान्त्रिक लोग स्त्री प्रभृतिको वशीभूत करनेके लिये अनेक प्रकारके औषध प्रयोग करते हैं। कोई कोई स्त्री भी पुरुषको वशीभूत करनेके लिये तम्बूलादिमें औषध खिला देती हैं। इस कुक्रिया-द्वारा कितनी ही बार विघ्न उठ खड़ा हुआ है। कहते हैं कि पानके साथ ब्रह्मदण्डी, बच, केऊ, प्रियंगु और नागकेशर खिला देनेसे स्त्री वशीभूत हो जाती है। श्वेत अपराजिताकी जड़ और गोरोचन दोनोंको एक साथ पीसकर जिसे वशीभूत करना हो सौ बार उसका नाम लेकर कपालमें बिन्दु या तिलक लगा लेना चाहिए। इससे राजा, प्रभु, स्त्री, शत्रु आदि सभी वशीभूत हो जाते हैं।



अभिचार-क्रियाओंसे बचनेके उपाय

अभिचार-क्रियाओंसे पागलपन, शून्यता तथा उपद्रव करनेकी प्रवृत्ति व्यक्तिमें आ जाती है। प्राय:

अभिचार-क्रियाओंका प्रभाव बालकों और स्त्रियोंपर अधिक पड़ता है। मध्याह्न या संध्याके समय घरसे बाहर निकलनेवाले बालकों तथा स्त्रियोंपर इन क्रियाओंका अधिक प्रभाव पड़ता है।

इन अभिचार-क्रियाओंके अतिरिक्त कुदृष्टि लगना, भूत-प्रेत-पिशाच-यक्ष-गन्धर्व-डकिनी-शाकिनी-जिन्न आदिका प्रभाव भी प्राय: बालकों और स्त्रियोंपर लगता है और कभी कभी युवा और प्रौढ़ लोगोंपर भी लगता है। कुछ अभिचार-क्रिया करनेवाले लोग घरोंमें उड़द या अन्य अन्नोंके दाने आभिमन्त्रित कराकर फेंक देते है अथवा घरोंमें कपड़ोंपर रक्तके छीटे दिखाई देते हैं या रक्तके चिह्न दीवारोंपर और पात्रोंपर दिखाई दे जाते हैं। इन सब क्रियाओंके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे भी बाधाएँ होती है जैसे औषधि न लगना, दौरे आना, तथा इस प्रकारकी अन्य विभीषिकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। उन सबको दूर करनेका उपाय यह है कि निम्नांकित मन्त्र भोजपत्रपर या कागजपर लाल रोशनाईसे लिखकर उसमें काला तिल रखकर यन्त्रमें डालकर लाल डोरेसे व्यक्तिके गलेमें बाँध देना चाहिए। यदि गलेमें बाँधना सम्भव न हो तो पुरुषकी दाँईं बाँहपर और स्त्रीकी बाँईं भुजापर बाँध देना चाहिए। मन्त्र यह है—

अपसर्पन्तु ते भूताः ये भूताः देहसंस्थिताः।
ये भूताः कष्टदातारः ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

यदि यह मन्त्र लिखना सम्भव न हो तो केवल त्रिशूल बनाकर काला तिल रखकर यन्त्र बनाकर गलेमें पहना दे।

कभी कभी घरमें प्रेतका आवास हो जाता है जिससे घरमें निरन्तर कलह, अशान्ति, रोग आदि विघ्नोंका उत्पात होता रहता है। ऐसी दशामें ऊपरवाला मन्त्र पढ़कर घरमें सब कोठोंमें और छतपर काला तिल छिड़क देना चाहिए ओर घरके द्वारपर मन्त्र पढ़कर कील गाड़ देनी चाहिए। एक दिनके लिये एक काला बकरा लाकर घरमें बाँध देना चाहिए और ग्यारह बार ऊपरवाला मन्त्र पढ़ना चाहिए। फिर कभी घरमें प्रेत-बाधा नहीं होगी।

अभिचार क्रियाओंसे बचनेके लिये दूसरा उपाय यह है कि गंगाजलमें तुलसीके पत्ते डालकर पात्रको हाथमें रखकर ऊपरवाला मन्त्र पढ़कर प्रभावित व्यक्तिको पिला देना चाहिए। इससे भी प्रेत-बाधा दूर हो जाती है।

किसी विद्वानके ऊपर तिल आभिमन्त्रित करके अपने पास पुड़िया या पोटलीमें रक्खे रहनेसे भी किसी अभिचार-क्रियाका या भूतप्रेत-बाधाका भय नहीं रहता।

किसी वैदिक कर्मकाण्डीसे पुरुषसूक्तका पाठ कराने अथवा रुद्राष्टाध्यायीके पंचम अध्यायका पाठ करानेसे भी अभिचार-क्रियाका प्रभाव दूर हो जाता है।

नवार्णमन्त्रकी १०८ आहुति पूर्वाभिमुख होकर देनेसे भी अभिचार-क्रियाका दोष और प्रभाव दूर हो जाता है।



यदि किसीकी दुकानको किसीने कीलित कर दिया हो तो उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर तिल छिड़ककर दुकानके आगे कील गाड़ देनी चाहिए और एक पुड़ियामें काला तिल मन्त्र पढ़कर या केवल त्रिशूल

बनाकर कागजमें लपेटकर दूकानमें ऐसे स्थानपर ऊपर टाँग देनी चाहिए जहाँ किसीका हाथ न पहुँच सके और एक पुड़िया वैसी ही बनाकर तिजोरीमें रख देनी चाहिए।

प्राय: कभी कभी किसीके घरमें बन्द सन्दूकमें आग लग जाती है या कोई सामान देखते देखते लुप्त हो जाता है, वहाँ भी मन्त्र पढ़कर तिल छिड़कनेसे वह बाधा दूर हो जाती है।

जो लोग अभिचार-क्रिया करते या कराते हैं, उनके यहाँ निश्चित रूपसे जवान-मृत्यु होती है या घरमें अशान्ति, क्लेश और अनेक प्रकारके रोग, शोक आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं और बहुत भंयकर मृत्यु होती है अत: न तो अभिचार-क्रिया करनी चाहिए न करानी चाहिए। जब देवतापर शत्रुका आक्रमण हो तब उसके स्तम्भनके लिये अभिचार-क्रिया कराई जा सकती है किन्तु ऐसी क्रिया करने-वाले पाँचसे कम न हों।





: द्वाविंशति यंत्र :

१	२	३	४	५	२६	२७	२८	२९	३०	३२	४७३	४७२	४७१	४७०	४६९	४६८	४६७	४६६	४६५	४६४	४६३
११	४३	४४	४५	४६	४७	६८	६९	७०	७१	७२	४३२	४३१	४३०	४२९	४२८	४२७	४२६	४२५	४२४	४२३	४७४
२३	५२	८१	८२	८३	८४	८६	१०६	१०७	१०८	१०९	३९५	३९४	३९३	३९२	३९१	३९०	३८९	३८८	३८७	४३३	४६२
२४	६४	९९	११५	११६	११७	११८	१३५	१३६	१३७	१३८	३६२	३६१	३६०	३५९	३५८	३५७	३५६	३५५	३८६	४२१	४६१
२५	६५	१००	१२१	१४५	१४६	१४७	१४८	१६५	१६६	१६८	३३३	३३२	३३१	३३०	३२९	३२८	३२७	३६४	३८५	४२०	४६०
३१	६६	१०१	१३१	१५९	१७१	१७२	१७३	१८६	१८७	१८८	३०८	३०७	३०६	३०५	३०४	३०३	३२६	३५४	३८४	४१९	४५४
३३	६७	१०३	१३२	१६०	१८३	१९३	१९५	१९७	२०७	२०८	२८७	२८६	२८५	२८४	२८३	३०२	३२५	३५३	३८२	४१८	४५२
३४	७४	१०४	१४०	१६१	१८४	२०३	२११	२१२	२२१	२२२	२७०	२६९	२६८	२६७	२८२	३०१	३२४	३४५	३८१	४११	४५१
३५	७५	१०५	१४१	१६२	१८५	२०४	२१९	२२५	२३१	२३३	२५६	२५७	२५३	२६६	२८१	३००	३२३	३४४	३८०	४१०	४५०
३७	७८	११०	१४३	१६९	१९१	२०९	२२३	२३०	२४२	२३५	२४४	२४९	२५५	२६२	२७६	२९४	३१६	३४२	३७५	४०७	४४८
४४३	४०५	३७१	३४१	३१५	२९३	२७५	२६१	२५१	२४७	२४६	२३७	२४०	२३४	२२४	२१०	१९२	१७०	१४४	११४	८०	४२
४४४	४०६	३७२	३४३	३१८	२९५	२७९	२६५	२५८	२४५	२४८	२३९	२३८	२२७	२२०	२०६	१९०	१६७	१४२	११३	७९	४१
४४५	४०८	३७३	३४६	३२१	२९६	२८०	२७१	२५९	२३६	२४१	२५०	२४३	२२६	२१४	२०५	१८९	१६४	१३९	११२	७७	४०
४४६	४०९	३७४	३५१	३२२	३०९	२८९	२७२	२३२	२५४	२५२	२२९	२२८	२६०	२१३	१९६	१७६	१६३	१३४	१११	७६	३९
४४७	४१२	३८३	३५२	३३४	३१०	२९१	२१८	२७३	२६४	२६३	२१५	२१६	२१७	२७४	१९४	१७५	१५१	१३३	१०२	७३	३८
४४९	४२२	३९६	३५३	३३५	३११	२०२	२९०	२८८	२७८	२७७	१९८	१९९	२००	२०१	२९२	१७४	१५०	१२२	८९	६३	३६
४७५	४३४	३९७	३६५	३३६	१८२	३१३	३१२	२९९	२९८	२९७	१७७	१७८	१७९	१८०	१८१	३१४	१४९	१२०	८८	५१	१०
४७६	४३५	३९८	३६६	१५८	३३९	३३८	३३७	३२०	३१९	३१७	१५२	१५३	१५४	१५५	१५६	१५७	३४०	११९	८७	५०	९
४७७	४३६	४००	१३०	३६९	३६८	३६७	३५०	३४९	३४८	३४७	१२३	१२४	१२५	१२६	१२७	१२८	१२९	३७०	८५	४९	८
४७८	४३७	९८	४०३	४०२	४०१	३९९	३७९	३७८	३७७	३७६	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	४०४	४८	७
४७९	६२	४४१	४४०	४३९	४३८	४१७	४१६	४१५	४१४	४१३	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	४४२	६
२२	४८३	४८२	४८१	४८०	४५९	४५८	४५७	४५६	४५५	४५३	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	४८४

परिशिष्ट - १

तान्त्रिक सिद्ध-पीठ

वह स्थान सिद्ध-पीठ कहलाता है जहाँ योग, तप या तान्त्रिक प्रयोग करनेसे शीघ्र सिद्धि प्राप्त हो। तन्त्रशास्त्रमें लिखा है कि जिस स्थानमें देवीके उद्देश्यसे लाख पशुकी बलि हुई हो, या करोड़ होम या महाविद्याके करोड़ मन्त्रोंका जप हुआ हो, उस स्थानको सिद्ध-पीठ कहते हैं, वहीं मन्त्रसिद्धि होती है। अब ऐसे केवल दो सिद्धपीठ रह गए हैं एक है कामाख्या और दूसरा है सह्याद्रि। तीसरा हिंगलाज देवीका सिद्धपीठ बलूचिस्तानमें होनेके कारण पाकिस्तानमें चला गया है।

भारतमें पाँच तान्त्रिक सिद्धपीठ प्रसिद्ध रहे हैं जहाँ बहुत बड़े बड़े तान्त्रिक सिद्ध स्वयं भी सिद्ध तान्त्रिक थे और तन्त्रकी दीक्षा भी देते थे। इनमेंसे एक कश्मीरमें क्षीरभवानीका सिद्धपीठ था जो अब समाप्त हो गया है। दूसरा पंजाबमें ज्वालादेवीमें था जहाँ अब कोई सिद्ध नहीं रह गया है। तीसरा बलूचिस्तानमें हिंगलाजदेवीका पीठ था जो अब पाकिस्तानमें चला गया है। चौथा कामरूप (आसाम) का कामाख्या पीठ है जहाँ अब भी कामाख्या मन्दिरसे कुछ दूरपर एक सिद्ध महात्मा रहते हैं किन्तु उनके पास पिछले साठ वर्षोंसे कोई साधक दीक्षा लेने नहीं गया। उससे पहले भी जो दो-तीन व्यक्ति साधनाके लिये गए थे वे भी बीचमें ही छोड़कर भाग गए क्योंकि तान्त्रिक साधनामें समय बहुत लगता है और बड़ी कठोर तपस्या करनी पड़ती है। पाँचवा सिद्ध पीठ दक्षिणमें सह्यद्रि पर्वतपर है जहाँ एक सिद्ध महात्मा पिछले अस्सी वर्षोंसे एकान्त साधना कर रहे हैं। उनके पास भी कोई साधक नहीं गया। नीचे इन सिद्ध पीठोंमेंसे कुछका परिचय दिया जा रहा है।

हिङ्गलाज

यह बलूचिस्तानका प्रसिद्ध प्राचीन नगर और तीर्थस्थान है जो सिन्धुनदीके मुहानेसे अस्सी (८०) मील पश्चिम तथा अरब समुद्रसे बारह (१२) मील दूर है जहाँ गिरिमाला मकरान और लूस पृथक् होते हैं। उसी गिरिमालाके प्रान्तभागमें यह शहर बसा हुआ है। पहाड़के ऊपर एक भीषण कालीमन्दिर है। स्थानीय लोगोंके निकट वह काली नानी या महामायी कहलाती हैं। इसी देवीके कारण हिन्दू लोग इसे महापीठ स्थान समझते हैं।

तन्त्रचूडामणि और वृहन्नीलतन्त्रमें यह स्थान हिङ्गला नामसे परिचित है। उक्त तन्त्रोंके मतसे यह ५१ महापीठोंमेंसे एक है। यहाँ देवीका ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। यहाँकी शक्तिका नाम कोट्टरी या कोट्टरीशा तथा भैरवका नाम भीमलोचन है।

इस तीर्थके अत्यन्त दुर्गम होनेके कारण बहुतसे हिन्दू यात्रियोंको यहाँ आनेका साहस नहीं होता। यहाँ अँधेरी गुफामें ज्योतिके उसी प्रकार दर्शन होते हैं जिस प्रकार काँगड़ेकी ज्वालामुखीमें। करांची बन्दरसे उत्तरकी ओर समुद्रके किनारे किनारे ४५ कोस चलकर लोग यहाँ पहुँचते हैं।

ज्वालामालिनी

तन्त्रके अनुसार इन देवीकी पूजादिका विवरण तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है-ॐ नमः भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्रसे अङ्गन्यास करना पड़ता है। ॐ नमः हृदयं प्रोक्तं भगवतीति शिरः स्मृतं। ज्वालामालिनि च शिखा गृध्रगणपरिवृते। ततः वर्म्मस्वाहास्त्र-मित्युक्तं जातियुक्तं न्यसेत

तनौ इस मन्त्र द्वारा अङ्गन्यास करना चाहिए। ॐ नमः हृदयाय नमः इत्यादि मन्त्र २५ दिनों तक आठ हजार जप करनेसे जो विषय साधन किया जाय वह अवश्य सिद्ध हो जाता है और इस मन्त्रका स्मरण रखनेसे शत्रुका नाश होता है।

ज्वालादेवी

शारदापीठमें स्थिता ज्वालादेवी पंजाबके काँगड़ा जिलेके अन्तर्गत देरा तहसीलमें विद्यमान हैं। तन्त्रमें लिखा है कि जब सतीके शवको लेकर शिवजी घूम रहे थे तब यहाँपर सतीकी जीभ गिर पड़ी थी। यहाँकी देवीका नाम अम्बिका और भैरवका नाम उन्मत्त है। यहाँ पहाड़के समान जलानेवाली भाप निकला करती है। इसीको देवीका ज्वलन्त मुख कहते हैं।

पंजाब प्रदेशमें काँगड़ा जिलेके अन्तर्गत यह स्थान नादीनसे दस (१०) मील उत्तर-पश्चिममें काँगड़ासे नादीन जानेके रास्तेपर विपाशा नदीके उत्तर सीमावर्त्ती चाङ्ग नामक दुरारोह पर्वत-श्रेणीके नीचे अवस्थित है। पहले यह नगर बहुत समृद्धिशाली था। अभी भी इसकी पूर्व कीर्त्तिका ध्वंसावशेष देखा जाता है। तन्त्रादिके मतसे यह एक महापीठ है। इसी स्थानपर सतीकी जिह्वा गिरी थी।

पर्वतके एक स्थानसे पत्थर छेदकर सोता और एक प्रकारकी दाह्य वाष्प हमेशा निकलता रहता है। दीपके संयोगसे वाष्प जलने लगता है। इस स्थानको देवीका ज्वलन्तमुख कहते हैं; इसी कारण इस स्थानका नाम ज्वालादेवी पड़ा है। सोतेके ऊपर एक मन्दिर बनाया गया है। इसके बीचमें एक हौजसे जल और कुछ कुछ गर्म वाष्प निकलता है। मन्दिरके याजकगण घृतके संयोगसे वाष्पको अधिक देरतक प्रज्वलित रखते हैं। महाराजा रणजीतसिंहने मन्दिरका अभ्यन्तर भाग सोनेसे जड़ दिया है। प्रतिदिन बहुतसे यात्री इस तीर्थमें आते हैं। आश्विन मासमें यहाँ बहुतसे यात्रियोंका समागम होता है।

प्रवाद है कि पूर्व समयमें एक दिन देवीने दक्षिण देशके एक ब्राह्मण कुमारको स्वप्नमें दर्शन दिया और उत्तरदेशमें आकर इस स्थानको बाहर निकालनेका आदेश दिया। उन्हींके कथनानुसार ब्राह्मण-कुमारने इस स्थानको बाहर करके वहाँ भगवतीकी पूजा की और एक मन्दिर निर्माण किया। वर्त्तमान मन्दिर पर्वतसे निकले हुए प्रस्रवणके ऊपर निर्मित है। इसकी चूड़ा और गुम्बज स्वर्ण मण्डित है। खड्गसिंहसे प्रदत्त चाँदीके किवाड़ मन्दिरमें शिल्पनैपुण्यके परिचायक हैं। लौर्ड हार्डिंज इस किवाड़को देखकर इतने प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने इसकी एक प्रतिमूर्त्ति ही बनवा ली थी। मन्दिरमें एक भी देवमूर्त्ति नहीं है।

मन्दिरका अभ्यन्तर छोड़कर और भी कई स्थानोंमें जल और कुछ कुछ गरम वाष्प निकलता है। किसी किसीके मतसे वह अग्नि जलन्धर नामक दैत्यके मुखसे निकलती है। कहते हैं कि महादेवने उस दुर्दान्त दैत्यको परास्त करके उसे एक पर्वतसे दबा रक्खा था। उस दैत्यके मुखसे आज भी अग्नि बाहर निकलती है। जो कुछ हो, वर्त्तमान मन्दिर भगवती और इसका मध्यस्थ कुण्ड देवीके उल्कामयी मुखके नामसे सर्वत्र विख्यात है।

देवीके मन्दिरके चारों ओर बहुतसे छोटे देवालय, धर्मशाला, पान्थनिवास और पटियालाराज-निर्मित एक सराय है। दरिद्र तीर्थयात्री उक्त स्थानसे भोजनादि पाते हैं। यहाँ बहुतसे ब्राह्मण, संन्यासी, अतिथि, तीर्थयात्री और गाय आदि वास करती हैं। नगरकी अवस्था बहुत अच्छी नहीं है, किन्तु बाज़ार बहुत बड़ा है जहाँ अनेक देवमूर्त्ति, जपमाला आदि उपासनाकी सामग्री देखी जाती है।

हिमालय पर्वत तथा इसके आस-पासके समस्त क्षेत्रोंका उत्पन्न द्रव्य इस नगरमें उत्पन्न द्रव्यसे बदला जाता है। कुलू नामक स्थानसे अफ़ीमकी रफ़तनी अधिक होती है। नगरमें छह जगह छह गरम सोते बहते हैं। इनके

जलमें लवण और पोटेशियम आयोडाइड मिश्रित है, इसी कारण यहाँका जल पीनेसे अनके तरहके रोग जाते रहते हैं।

ज्वालादेवीका प्रस्त्रवण और उष्णवाष्प कबसे निकला है, इसका निर्णय करना कठिन है। सम्भवत: ये दोनों ईसवी शताब्दीके बहुत पहले भी विद्यमान थे। चीन परिव्राजक युएनचुयाङ्गने भारतवर्षमें आकर पंजाब प्रदेशके एक ही पर्वतके शीतल और उष्ण प्रस्त्रवणका वर्णन किया है। संभवत: वही उष्ण प्रस्त्रवण ज्वालादेवीका अग्निकुण्ड होगा। हिन्दुओंमें प्रवाद है कि दिल्लीश्वर फीरोजशाह तुगलकने ज्वालादेवीका दर्शन और उनकी पूजा कर काँगड़ा देश जीता था।

सिद्धपीठ कामाख्या

भगवानुवाच

कामार्थमागता यस्मान्मया सार्धं महागिरौ।
कामाख्या प्रोच्यते तस्मात् नीलकूटे रहोगता।।

कामदा कामिनी कामा कान्ता कामाङ्गदायिनी।
कामाङ्गनाशिनी यस्मात् कामाख्या तेन चोच्यते।।

(कालिकापुराण)

भगवान्ने कहा -महादेवी कामाख्या अभिलाष पूर्ण करनेके लिये हमारे साथ नीलकूट गईं थी। इसीसे कामाख्या नाम प्राप्त हुआ। वह कामदा, कामिनी, कामा, कान्ता, कामाङ्गदायिनी और कामाङ्गनाशिनी होनेसें ''कामाख्या'' कहायी हैं।

कामाख्या देवी ही इस स्थानकी अधिष्ठात्री देवता हैं। कालिकापुराणमें इस पीठस्थानके संबंधमें लिखा है— दक्षके यज्ञमें सतीने प्राण छोड़ा था। महादेव उनकी मृत देह कन्धेपर रखकर बहुत दिन-तक इधर-उधर घूमते रहे। क्रमश: उस शरीरसे स्थान स्थानपर अवयव विशेष गिरा था। उसीसे उन सारे स्थानोंपर एक एक पवित्र पीठ बन गया। परिशेषकी कुंजिका नामक पीठस्थानमें देवीका योनिमण्डल गिरा। उस समय महामाया योगनिद्रा भी महादेवीमें लीन थी। उन्होंनें फिर अत्यन्त ऊँचे पर्वतका रूप धारणकर पातालमें प्रवेश किया। यह व्यापार देख ब्रह्मने पर्वत रूपमें उन्हें पकड़ा था। विष्णु भी पृथ्वीपर आक्रमण करके उनके निकट उपस्थित हुए। ये तीनों पर्वत सौ सौ योजन ऊँचे थे; किन्तु देवीके आक्रमणसे अधोगत होकर एक कोस परिमित ऊँचे रह गए। उनमें पूर्व दिशाका पर्वत ब्रह्मशैल है उसे 'श्वेत' कहते हैं। वह सभीकी अपेक्षा अधिक ऊँचा है। पश्चिम दिशाका पर्वत वाराह नामक 'विष्णुशैल' है। फिर दोनोंके बीचमें स्थित त्रिकोण उलूखलाकृति शैलका नाम नील है। वही महादेवका रूपान्तर है। इनसे अलग ईशान दिशाके दीप्तिशाली पर्वतरूपी कूर्मका नाम 'मणिकर्ण' है। वायु कोणमें स्थित पर्वत मणिपर्वत कहलाता है। उक्त पर्वत श्रीकृष्णका अतिप्रिय स्थान है। नैर्ऋतकोणमें स्थित पर्वतका नाम 'गन्धमादन' है। वह महादेवका प्रिय स्थान है। ब्रह्मशक्ति शिलाके पूर्व भागमें स्थित पर्वत भी महादेवका रूपान्तर है। उसे भस्माचल कहते हैं।

इसी प्रकार पवित्र नीलकूट पर्वतस्थ कुंजिका पीठमें देवी महेश्वरीने महादेवीके साथ अवस्थान किया। उनका योनिमण्डल ही गिरकर पत्थर बन गया था। वही कामाख्या देवीके नामसे विख्यात हुआ। मनुष्य उक्त शिलाके

स्पर्शसे देवत्व पाते और देव ब्रह्मलोक जाते हैं। उक्त स्थानका माहात्म्य अति अद्‌भुत् है। उसमें लौह डाल देनेसे उसी समय मस्म हो जाता है।

उक्त योनि-मण्डल २१ अङ्गुलि दीर्घ और १ वितस्ति (बालिश्त) विस्तृत है। वह सिन्दूर और कुमकुम आदिसे लिपा हुआ है। देवी महामाया वहाँ प्रत्यह पञ्चकामिनी मूर्त्तिसे अवस्थान करती है। पञ्चमूर्त्तिके नाम इस प्रकार हैं— कामख्या, त्रिपुरा, कामेश्वरी, शारदा और महोत्साहा। देवीके चारों ओर अष्ट योगिनी रहती हैं। उनके नाम हैं— गुप्तकामा, श्रीकामा, विन्ध्यवासिनी, कटीश्वरी, धनस्था, पाददुर्गा, दीर्घेश्वरी और प्रकटा। अपरापर तीर्थ भी वहाँ जल रूपसे अवस्थित हैं। विष्णु उसमें तीरकमल नामसे अवस्थान करते हैं। देवीके अंगमें लक्ष्मी ललिता नामसे और सरस्वती, मातंगी नामसे अवस्थित हैं। देवीके प्रिय पुत्र गणदेव पर्वतके पूर्वभागमें द्वारदेशपर सिद्ध नामसे रहते हैं। कल्पवृक्ष और कल्पलता तिन्तिड़ी तथा अपराजिता रूपसे वहाँ अवस्थित हैं। वाराह-मूर्त्ति हरि पाण्डुनाथ नामसे परिचित हो रहे हैं। उन्होंने जहाँ मधु और कैटभासुरको मार गिराया था वहाँ निकट ही ब्रह्माने ब्रह्मकुण्ड बनाया है। उक्त ब्रह्मकुण्डके निकट गया और वाराणसी क्षेत्र योनिमण्डलके समान कुण्डरूपमें अवस्थित है। उसीके पास इन्द्र एवं अन्यान्य देवोंने महादेवकी सन्तुष्टिके लिये अमृतपूर्ण अमृतकुण्ड स्थापित किया था। उसके निकट कामेश्वर नामक महापुण्यतीर्थ कामकुण्ड है। सिद्धकुण्ड और कामकुण्डके मध्य भागमें केदार नामक क्षेत्र है। वह दैर्ध्य में १४ व्याम बैठता है। उसे छायाछत्र भी कहते हैं। गुप्तकुण्डके मध्य देशमें कामेश्वर पर्वतसे संलग्न शैलपुत्रीका नाम कामाख्या है। कामेश्वर और कामाख्याके मध्य देशमें कालरात्रि हैं। पीठ स्थानमें दीर्घेश्वरी, सीमाभागमें प्रचण्डिका और कामाख्या प्रस्तरके प्रान्त देशमें कूष्माण्डी नामवाली योगिनी रहती हैं। दक्षिण पीठमें कामेश्वरके अघोर नामक शिखरको परमार्थी लोग भैरव नामसे अभिहित करते हैं। उन्हीं भैरवके निकट चामुण्डा भैरवीका अवस्थान है। कामेश्वर और भैरवके मध्यवर्त्ती स्थानमें सुरापगा देवी हैं। सद्योजात नामक शिखर देशमें आम्रालकेश्वर हैं। उसी स्थानमें योगरूपिणी दुर्गा नामवाली नायिका हैं। फिर उक्त स्थानका अपक्व पत्रविशिष्ट लतावेष्टित आम्रातक वृक्षके निकट स्वयं गंगा सिद्धगंगा नामसे अवस्थित हैं। उनके समीप आम्रातक क्षेत्र नामक पुष्कर क्षेत्र है। ईशान दिशामें तत्पुरुष नामक शिखरके उपरिभागमें भुवनेश्वर देवका पीठ है। उसके निकट कामधेनु नामसे सुरभिकी शिलामूर्त्ति है। वह पाँच मूर्त्तियोंद्वारा पाँच भागोंमें विभक्त है। ब्रह्मपर्वतके ऊर्ध्वदेशमें भुवनेश्वरीके नामपर महागौरीकी शिलामूर्त्ति है। जहाँ ब्रह्माजी पर्वतरूपसे पर्वतरूपी महादेवके साथ मिलित हुए रहते हैं वहाँ अपराजिता नामकी कल्पलता अवस्थित है। कामधेनुके निकट अग्निकोणमें योनिरूपा कामाख्याका पीठ है। उसी स्थानपर विन्ध्यवासिनी नामसे चण्डघण्टा, वनवासिनी नामसे स्कन्दमाता और कात्यायनी नामसे पाददुर्गा योगिनीका अवस्थान है। उक्त सारी योगिनियाँ नीलशैलकी नैर्ऋत्य दिशामें अवस्थित है। पश्चिम द्वारपर हनुमान पीठमें पाषाणरूपी नन्दीका अवस्थान है।

(कालिका पु. ६१ अ.)

देवीगीतामें भी कामाख्या-पीठस्थान सर्वोत्कृष्ट माना और लिखा गया है।

देवी कामाख्या प्रतिमास इस स्थानमें रजस्वला होती हैं।

कामाख्याकी कुमारी-पूजा भगवती पूजाका विशेष अंग है। कामाख्यामें अनेक ब्राह्मण-कुमारियोंकी पूजा ग्रहण एक व्यवसाय हो गया है। पूजा हो या ना हो, कामाख्या-दर्शनके लिये पहुँचते ही कुमारी यात्रीको घेरकर पकड़ेंगी और दक्षिणा माँगने लगेंगी। न्यूनाधिक ३०० कुमारी सर्वदा कामाख्यामें रहती हैं।

कामाख्याके भीतर न्यूनाधिक ५२ तीर्थ-स्थान आज भी विद्यमान हैं; किन्तु दुःख है कि उनमें अनेक दुर्गम

अरण्यसे समावृत हैं। उक्त समस्त तीर्थोंके मध्य भगवती भुवनेश्वरी और दशमहाविद्याओंका पीठ स्थान ही अधिक प्रसिद्ध है।

कामाख्याके पूजा आदि निर्वाहको अहोम-राजाओंने अनेक भृत्य (पायक) और निष्कर भूमिका दान किया है। पायक कार्य विशेषपर भगवतीकी सेवामें लगे रहते हैं। प्रायः सारे देवालयोंमें पायक निष्कर भूमि पाते हैं जो कामाख्या केदार और माधवमें सर्वापेक्षा अधिक है।

परिशिष्ट - २

३३ महाविद्याएँ

अन्नपूर्णा, कामाख्या, काली, जम्भिनी, कमला, कामाक्षी, गुह्यकाली, त्वरिता, कमलात्मिका, कालिका, छिन्नमस्ता, तारा, तारिणी, धूमावती, भुवनेश्वरी, मोहिनी, तुलजा, नीला, भैरवी, वाग्वादिनी, त्रिपुरसुन्दरी, प्रत्यगिरा, महालक्ष्मी, वासली, त्रिपुरा, बगला, मातंगा, षोडशी, दुर्गा, बाला, मातंगी, शैलवासिनी, सुभारी।

परिशिष्ट - ३

दस महाविद्याओंके ध्यान और जप-मन्त्र

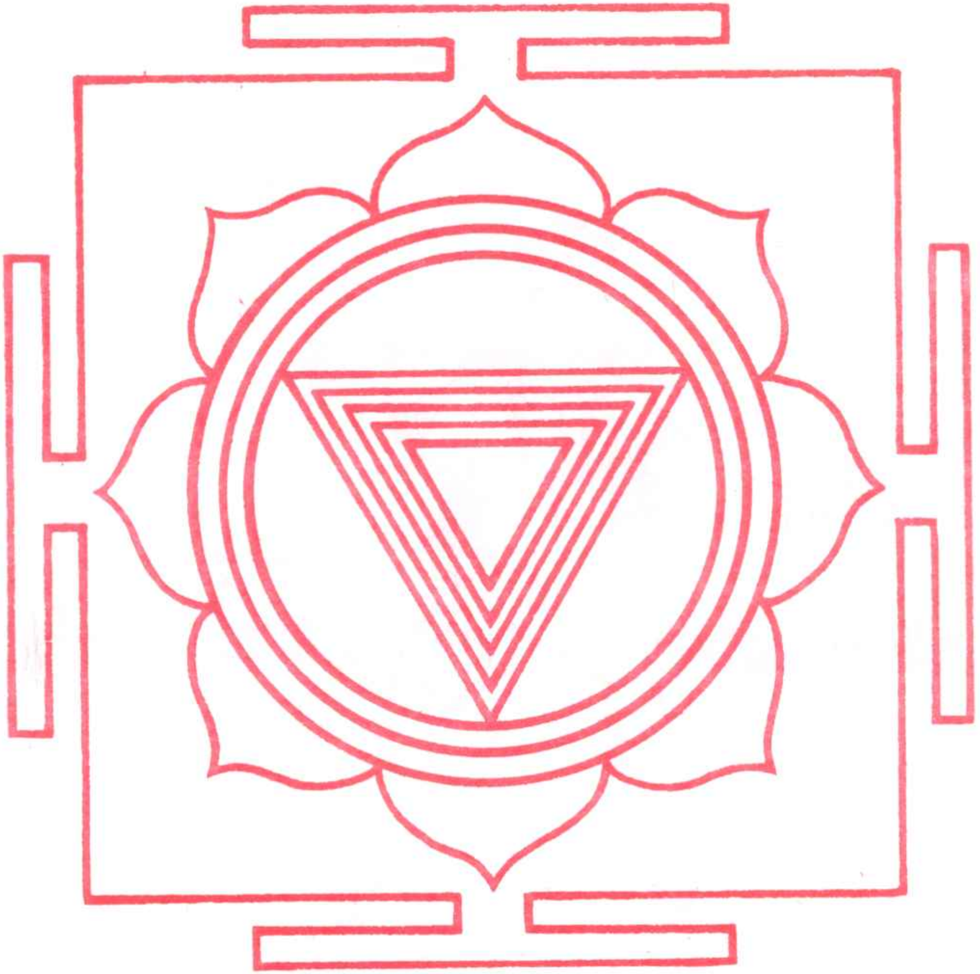


कालीध्यानम् - मन्त्र

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम्।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम्।।

मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वान्दिगम्बराम्।
एवं सञ्चिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम्।।

काली-यन्त्र



मन्त्र -

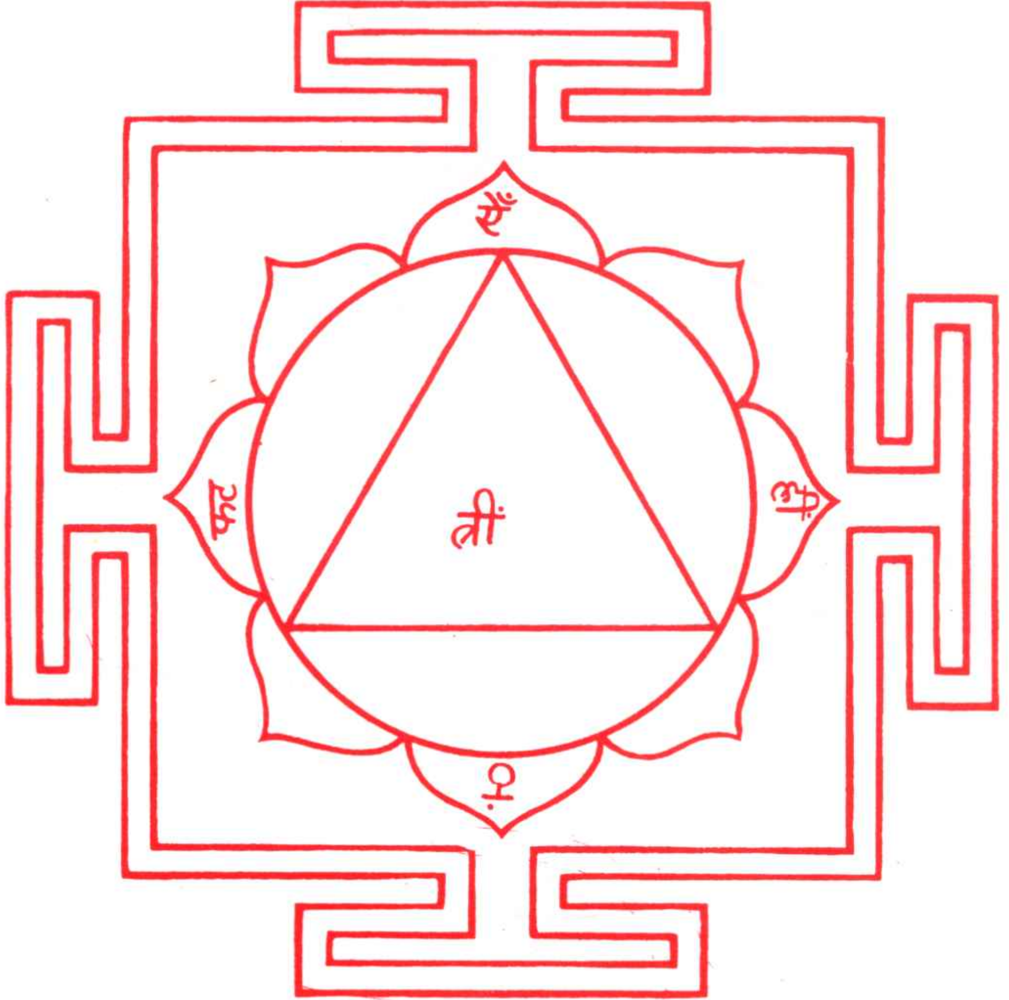
ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हुं हुं दक्षिणे कालिके क्रीं ३ ह्रीं २ हुं २



ताराध्यानम्

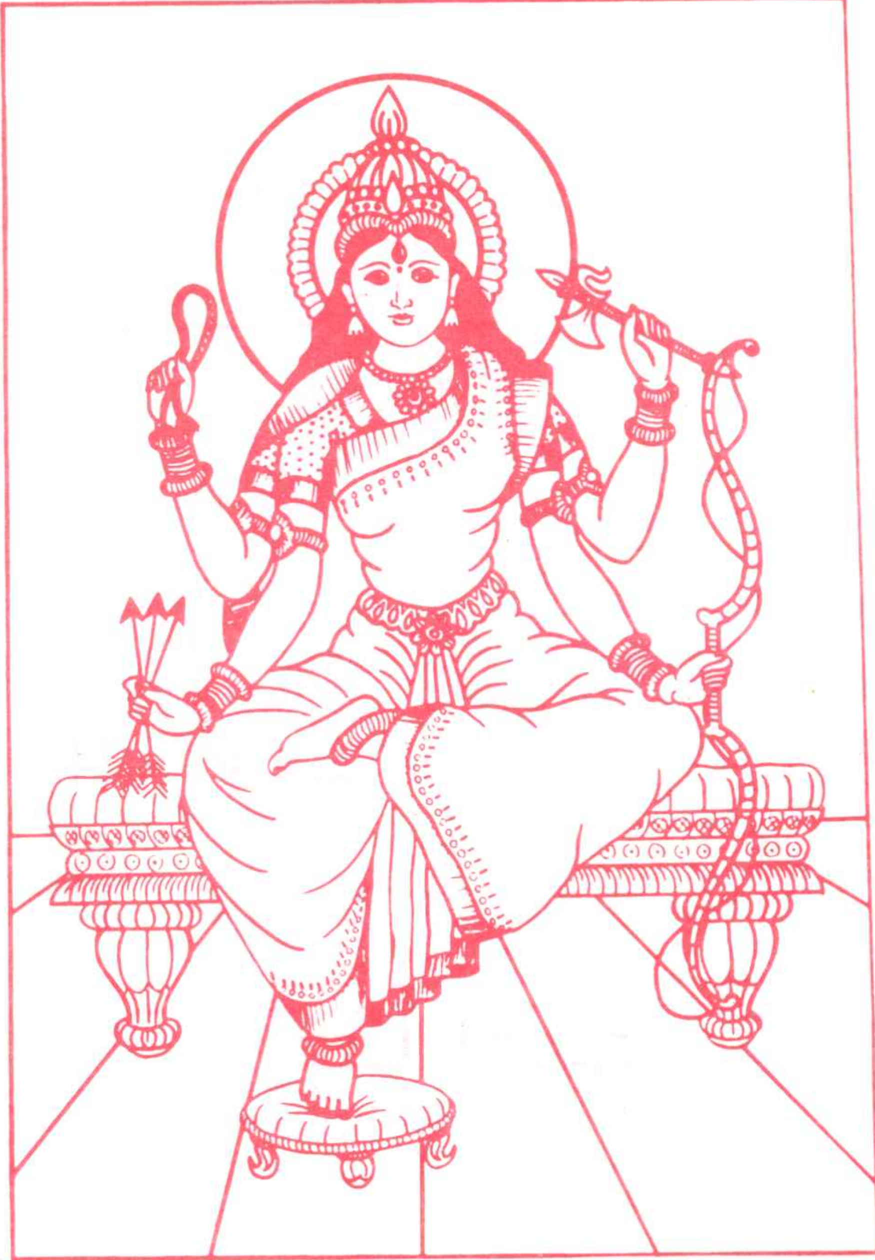
प्रत्यालीढपदार्प्पिताङ्घ्रिशवहृद्धोराट्टहासापरा।
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्प्परभुजाहुंकारबीजोद्भवा।।
खर्व्वा नीलविशालपिंगलजटाजूटैकनागैर्य्युता।
जाड्यन्न्यस्यकपालकर्तृजगतां हन्त्युग्रतारास्वयम्।।

तारा-यन्त्र



मन्त्र -

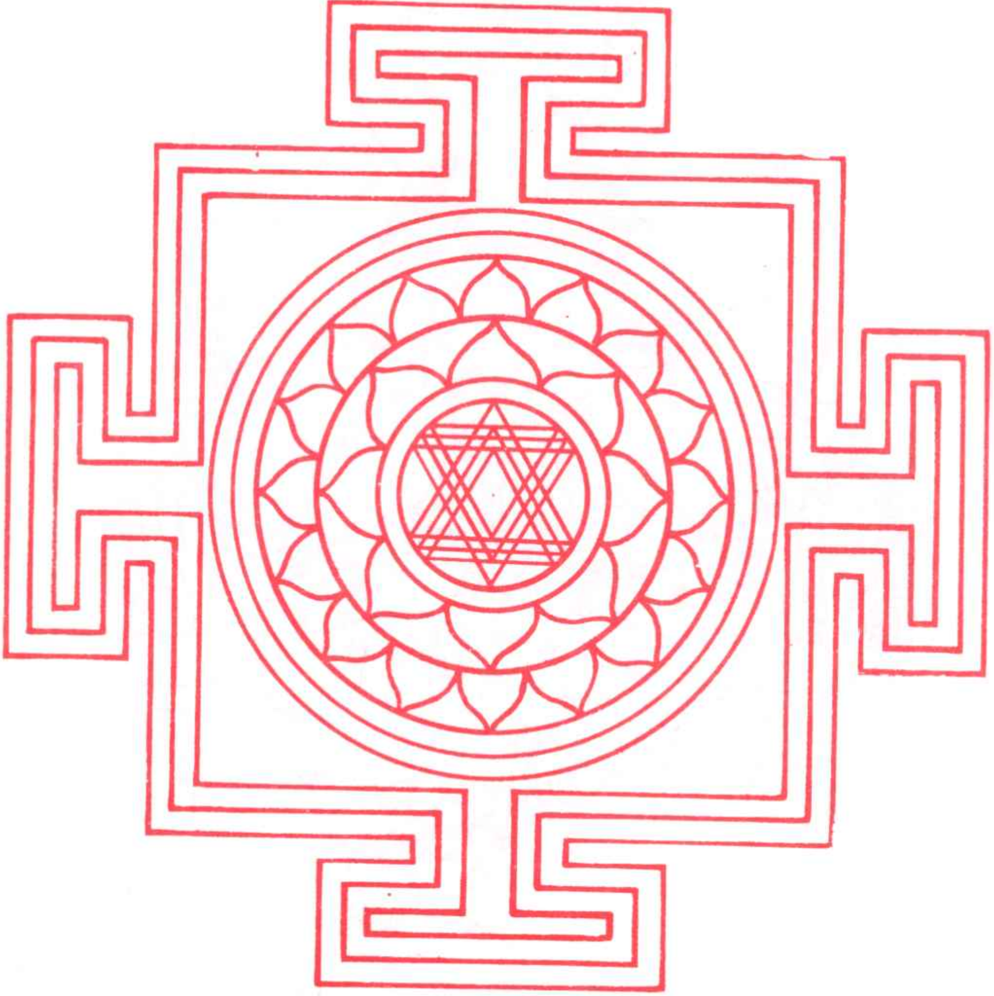
ऐंओंह्रींक्रींहुं फट्॥



षोडशीध्यानम्

बालार्क्कमण्डलाभासां चतुर्ब्बाहान्त्रिलोचनाम्।
पाशांकुशशराँश्चापन्धारयन्तीं शिवाम्भजे।।

षोडशी-यन्त्र



मन्त्र -

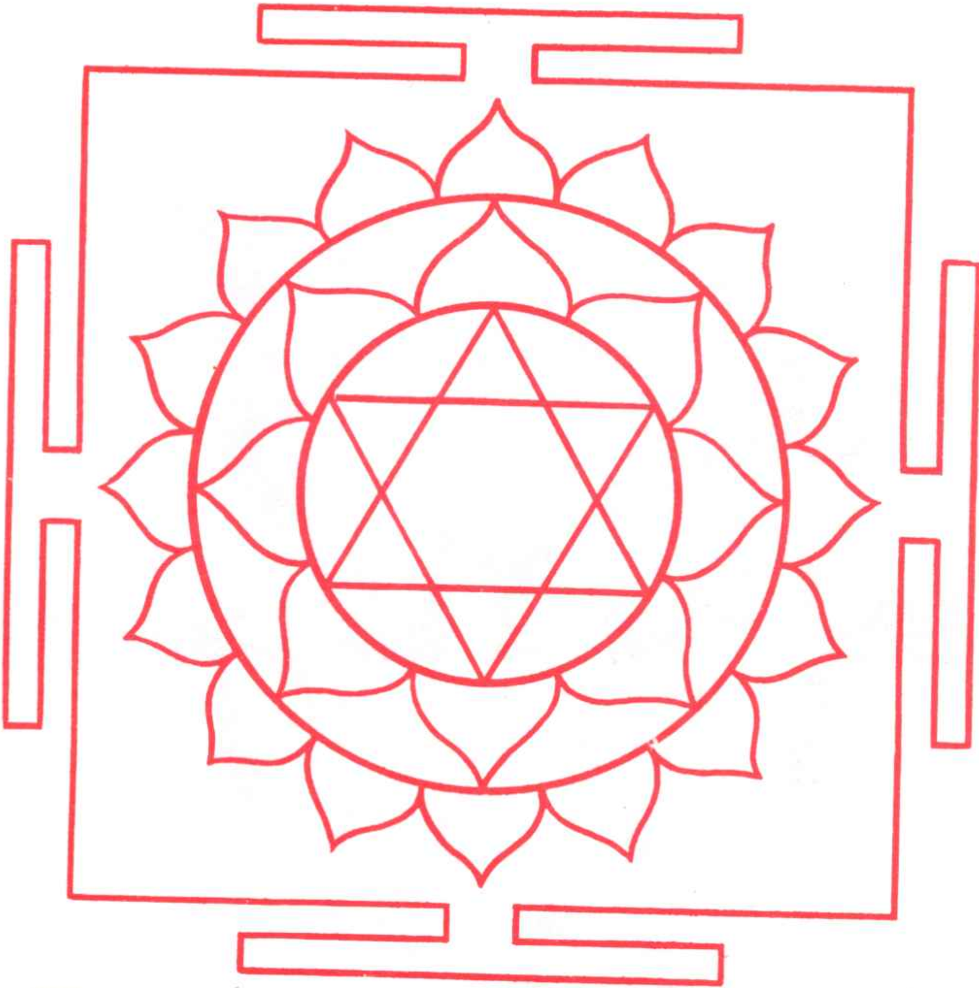
ह्रींकएईलह्रीं हसकलह्रीं हसकलह्रीं ॥



भुवनेश्वरीध्यानम्

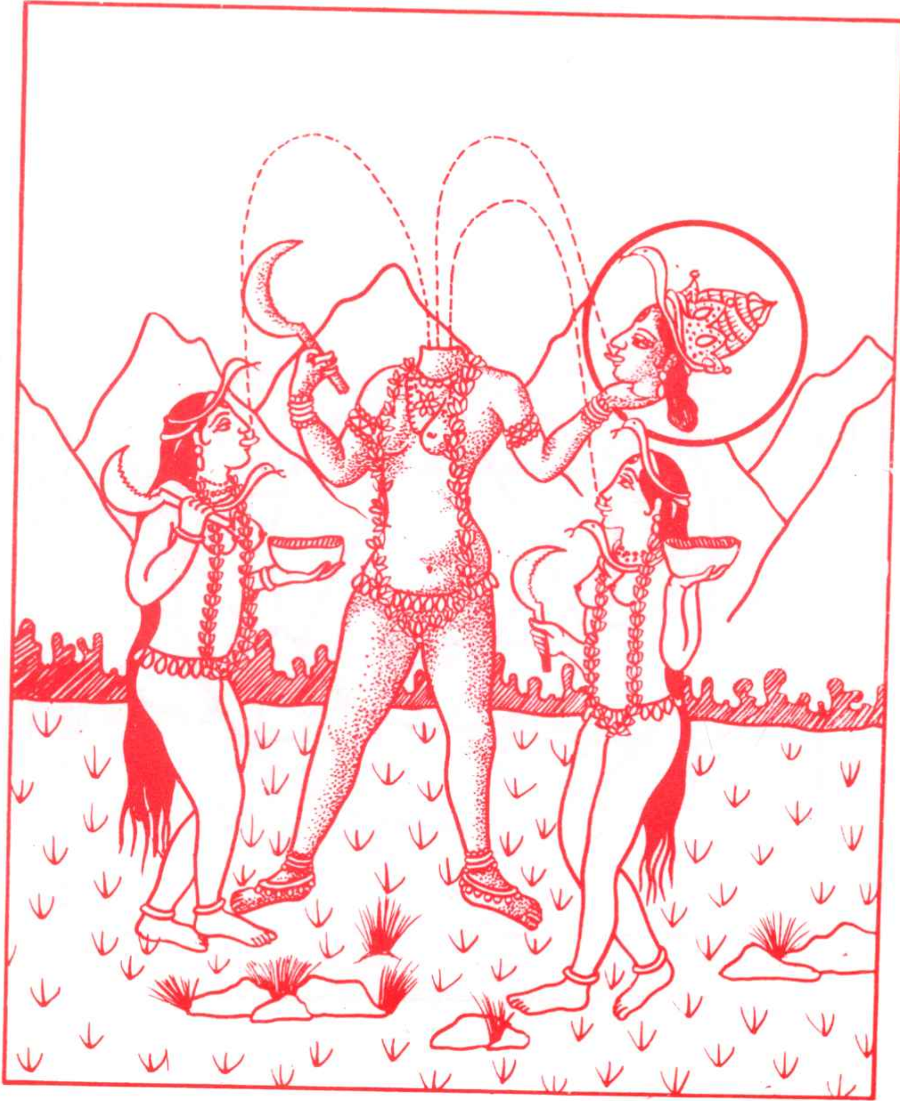
उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुंगकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखी व्वँरदांकुशपाशाभीतिकराम्प्रभजे भुवनेशीम्।।

भुवनेश्वरी-यन्त्र



मन्त्र -

ॐ ह्रीं



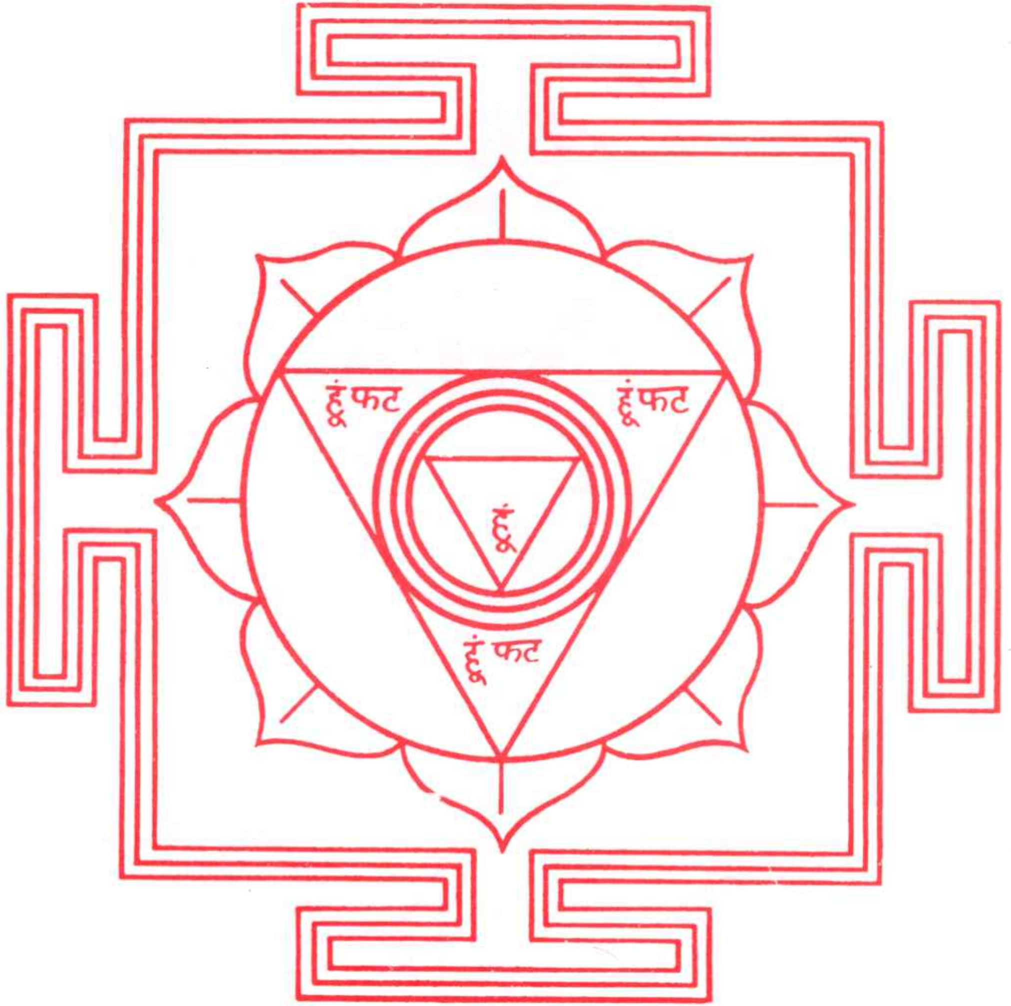
छिन्नमस्ताध्यानम्

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीञ्छिन्नं शिरः कर्तृकां।
न्दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधाराम्पिबन्तीं म्मुदा।।

नागाबद्धशिरोमणिं नयनां हृद्युत्पलालङ्कृतां।
रत्यासक्तमनोभवोपरिदृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम्।।

दक्षे चातिसिताविमुक्तचिकुरा कर्त्रीं तथा खर्प्परं।
हस्ताभ्यांदधतीरजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी।

छिन्नमस्ता-यन्त्र



देव्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धाराम्पिबन्ती मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिर्म्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरैः।।

प्रत्यालीढपदा कबन्धविगलद्रक्तम्पिबन्ती मुदा।
सैषा या प्रलये समस्तभुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी।।

शक्तिः सापि परात्परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी।
ध्येया ध्यानपरैः सदा सविनयं भक्तेष्टभूतिप्रदा।।

मन्त्र -

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये हुं हुं फट् स्वाहा।।

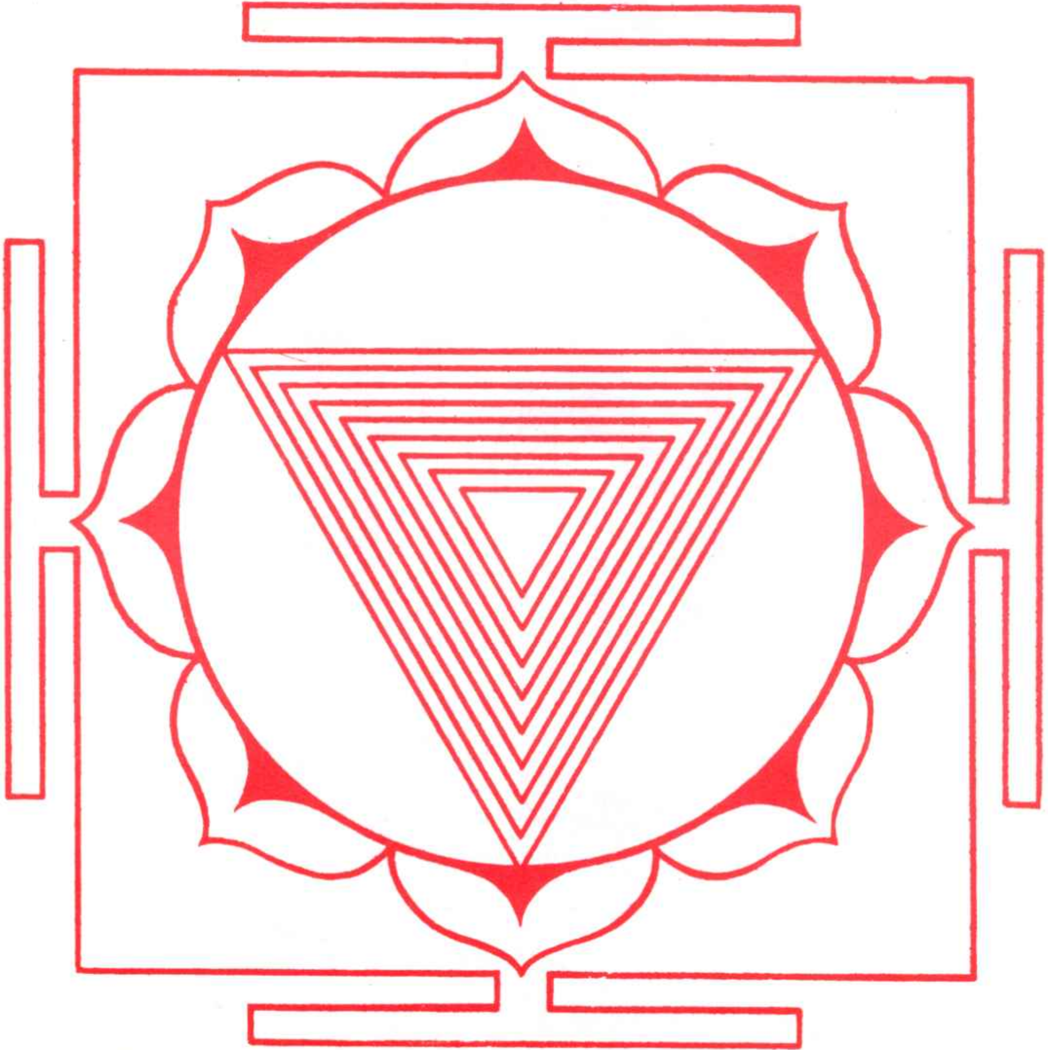


भैरवीध्यानम्

उद्यद्भानुसहस्त्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां।
रक्तालिप्तपयोधराञ्जपपटीं व्विद्यामभीतिं व्वरम्।

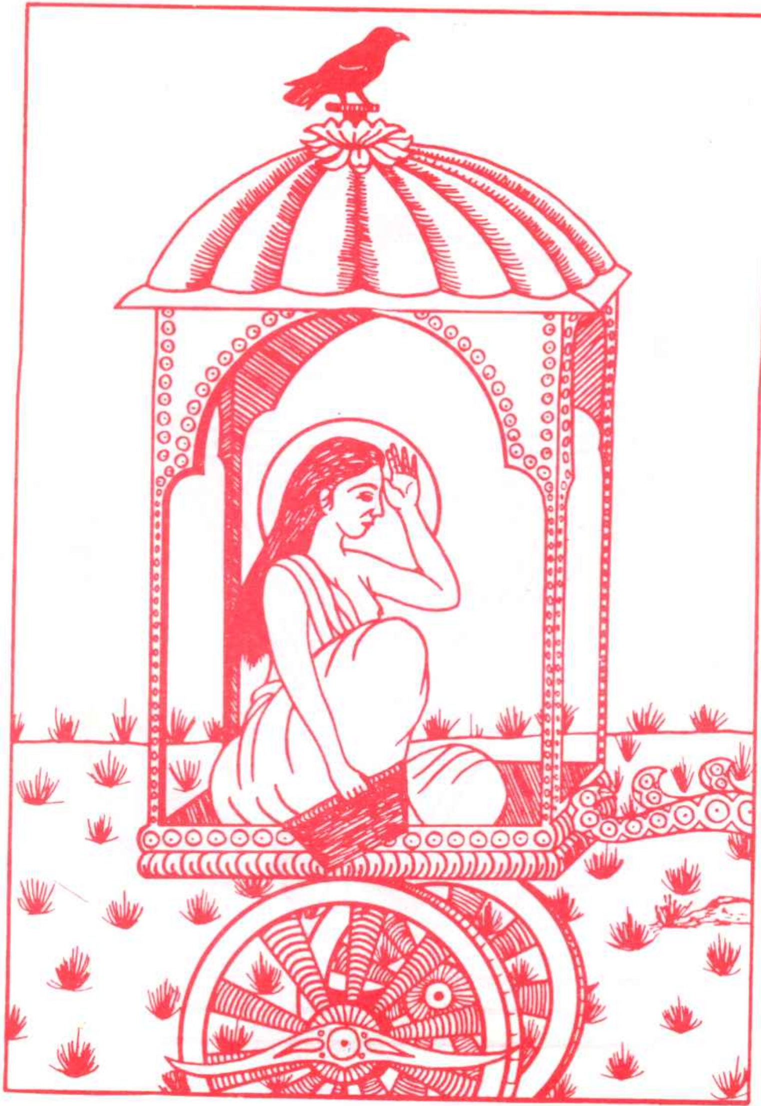
हस्ताब्जैद्र्दधतीन्त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीम्बद्धहिमांशुरत्नमुकुटाँ व्वन्दे समन्दस्मिताम

भैरवी-यन्त्र



मन्त्र -

ॐ हसैं हसकरीं हसैं।।



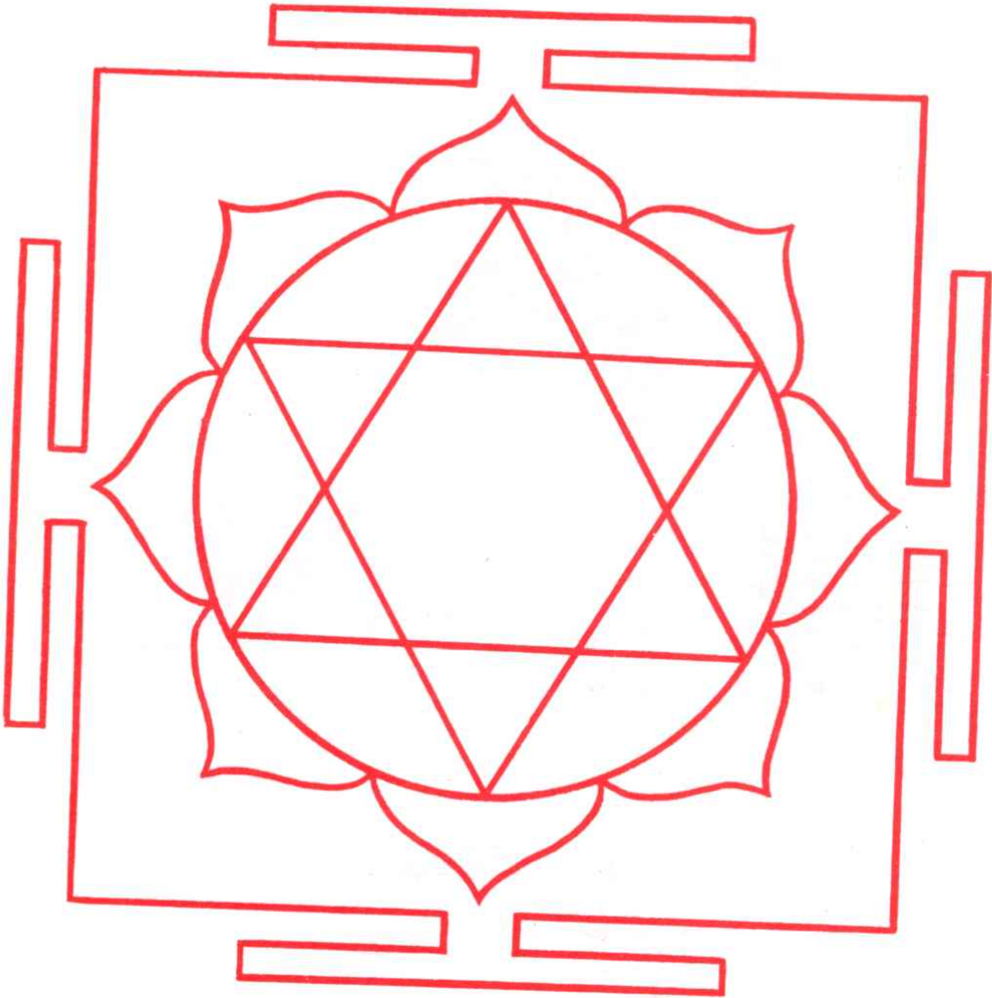
धूमावती ध्यानम्

विवर्ण्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
विमुक्तकुन्तला रूक्षा विधवा विरलद्विजा।।

काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा।
शूर्प्पहस्तातिरूक्षाक्षा धूतहस्ता वरान्विता।।

प्रवृद्धघोणा तु भृशंकुटिला कुटिलेक्षणा।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यम्भयदा कलहास्पदा।।

धूमावती–यन्त्र



मन्त्र –

ॐ धूं धूं धूमावती ठः ठः।

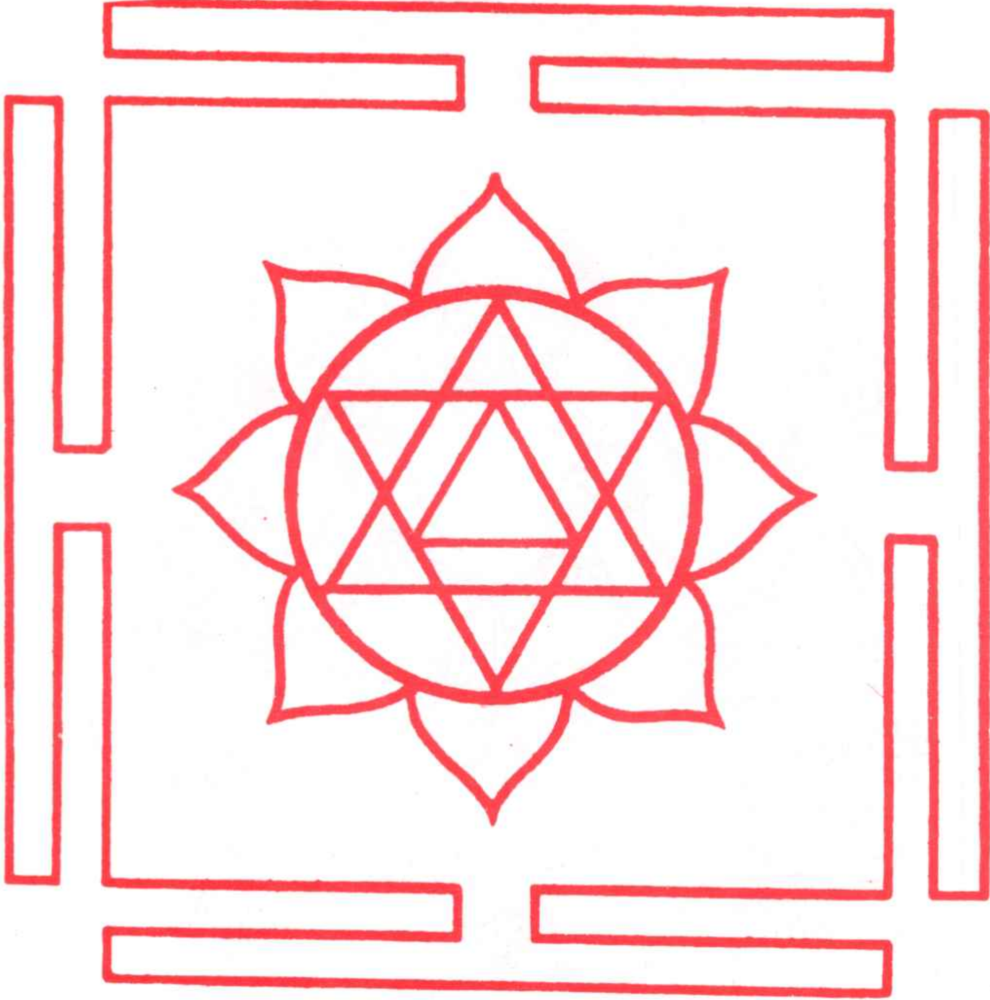


वगलामुखीध्यानम्

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेदी सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषितांगीं देवीं नमामिधृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्।।

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून्परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यान्द्विभुजान्नमामि।।

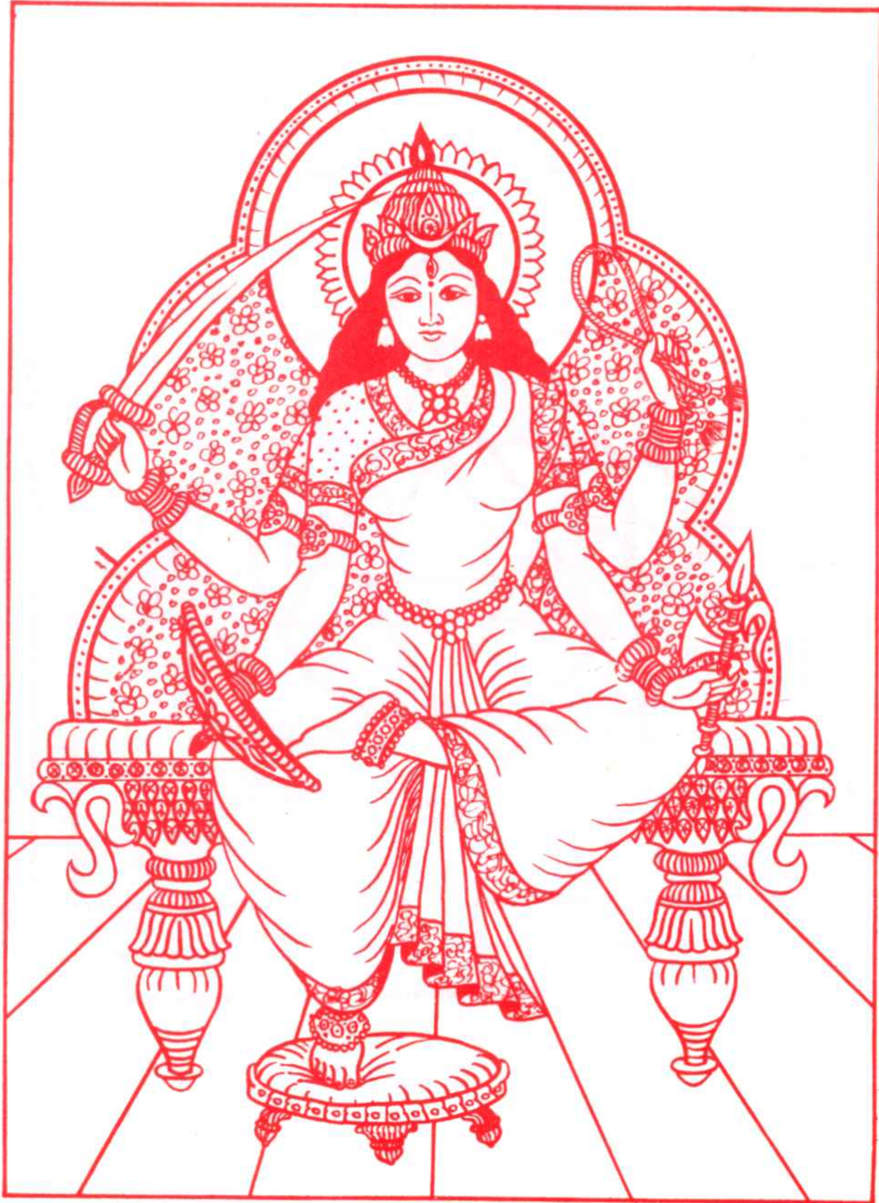
वगलामुखी-यन्त्र



मन्त्र -

ॐ ल्ह्रीं वगलामुखि सर्व्वदुष्टानाँ व्वाचम्मुखं स्तम्भय जिह्वांकीलय कीलय बुद्धिंनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।।

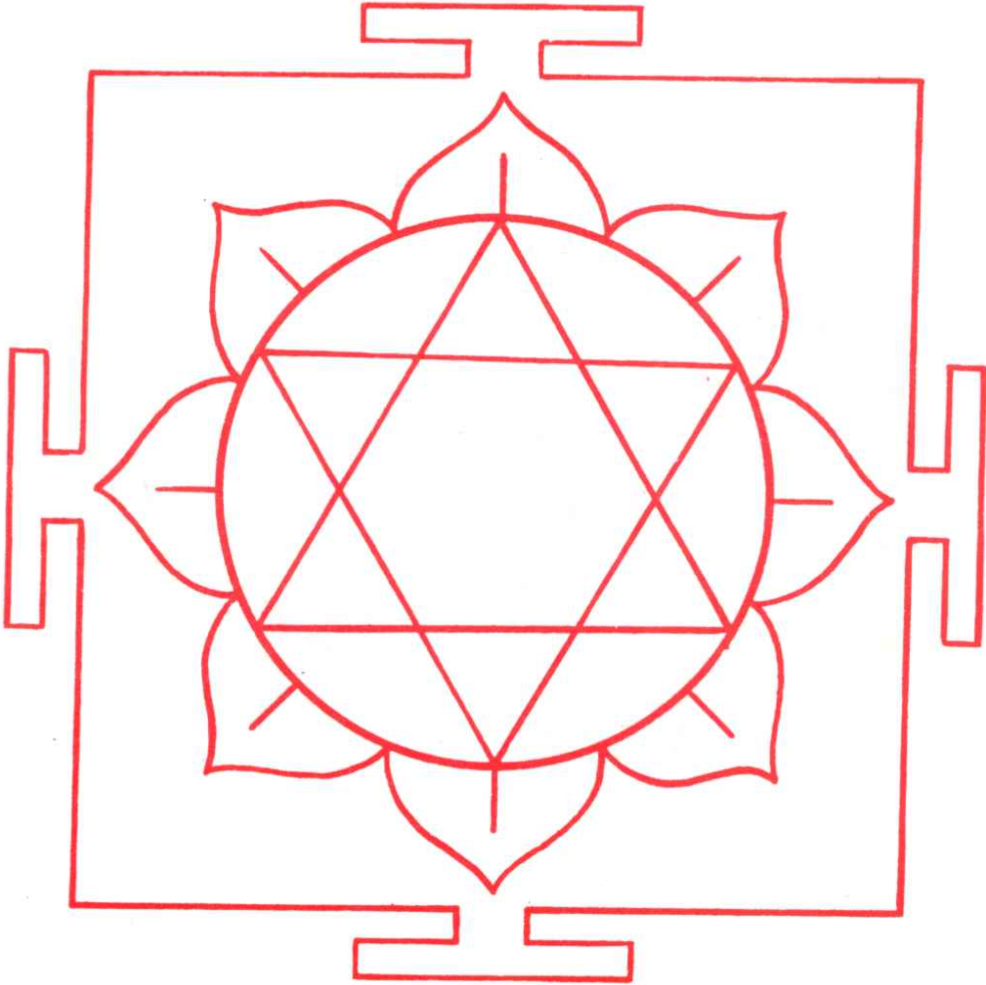
सर्वदुष्टानांके स्थानपर ममशत्रूणां कहना चाहिए।



मातंगीध्यानम्

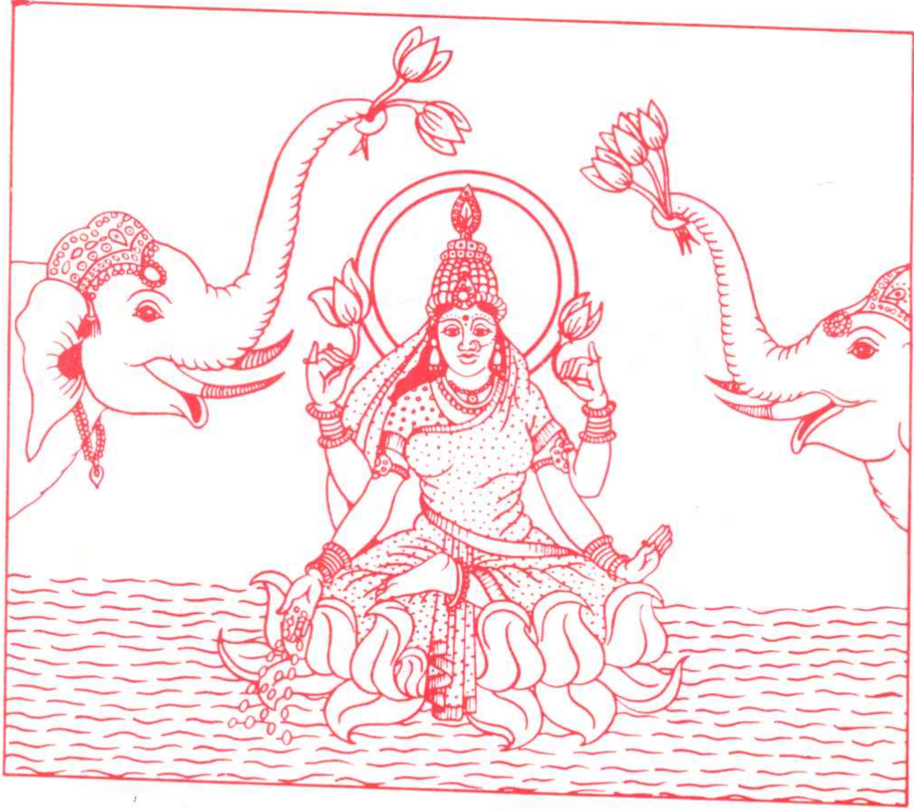
श्यामांगीं शशिशेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासनस्थिताम्।
वेदैर्बाहुदण्डैरसि - खेटक - पाशांकुशधराम्।।

मातंगी-यन्त्र



मन्त्र -

ॐ ह्रीं क्लीं हुंमातंग्यै फट् स्वाहा॥

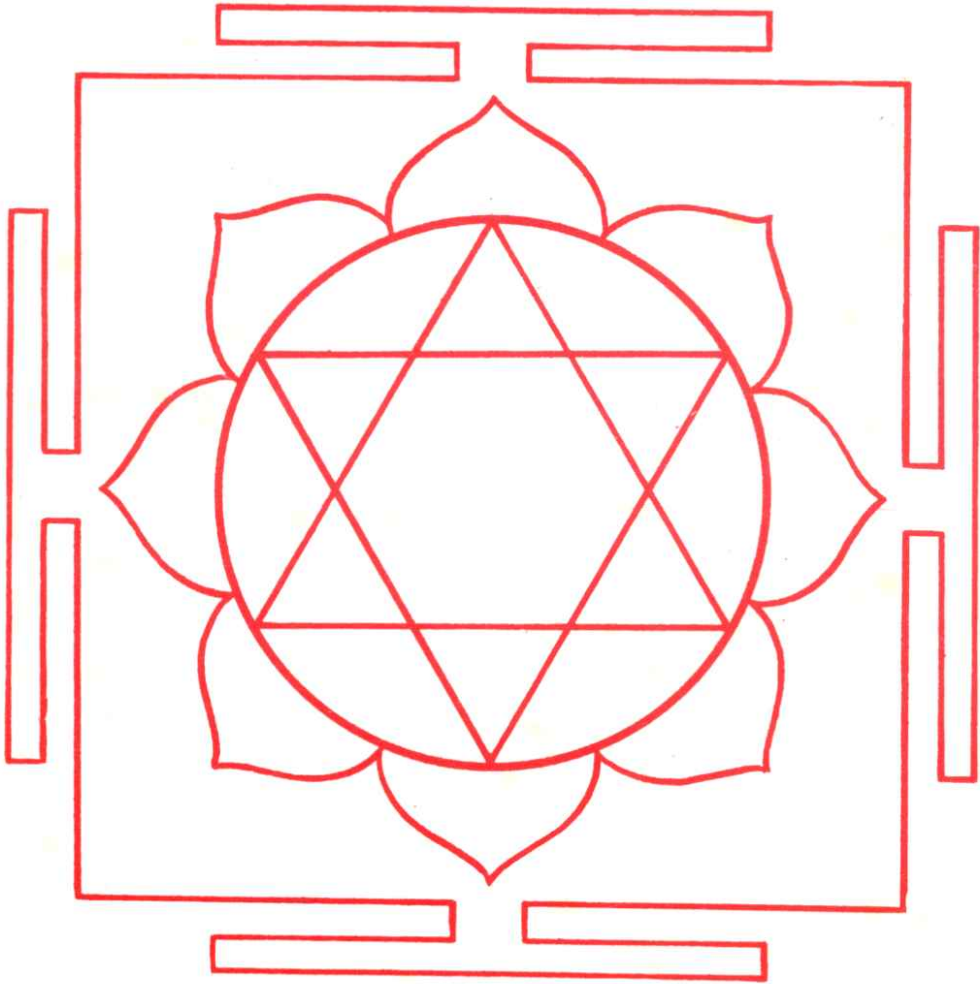


कमलात्मिकाध्यानम्

कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै।
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।।

बिभ्राणाँ वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्जज्वलां।
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां व्वन्देऽरविन्दस्थिताम्।।

कमला-यन्त्र



मन्त्र -

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः जगत्प्रसूत्यै नमः।।

इन महाविद्याओंकी सिद्धिमें ध्यान और जपके अतिरिक्त हवन नहीं होता केवल बलि दी जाती है और वह बलि गुरुके निर्देशानुसार दी जाती है। इन्हें सिद्ध करनेका नियम यह है कि ध्यानके अनुसार महाविद्याकी मूर्त्ति पत्थर या काठकी बनवानी चाहिए और उसे वस्त्र पहनाकर ईशान कोणमें स्थापित करना चाहिए। साथ ही एक घीका अखण्ड दीप अपने दाँईं ओर ऐसा रखना चाहिए कि उसमें बार बार घी न भरना पड़े या छेड़ना न पड़े और तब निश्चिन्त होकर रात्रिके द्वितीय प्रहर अर्थात् नौ बजेसे षोडशोपचार पूजन करके तथा ध्यान करके जप प्रारम्भ कर देना चाहिए और जबतक नौ हजार मन्त्रका जप न हो जाय तबतक न तो आसन छोड़ना चाहिए न हिलना डुलना चाहिए। जिस स्थानमें जप आरम्भ किया जाय वहाँ अन्य किसी प्रकारका कोई सामान नहीं होना चाहिए तथा कोई बाहरी ध्वनि नहीं आनी चाहिए। यदि ऐसी आशंका हो तो रात्रिके तृतीय प्रहरमें प्रारम्भ किया जाय और मन्त्र किसी सिद्ध गुरुसे पुष्य नक्षत्रमें प्रात: काल लिया जाय। प्राय: चालीस दिनमें इष्ट देवी अर्थात् महाविद्याके दर्शन हो जाते हैं और यदि वे वर माँगनेको कहें तो उनसे कोई भौतिक वस्तु मत माँगिए केवल यही कहिए कि जिसमें मेरा कल्याण हो वही करें।

वे प्राय: अनेक प्रकारके प्रलोभन देती हैं किन्तु साधकको चाहिए कि वह किसी प्रलोभनमें न फँसे। जब देवी सन्तुष्ट हो जाती हैं तब वे स्वयं निरन्तर उसका कल्याण करती रहती हैं।



अखिल भारतीय विक्रम परिषद्

द्वारा प्रकाशित अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थ

१. **प्रस्थानत्रयी**
(उपनिषद्, भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र सटीक)

२. **शिवोऽहम्**
(हिन्दी साहित्यका एकमात्र तान्त्रिक महाकाव्य सटीक)

३. **जय दुर्गे!**
(देवीके समस्त अवतारोंकी कथा, साधना,
पूजा-पाठ विधि दुर्गासप्तशती-दुर्गाचरित-सहित)

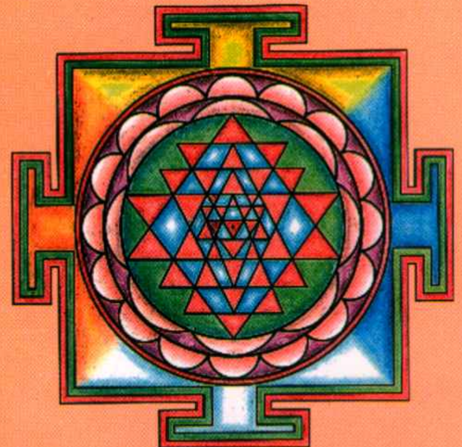
४. **हर हर महादेव**
(सर्वबोध्य भाषामें भगवान शंकर की लीलाएँ)

५. **मारुति चारितामृतम्**

६. **परलोक-विज्ञान**

७. **भागवत-कथा**
(श्रीमद्भागवत महापुराणकी सम्पूर्ण कथा
सरल हिन्दीमें)

८. **ब्रह्मसाक्षात्कारके सरल उपाय**



तन्त्र-विज्ञान और साधना

